नौकरी

१

***

मैं नया नया उस शहर में आया था । शहर क्या था, कबाड़ सा क़स्बा था । एक कायदे का रेस्तराँ न था जहां आदमी कायदे से बैठ सके । टूटी हुई सड़कों पर उड़ती हुई धूल । ऊबड़ खाबड़ आधी पूरी बनी इमारतें । हर तरफ कहीं कबाड़ तो कहीं सीमेंट तो कहीं ईंटें । सब कुछ बेतरतीब, बदहवास । मद्धम बुखार में तपता कस्बाई शहर । सारे कस्बे में गिनती के तीन पेड़ थे जिनके चेहरे तपेदिक के मरीज की तरह लटके हुए थे । एक उद्यान था जिसमें एक तरफ सजावट के लिए झाड़ उगी थी और बाकी हर तरफ पड़ोसी कचरा फेंकते थे । मुख्य सड़क से किनारे संकरी गलियों में नाली का पानी बजबजाता और वहां सूवर लोटते ।

कस्बे में आठ मंजिलों वाली एक नई इमारत बनी थी जिसमें कोई अस्सी आवासीय फ्लैट थे । उस इमारत की चौहद्दी में एक स्विमिंग पूल बना था जिसमें पहले बंदर नहाते थे और अब पानी न होने के कारण आपस में हुड़दंग करते थे ।

कस्बे में हर तरफ फैले हुए फूहड़ लोगों का नजारा था । तोंदुल मर्द और ऐवें ही औरतें । ड्रेस का कोई सेंस नहीं । जो अफ़सर टाइप के थे, वे कभी कभी टाई बांध कर दफ्तर आते । नीली क़मीज़ पर गुलाबी टाई, पीली पैंट, पाँवों में चप्पल । टाइट क़मीज़ होने से बटन खिंच से जाते और क़मीज़ के अंदर की गंदी बनियान दिखती । बालों में केशरतन तेल चुपड़ा होता । दाढ़ी अधकचरी होती, दो तीन दिन की बढ़ी हुई । अक्सर उनके सिर के बाल कालिख की तरह काले होते जिनके नीचे से सफेद जड़ें झांकतीं ।

और औरतें ! सड़क पर जो थीं, उनकी तो बात ही छोड़िए । अफ़सरों की बीवियाँ पार्टियों में आतीं । बड़ा अफ़सर होने के नाते मुझे जाना पड़ता । कभी कभी रोटरी क्लब में रैफल होता तो उसमें पुरस्कार बाँटने का काम मेरे ज़िम्मे लगा दिया जाता । अक्सर औरतें ही रैफ़ल जीततीं । फूली हुई तोंद, ब्लाउज़ और साड़ी के बीच में दबा हुआ बाहर को निकला पेट, चेहरे पर लाल नीला हरा पीला गाढ़ा मेक अप । मेरा तो जी गिनगिना जाता । पर मैं कर ही क्या सकता था ? कभी कभी किसी अफ़सर की सुसज्जित तन्वांगी पत्नी का क़स्बे में आगमन हो जाता तो सारे अफ़सरों का उसके इर्द गिर्द मजमा लग जाता ।

कस्बे का मुख्य आकर्षण वहाँ का मछली बाजार रहा ।

२

***

देखा आपने, शुरु में ही गड़बड़ हो गई । मैंने अपने बारे में तो कुछ बताया ही नहीं और उस कस्बेनुमा शहर की और वहाँ के लोगों की बुराई करने लगा । कितनी बुरी बात है ।

तो लीजिए, पहले मेरा हुलिया देखिए ।

३

***

मेरा जन्म बिहार के एक गाँव में हुआ । पिताजी की बगल के कस्बे में स्टेट बैंक मैं बड़ा बाबू की नौकरी लग गई और हम सब लोग उस कस्बे में आकर रहने लगे । मेरे माता पिता और मुझे मिला कर हम छ भाई बहन । रहने के लिए हमें तीन कमरे का एक फ्लैट किराए पर मिल गया था । फ्लैट दूसरी मंज़िल पर था । उस मंज़िल तक ही वह इमारत थी जिससे हमें ऊपर छत की सुविधा मिल गई थी । पिता जी का दफ्तर वहाँ से आधा किलोमीटर दूर था जहां वे साइकिल से आते जाते ।

सुबह नौ बजे तक घर में दाल भात बन जाता । रसोई का काम माँ करती पर कभी कोई बेला, या बेला ने छोड़ा तो सहेला रसोई में माँ की मदद करती । घर के बीचोंबीच एक आँगन नुमा छोटी सी जगह थी जिसके एक किनारे एक चाँपा कल लगा था । फ्लैट में घुसते ही बरामदे जैसी जगह थी जहां प्लास्टिक की छ कुर्सियां रखी थीं । कोई अतिथि आता तो वहीं बैठ कर चाय पीता ।

सुबह नौ बजे बरामदे में बैठ कर हम दाल भात खा लेते । पिताजी काम पर निकल जाते और हम सब स्कूल ।

कस्बे में दो सरकारी स्कूल थे । पर पिताजी का बड़ा मन रहा कि उनके बच्चे अंग्रेज़ी बोलें । सौभाग्य से कस्बे में तमाम इंग्लिश मीडियम वाले स्कूल खुल गए थे । उन्हीं में से एक मदर टेरेसा इंग्लिश मीडियम स्कूल में मेरा एडमिशन हो गया ।

४

***

छ भाई बहनों में मेरा तीसरा नम्बर था । जब हम उस कस्बे में आए तो मेरी उम्र कोई दस वर्ष की रही होगी । पढ़ने में मैं बुरा नहीं था पर अब सोचता हूँ तो लगता है हीन भावना की जड़ें उस समय बचपन से ही मौज़ूद थीं । मैं हाफ पैंट और आधी बाँहों वाली क़मीज़ पहनता जो अक्सर मेरे बड़े भाई की होती जो उनको छोटी हो गई होती । दशहरे और होली के त्यौहार पर नए कपड़े बनते । या तो घर में दर्ज़ी आकर नाप ले जाता या कभी कभार शौक़िया रेडी मेड भी बगल के बड़े शहर से आ जाते ।

मैं दुबला पतला बल्कि सींकिया था । हाफ पैंट कमर पर ठीक से टिकती नहीं थी, सरकती रहती थी । मैं उसे अक्सर खींच खींच कर ऊपर करता रहता था । मेरी नाक से अक्सर नेटा बहता रहता था जिसे मैं सुड़कता रहता । मेरे पैरों की त्वचा सूखी बेजान रहती थी और बरसात के दिनों में उसमें फुंसियाँ निकल आती थीं । मच्छरों के काटने और खुजलाने से कभी बड़े घाव बन जाते जिनसे कभी-कभी पीब बहती । मेरा पेट पिचका हुआ था और शक्ल सूखी हुई थी । धूल और गुबार से मेरा शरीर ढँका रहता । पहले मेरे पैरों में हवाई चप्पल थी पर जब मैं सेंट टेरेसा स्कूल जाने लगा तो मेरे लिए फ़ीते वाला एक जूता मँगवाया गया ।

५

***

सेंट टेरेसा कॉन्वेंट स्कूल हाल में ही खुला था । उसके प्रधानाचार्य फ़ादर केविन थे । फ़ादर केविन बगल के ही गाँव के थे । गाँव में तब उनकी किराने की दुकान थी और उनका नाम कालीचरण महतो हुआ करता था जो अब सँवर कर फादर केविन हो गया था । वहाँ चार या पाँच सिस्टर भी थीं - दो तो केरल से आई थीं ओर शेष झारखंड की थीं ।

स्कूल किराए के मकान में खुला था । मकान में पाँच कमरे थे, आँगन था, बरामदा था और बाहर खुली जगह थी । फ़ादर ने हमें बताया कि यह अस्थायी व्यवस्था थी । स्कूल के लिए कस्बे के किनारे जमीन ले ली गई थी, इमारत बन रही थी और योजना थी कि साल भर के अंदर ही स्कूल नई इमारत में चला जाएगा ।

स्कूल में सख्त अनुशासन था । लड़कों के लिए सफेद कमीज, खाकी हाफ पैंट और नीली टाई का नियम था । पैरों में सफेद मोज़े और चमड़े के काले जूते । लड़कियाँ हाफ पैंट की जगह स्कर्ट पहनती थीं । चाहे कितनी ही गर्मी हो, बच्चा पसीने से तरबतर हो, टाई के नियम में कोई रियायत न थी ।

सुबह पढ़ाई की शुरुआत प्रार्थना से होती । प्रार्थना के बोल का अंतिम शब्द था - हलो लुइया जिसका उच्चारण हमें ऊंचे स्वर में करना होता ।

स्कूल के अंदर अंग्रेज़ी के अतिरिक्त किसी और भाषा के बोलने पर सख्त पाबंदी थी । यह बात बच्चों को पसंद नहीं थी क्योंकि वे स्कूल के बाहर भोजपुरी बोलने के आदी थे और यह नियम उन्हें बोझ सा मालूम होता था । पर अभिभावक इससे बहुत प्रसन्न थे और इसमें उन्हें अपने बच्चों की बेहतरी का सपना दिखता था । वे कभी आपस में बातें करते तो गर्व से इस बात की चर्चा करते । कई उत्साही अभिभावकों ने तो घर में भी यही कानून लगा दिया था । इससे माताओं को असुविधा थी क्योंकि उनमें से कई तो कायदे से भोजपुरी बोलने में भी असमर्थ थीं पर अपने बच्चों के सुखद भविष्य के लिए उन्होंने सहर्ष यह नियम स्वीकारा ।

एक बार गलती से मेरे मुंह से हिन्दी का कोई शब्द निकल गया और फादर केविन तक बात पहुंची । फादर ने सजा के तौर पर मुझे क्लास समाप्त होने के बाद एक घंटा स्कूल में रोक दिया और पचास रुपए का जुर्माना ठोंक दिया । पिताजी, जिन्हें हम अब डैडी कहने लग गये थे, बहुत आग बबूला हुए । उन्होंने एक धौल जमाया और मुझे डांट कर कहा कि उन्होंने हिन्दी बोल कर बेइज्जती करवाने के लिए इतने महंगे स्कूल में मुझे नहीं भेजा है ।

बात मेरी समझ में आ गई और मैंने हिन्दी पर तुरंत ताला जड़ दिया । अब मैं बाजार में और घर में अंग्रेजी झाड़ता और नाते रिश्तेदार आंखें फाड़ कर टुकुर टुकुर ताकते । मेरे माता पिता के चेहरे संतोष और गर्व की मिली जुली चमक से दमकते ।

६

***

हम जिस कस्बे में रहते थे, वहाँ एक सिनेमा हॉल, एक एम्बेसेडर कार, दो ट्रैक्टर और बिजली के एक दर्जन खम्भे थे । इन खम्भों से गर्मियों के दिनों में कभी बिजली आती और पंखा चल जाता तो हमारी

खुशी के मारे चीख निकल जाती । गर्मियों की रातें छतों पर सामुदायिक शयन यज्ञ में बीततीं । छत को पानी से धोकर ताप कुछ कम किया जाता । कुछ लोग पतली चादर बिछा कर लेटते और ज्यादा शौक़ीन लोग यूँ ही लेट जाते, देह पर ठंडी छत के स्पर्श का सुख लेते हुए । गर्मियों की ऐसी रातों में उन्हीं छतों पर मन्नाजी और मेरी दोस्ती परवान चढ़ी ।

वे पाकीज़ा और इंदिरा के दिन भी थे । हर तरफ गरीबी हटाओ का शोर था । मेरे पिताजी जो बचपन से कांग्रेसी रहे थे, प्रगतिशीलता की आंधी में धीरे धीरे कम्युनिस्ट बनते जा रहे थे । गजब समां था - एक कोने से लाउड स्पीकर पर “इन्हीं लोगों ने, इन्हीं लोगों ने” का गीत हवाओं में गूँजता तो दूसरी तरफ से दूसरे लाउडस्पीकर से “चलते चलते” की लहर फैलती । एक तरफ मीना थीं, दूसरी तरफ प्रियदर्शिनी । मीना से मेरी मुहब्बत की शुरुआत उन्हीं दिनों हुई । मैं कांग्रेसी भी तभी बना ।

चूंकि हिंदी पढ़ने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता था, मैं जेम्स हेडली चेज़ पढ़ने लग गया था । मुझे वह क्षण अभी भी याद है जब मैं टाई पहन कर जेम्स हेडली चेज़ का उपन्यास पढ़ रहा था और पिताजी की नजर मुझ पर पड़ी थी । उनका सीना गर्व से चौड़ा हुआ था, आँखों में खुशी की एक अजीब सी चमक आ गई थी । उनके जीवन का मनोरथ पूरा हुआ था ।

७

***

कम रोशनी में रातों को जेम्स हेडली चेज के उपन्यास पढ़ते पढ़ते मेरी आँखों में चश्मा लग गया । यह मेरे बाद में बड़े होकर बुद्धिजीवी बन जाने का शुरुआती लक्षण रहा । नाक से नेटा भी कम बहने लग गया था । डेटॉल साबुन से नहाने के कारण पैरों के घावों में से पीब अब कम बहती थी ।

अंग्रेजी के ज्ञान और आँखों में चश्मा लग जाने से मेरा हीन भाव पूरी तरह गया तो नहीं, पर उसमें कुछ कमी जरूर आई ।

अब मैं हाई स्कूल के इम्तिहान की तरफ बढ़ रहा था और परिवार में मेरे भविष्य के बारे में चर्चाएँ शुरु हो गई थीं । मेरे दो बड़े भाई डॉक्टरी और इंजीनियरिंग में चले गए थे जिसकी सारे कस्बे में धूम मची थी । पिताजी का कहना था कि क़ायदा यह कहता है कि तीसरे लड़के को उन लाइनों पर नहीं जाना चाहिए जिन पर उसके बड़े भाई जा चुके हैं, उसे कलक्टर बनना चाहिए, इसकी अंग्रेज़ी अच्छी है, यह अंग्रेज़ी के उपन्यास पढ़ता है ।

८

***

मेरे आईएएस बनने में अभी देर थी । मेरा हाई स्कूल का इम्तिहान अभी हुआ नहीं था । पर सारे कस्बे में चर्चा चल गई थी कि बड़ा बाबू का लड़का आईएएस बनने जा रहा है । मेरी हीन भावना बहुत कम हो गई थी । बल्कि मैं तो ऐंठ कर चलने लगा गया था । चेहरे पर - मुझे मजाक न समझो, मैं तुम्हारा कलक्टर बनूँगा - का स्थायी भाव आ गया था ।

अंग्रेज़ी में जिसे स्वैगर कहते हैं वह मेरे पास आ चुका था । कक्षा में एक दो लड़कों से मैंने भारत में आर्यों के आक्रमण के विषय पर चर्चा भी की । मैंने इस बारे में अंग्रेज़ी के एक अखबार में रोमिला थापर का लेख पढ़ा था और उसके अंश नोटबुक में टीप लिए थे ताकि बाद में IAS बनने में सहायता मिले । उन्हीं दिनों मुझे फ्रांसीसी क्रांति के बारे में भी पता चला था ।
मुझे इस कस्बे से और यहाँ के फूहड़ लोगों से कोफ़्त होने लग गई थी । पिछड़े हुए अनपढ़ लोग, दुनिया की कोई समझ नहीं, पुराने रीति रिवाजों में जकड़े हुए । मुझे कभी कोई स्त्री सिर पर पल्लू लिए दिखती तो मैं गुस्से से लाल हो जाता, दिल करता उसका पल्लू खींच कर उतार दूँ । ये कैसे लोग हैं, ये कब सुधरेंगे । दुनिया कहाँ जा रही है और ये दीवाली होली मना रहे हैं ।
मैंने ठान लिया - मैं कलक्टर बन कर समाज को बदल डालूँगा । समाज बेसब्री से मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ।
९
***
समाज को लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ गई ।
मैं हाई स्कूल में फेल होते होते बचा ।
१०
***
वे बिहार में शिक्षा के गौरवशाली दिन थे । महान ठाकुर भूमिहार संग्राम के दिन । इसी संग्राम के क्रॉसफायर में मेरा कैरियर फँसा था ।
हुआ यह कि बिहार में उन दिनों स्कूलों या कॉलेजों के दो वर्ग थे - ठाकुर स्कूल और भूमिहार स्कूल । वैसे तो मानी हुई बात है कि हर स्कूल या कॉलेज में हर जाति के विद्यार्थी रहे होंगे पर सुविधा के लिए यह वर्गीकरण कर लिया गया था । जिस संस्था में ठाकुरों की संख्या भूमिहारों से अधिक वह ठाकुर संस्था और जिसमें भूमिहारों की संख्या ठाकुरों से अधिक - वह भूमिहार संस्था । और जातियों की कोई गिनती न थी । इससे वर्गीकरण में सुविधा रहती थी । पर इसमें एक पेंच यह थी कि आप भले ही भूमिहार हों पर ठाकुर स्कूल में पढ़ते हों तो गिनती के लिए आप भी उस स्कूल के ठाकुरों के संग ही गिने जाएंगे । यह एक वैज्ञानिक क़िस्म का वर्गीकरण था जिसमें कन्फ्यूजन की गुंजाइश कम थी ।
मैं भले ही कॉन्वेंट में पढ़ता था पर वर्गीकरण की दृष्टि से मेरा स्कूल ठाकुर स्कूल गिना गया । संयोग से हमारे स्कूल की कॉपियाँ किसी भूमिहार स्कूल में जाँचने के लिए चली गईं । गैर जात का स्कूल होने से परीक्षकों ने नम्बर काट लिए ।
वे अंग्रेज़ी हटाओ के दिन भी थे । अंग्रेज़ी में फेल होने पर भी आप पास माने जाते थे । बस आपके सर्टिफ़िकेट पर लिखा होता था - pass without English.
अंग्रेज़ी के दो पेपर थे । एक में सारे स्कूल को सौ में बीस नम्बर मिले थे । पर दूसरे पेपर में मेरे पैंतालीस नम्बर आ गए थे - जिससे मेरे सर्टिफ़िकेट पर pass without English नहीं लिखा गया ।

११

***

हाई स्कूल की परीक्षा के परिणाम के तमाम आयाम रहे । इस बात का हल्का सा संतोष रहा कि मेरे सर्टिफ़िकेट पर पास विदाउट इंग्लिश का ठप्पा लगते लगते रह गया । इस बात के लिए उन विद्वान परीक्षक को मन ही मन मैंने धन्यवाद दिया जिन्होंने १०० में पैंतालीस नम्बर दिए और मेरी नइया भवसागर में पूरी तरह डूबने से बचाई । यह बात दीगर है कि इसके पहले जग्गी सर जैसे अध्यापक ने, जो इतना मीनमेख निकालते थे, टोका टाकी करते थे और जिनसे लड़के लड़कियाँ इतना डरते थे, मुझे सौ में से पचहत्तर से कम अंक कभी नहीं दिए थे । पर वह अतीत की बात थी और मैंने अपने साम्यवादी होते जाते पिता से सीखा था कि आदमी को अतीतजीवी नहीं होना चाहिए, उसका ध्यान भविष्य पर केन्द्रित रहना चाहिए ।

मेरा भविष्य मुझे अंधकारमय दिख रहा था ।

दूसरे आयामों की चर्चा के पहले जरा सा धूप में ऊंघ लूं ।

१२

***

देखिए, ऊँघने वाली बात पूरी तरह सच नहीं थी । असली बात यह थी कि मैं परीक्षा में अपनी दुर्दशा के दूसरे आयामों पर लिखने में हिचकिचा रहा था । मैं नहीं चाहता कि कोई तात्कालिक या भावी आई॰ए॰एस॰, कोई शिक्षाशास्त्री, कोई कॉन्वेंटी, कोई साम्यवादी, कोई ठाकुर भूमिहार मेरी बातों से बिदके । आपको तो पता ही है पोलिटिकली करेक्ट रहने को मैंने सदा सबसे ऊँची प्राथमिकता दी है । ज़िंदगी छोटी है, आदमी को क़ायदे से रहना चाहिए, फ़ालतू बवाल में नहीं पड़ना चाहिए ।

फिर भी धूप में थोड़ा ऊँघ लेने से और चाय बना कर बैठने से हिम्मत बंधी है ।

परीक्षा में मेरा बंटाढार होने के परिणामों का अनुमान लगाना इतना भी कठिन नहीं है । मुझे तो लगता है कि रेहान मिराया, जिन्होंने शायद कभी असफलता का मुंह ठीक से न देखा हो, वे भी लगा लें ।

पहली बात तो यह कि कॉन्वेन्ट में पढ़ने से मेरे चेहरे पर जो रौनक आई थी, उस पर कस्बाई धूल की हल्की परत फिर से पड़ गई । मेरा हीन भाव जो बीच के दिनों में दब सा गया था, गर्दन के दर्द की तरह फिर उभर आया था । मैं लोगों से मिलने से बचता । मेरे चेहरे पर हवाइयां उड़ने लग गई थीं । मेरे बाल धूल में सन गये थे और मेरे पैरों में टूटी हवाई चप्पलें थीं । मैं अक्सर कस्बे के बाहरी हिस्से में बहती नदी के सुनसान किनारों पर अकेला यूँ ही मँडराता रहता । मेरे कंधे झुक गये थे । कभी-कभार बोलना पड़ जाता तो गले के ऊपरी भाग से घों घों करती घिघियाती हुई अजीब सी आवाज़ निकलती और सामने वाले को कुछ समझ में न आता ।

कस्बे में लोग मुझे देखते तो मुझसे पहले वे झेंपते । उनके चेहरों पर तिरस्कार, दया और लिहाड़ी के मिले जुले भाव उभर आते । पड़ोस की औरतें देखतीं तो पल्लू मुँह में दबा कर आपस में कुछ फुसफुस करतीं । एक दिन तो शर्माइन चाची ने मेरी माँ से पूछा : का हो, तोहार लइकवा कलक्टर नाहीं बनी का

? घबड़ा मत, कुछ न कुछ बनिए जाई, ज्यादा पढ़े लिखे से का होई, हमरे किहां भेज द, ओके आढ़त पर बइठा देब । एकरा के अंग्रेज़ी अवते बा, हिसाब किताब जोड़ी ।
पिताजी मुझे पहले दिन बाँस की छड़ी से एक छड़ी लगाने के बाद गुमसुम हो गए थे । हर तरफ एक उदासी का माहौल था । अब मेरा एक ही सहारा था - हमारा कुत्ता - टॉमी । वही जब कभी मेरा चेहरा चाटता तो मुझे सुकून मिलता ।
उन्हीं दिनों मैंने वह गाना मर्फी रेडियो पर सुना था : मैं जिंदगी में हरदम रोता ही रहा हूँ ।
१३
***
मेरे परिवार में मातम सा छा गया । पिताजी मुझे शुरु में एक छड़ी लगाने के बाद गुमसुम हो गए । अब उनका अधिकांश समय चुपचाप अपने कमरे में क्रांतिकारी साहित्य के अध्ययन में बीतता । स्टालिन के जीवन की कहानी में उनकी विशेष रुचि रही । कभी कभार कोई अतिथि आता तो मजबूरन बरामदे में बैठते, संग चाय पीते पर कुछ बोलते नहीं, गुमसुम रहते ।
मैंने अपना हाल तो आपको बता ही दिया । मैं सुबह सुबह ही घर से निकल जाता और सुनसान नदी के किनारे मँडराता रहता । मैं नहीं चाहता था कि मुझ पर किसी की नजर पड़े ।
मेरी माँ बेचारी घर का सारा काम संभाल रही थी । उससे मेरा हुलिया न देखा जाता । मैंने अक्सर उसकी आँखों में आँसू देखे ।
मां के दुख की कहानी मेरे छोटे मामा तक पहुँची । मामा तब मुजफ्फरपुर में बीडीओ के पद पर कार्यरत थे । वे मेरी माँ से दस वर्ष छोटे थे । ठिगना क़द, हल्की सी तोंद, खिजाब से रंगे कालिख की तरह काले घुंघराले बाल, करीने से कतरी गई तीखी अधसफेद मूंछें, चेहरे पर चेचक के दाग, मुंह का एक कोना अंदर गुटके के कारण फूला हुआ, आंखों पर बड़े फ्रेम का चौकोर चश्मा । मामा हँसोड़ तबीयत के आदमी थे । हमने सुना था थोड़े दिनों की नौकरी में ही उन्होंने करोड़ों कमाए थे । वे उसी कमाई से पटना कदमकुआं में बहुत बड़ा मकान बनवा रहे थे । उनकी राजनीतिक नेताओं, पुलिस अफ़सरों, व्यापारियों - सबमें पैठ थी ।
१४
***
मेरे छोटे मामा मेरी माँ को बहुत मानते थे । मेरी नानी का कम उम्र में ही टीबी से देहांत हो गया था और मेरी माँ ने ही अपने भाई बहनों की देखभाल का ज़िम्मा अपने नन्हें कंधों पर ले लिया था । इस कारण आपस में बहुत प्रेम था ।
मामा को जब खबर लगी तो दो दिन बाद ही वे ट्रेन से उजाला होने के पहले ही हमारे यहाँ पहुँच गए । उन्होंने मेरी माँ और पिता के पैर छुए । पिताजी से मामा की बहुत पटती नहीं थी । पिताजी क्रांतिकारी टाइप के गम्भीर व्यक्ति थे । एक अरसे से कांग्रेसी थे, अब कम्युनिस्ट होते जा रहे थे । वर्गसंघर्ष का

सिद्धांत उन्हें अपील कर रहा था और वे मामा जैसे लोगों को बुर्जुआ वर्गशत्रु मानने लग गए थे । पर मामा चूँकि उनकी पत्नी के चहेते भाई थे, इसलिए बेचारे पिताजी किसी तरह उन्हें बर्दाश्त करते थे ।
मामा का सामान वहीं बरामदे में रख दिया गया । मामा बाथरूम से फ़ारिग़ होकर बाहर कुर्सी पर बैठे । माँ एक ट्रे मे चाय और मठरी ले आई । मामा और पिता जी अग़ल बगल बैठे पर कोई बातचीत न हुई । मैं मामा की कुर्सी के पीछे खड़ा था ।
मामा चाय में तीन चम्मच चीनी लेते थे और पिताजी बिना चीनी की चाय पीते थे । माँ ने चाय में ढेर सारी चीनी डाल दी थी । पिता जी के मुँह में जैसे ही चाय गई, उनका चेहरा विकृत हो गया । उनसे वह चाय न पी गई । उनके लिए फिर से चाय बनी ।
मामा सबका चेहरा, खास तौर पर अपनी बहन का चेहरा, देख कर हक्का बक्का थे । उनकी समझ में ही नहीं आया कि आखिर हुआ क्या है ।

१५

***

मैं मामा की कुर्सी के पीछे खड़ा था । मैं नहीं चाहता था मेरी आँखें किसी दूसरे की आँखों से मिलें । मेरा चेहरा लटका रहता था, मेरी आंखें सदा झुकी रहती थीं, मेरी नजर जमीन पर गड़ी रहती थी । मामा ने मुझे डाँटा और मुझे उनके सामने बैठने के लिए कहा । मुझे मजबूरी में एक स्टूल खींच कर उनके सामने बैठना पड़ा पर मेरी आँखें झुकी की झुकी रहीं । मामा ने मेरी ठुड्डी उठाई और मेरी आँखों में घूरते हुए बोले - क्या बात है, यह क्या रोनी सी सूरत बना रखी है ? मेरी आँखों में आँसू छलक आए, मेरे हलक से आवाज न नक़ली । मेरी माँ को बोलना पड़ा :
अरे एकरे पर आईएएस क भूत चढ़ल रहल ह । जेहर देख ओहर अंग्रेज़ी पिटिर पिटिर झाड़त रहल ह । हमहूं से अंग्रेज़ी बोलत रहल ह । हमके खड़ी बोली समझ में अइते नइखे आ ई हमसे अंग्रेज़ी में खाना माँगे लगल । हर जगह हल्ला हो गइल कि बड़ा बाबू क लइकवा आईएएस होखे जात ह । एही चक्कर में त दू ठे तिलकहरुओ चल अइलंस । अब हाई स्कूल में पास विदाउट इंग्लिश होत होत बचल बा, एही से रोअत बा । अब अंग्रेजियो नइखे बोलत । पागल नियन एयर ओहर डोलत बा ।
मामा अपनी बहन की बात सुन कर भड़क गए । उठ कर बेसिन में पान की पीक थूक कर कुर्सी पर आकर बैठ गए और डाँटते हुए बोले :
तोहरो माथा खराब हो गयल का दीदी ? तनी हमके देख । ई त कौनों तरीक़ा से अंग्रेज़ी में पास हो गइल, हम त तीन बेरी फेल भइलीं । तब्बो बीडीओ बानीं कि नाहीं ? समाज में हमार इज्ज्त पानी बा कि ना ? हमरे पास गाड़ी घोड़ा क कमी बा ? चार आदमी हमरे आगे पीछे हमेशा घूमत रहत बानं । हमरे ज़बान से आवाज निकले ओकरे पहिले चौरसिया होल सेलर ज़बरदस्ती हमरे घर में दू ठे सैंमसंग क फ्रिज खुदै आके रखवा गइल । पटना में हमार बड़का मकान बनते बा - तू जनते बाड़ू । तूं एकरा के हमरे संगे मुजफ्फरपुर भेज द । एक हफ्ता में हम ठोंकपीट के एकर थोबड़ा बराबर क देब । चार आदमी संगे उठी

बइठी आदमी बनी । इहाँ दिन भर गाय आ गोंइठा देखले से आ रोवले से ई आईएएस नाहीं बनी, गदहा बनी ।
यह सुन मेरी माँ बिलख कर रोने लग गई । बोली - एके ले जा बचवा, एके आदमी बनाव, इहाँ बंदर नियन मुंह बना के एहर ओहर घूमत बा । तोहरे जीजा के तो कौनो मतलबे नइखे, आग लगे चाहे उफ्फर पड़े, उनके मुंहझंउसा स्टालिन आ माओ से फुरसत कहाँ बा ?
१६
***
पिताजी स्टालिन और माओ पर की गई अभद्र टिप्पणी से प्रसन्न नहीं थे । वे मानते थे कि मेरी माँ की आत्मा अभी बुर्जुआ संस्कारों के कारण सोई पड़ी है । उन्होंने इन सड़े गले संस्कारों की राख झाड़ने की बहुत कोशिश की थी । माँ को उन्होंने कई बार माओ की लाल किताब और हंस पत्रिका लाकर दी पर मां उनकी जगह हनुमान चालीसा पढ़ती रही । पिताजी खीज खीज कर हार गये थे । वे होली में रंग गुलाल नहीं खेलते थे, दिवाली में दिया जलाने के खिलाफ थे, ऐसी बातों को अवैज्ञानिक प्रतिक्रियावादी हरकत मानते थे । मजबूरी में पुआ वग़ैरह न चाहते हुए भी खा लेते थे । वे जानते थे कि परिवार के अंदर उनकी बहुत चलने वाली नहीं थी । मन मसोस कर रह जाने और सड़े गले संस्कारों से समझौता करने के सिवा कोई चारा न था । बेचारे को एकाध बार माँ के संग सत्यनारायण व्रत कथा में भी बैठना पड़ गया - वे उनके लिए घोर यातना तथा ग्लानि के क्षण थे ।
पिताजी ने किसी तरह स्टालिन का अपमान सहा । वे बवाल नहीं चाहते थे । पर उनका विश्वास था कि एक दिन वह समय आएगा जब भारत में लोग सत्यनारायण कथा की जगह स्टालिन कथा सुनेंगे, जय जगदीश हरे की जगह जय माओ के भजन गाएंगे । वे मानते थे कि देर भले ही हो पर जनवाद की आंधी एक दिन इस पुरातन सड़े गले कचरे को इधर उधर उड़ा कर समतावादी वैज्ञानिक आदर्श समाज की स्थापना वैसे ही कर देगी जैसे रूस, चीन और उत्तर कोरिया में पहले ही हो चुका था । उनके दिमाग में इस बात की वैज्ञानिक inevitability के बारे में रंच मात्र भी संदेह न था ।
आपके मन में संदेह उठना जायज़ है कि मुझे पिताजी के इन अंदरूनी विचारों का पता कैसे चला ? यह बात सही है कि पिताजी माँ के पुरातनपंथी विचारों को बदलने की जद्दोजहद में जीत पाने की संभावना के प्रति उत्साहित न थे, उन्होंने मां से इन विषयों पर बात करना ही छोड़ दिया था । पर जब कभी उनके दोस्त विरांची दासगुप्ता जो कचहरी में पेशकार थे, हमारे यहाँ पिताजी से मिलने से आते तो दोनों इस तरह की बातें करते और मैं उनकी बातें उत्सुकता से सुनता । मुझे लगता है कि मेरे व्यक्तित्व में प्रगतिशील जनवाद का बिरवा शायद उन्हीं दिनों रोपा गया ।
जैसा मैं पहले कह चुका हूँ पिताजी मामा को बुर्जुवा वर्गशत्रु मानते थे पर माँ के सामने उनकी आलोचना करने में असमर्थ थे । वे बवाल नहीं चाहते थे । चुप रहने में ही अपनी भलाई समझते थे ।
१७
***

मैं पहले मामा के घर न गया था । मुज़फ़्फ़रपुर मुज़फ़्फ़रपुर न था, एक नई दुनिया थी । मेरी आँखें चौंधियां गईं, माथा घूम गया जैसे शराबियों का दो बोतल वोदका पीने के बाद घूमता होगा । मेरे होशो हवास ही गुम हो गए । मेरे पाँव जमीन पर न थे । मैं हवा में उड़ रहा था । कहाँ तो मेरा क़स्बा जहां सिर्फ एक एम्बेसेडर कार और एक टुटहा ट्रैक्टर और कहाँ मुज़फ़्फ़रपुर के नज़ारे । चौड़ी सड़कें । सड़कों पर रोशनी । चमचमाती गाड़ियों में फुर्र फुर्र उड़ते लोग । जगह जगह घूमती इतराती सजी सँवरी चमचम करती बालाएँ । बड़े बड़े सिनेमा हॉल और शहर की दीवारों पर हेमा मालिनी और विनोद खन्ना के बड़े बड़े रंगीन पोस्टर । मुझे लगा कि मैं जैसे इन्द्रलोक में आ गया । मेरे दिल में अपने कस्बे के लिए तुरंत गहरी नफरत भर गई । छिः, क्या है वहाँ ? सिर्फ गाय और गोबर ? कैसे रहते हैं वहां लोग ?
पर कहीं गहरे मेरे अवचेतन में दबे अपराध भाव ने फिर सिर उठाया । क्या मुझे अपनी जड़ों के लिए - वे चाहे जितनी ही सड़ी क्यों न हों - ऐसा सोचना चाहिए ? क्या मुझे सर्वहारा के शोषण के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिए । मैं उहापोह में था ।
मामा का घर छोटा सा ही था पर हमारे उस सड़ियल फ्लैट से तो कोई तुलना न थी । घर के बाहर पोर्च था । कम से कम तीन गाड़ियाँ वहाँ हमेशा लगी रहती थीं । मामा के घर में दो बड़े बड़े फ्रिज थे । मैंने फ्रिज का ठंढा पानी पहले न चखा था । हमारे यहाँ तो सुराही हुआ करती थी । अहा, वह फ्रिज का शीतल पानी - वह पहला अनुभव, पहले प्यार की तरह अब भी भी मेरे दिलोदिमाग़ में ताजा है । यही नहीं फ्रिज में कोका कोला की बोतलें भी रखी थीं । मुझे समझ में ही नहीं आ रहा था मैं कहाँ आ गया था ।
मेरे आने पर मामी और मेरे दो ममेरे भाइयों ने बहुत खुशी जताई थी । मेरे दोनों ममेरे भाई मुझसे छोटे थे । उनके चेहरे चिकने और चमकीले थे, उनकी नाकों से नेटा बहने का कोई निशान न था, उनके कपड़े, उनके जूते शानदार थे । वे चपरासी को बुलाते और चपरासी तुरंत आकर उनके जूतों पर पॉलिश करता । कभी उन्हें आइस क्रीम की तलब लगती तो दूसरा चपरासी गाड़ी में उन्हें शहर के आइस क्रीम पार्लर ले जाता । वे अक्सर शामें अपने साथियों की बर्थ डे पार्टियों में गुज़ारते । मैं उनके सामने अपना हुलिया देख कर शर्म से गड़ा जा रहा था । मेरे पास वही बड़े भाई की पुरानी घिसी पिटी मटमैली टेरीलिन कमीज और कमर पर न अटकने वाली बदरंग ढीली ढाली पतलून । मेरे बाल बेतरतीब, मेरे पांवों में वही पुराने, धूल में सने, अधफटे जूते ।
मेरी नजर शर्म से गड़ी फर्श को देखती और मेरा यह हाल करने के लिए मैं मन ही मन अपने माता पिता को कोसता । साम्यवाद के बारे में मेरे मन में संदेह का बीज तभी अंकुरित हुआ था ।
१८
***
मामी को मैंने एक दो बार बचपन में देखा था । उनकी शक्ल हमारे घर की तस्वीरों से देखी हुई पहचानी हुई थी पर अब उनसे मेल न खाती थी । मामी की उम्र तब शायद चालीस के आस पास रही होगी । हमारे कस्बे में चालीस पहुँचते पहुंचते औरतें बूढ़ी हो जाती थीं, चेहरे का रंग उतर जाता था, कमर झुक जाती थी, बुढ़ापे का रोना रोती रहती थीं; अब जिन्दगी में का बचल बा - की शिकायत करती रहती थीं ।

पर यहाँ ! यहाँ तो नजारा ही कुछ और था । मामी की उम्र भले ही चालीस हो पर उनका स्टाइल षोडषी कन्या जैसा रहा । छरहरा बदन, देह में फुर्ती और लचीलापन, कमनीयता, चेहरे पर ठहरा हुआ अभिजात्यपन । मामी का रंग करीब करीब गोरा था । मेरी माँ का रंग भी शायद वैसा ही रहा होगा पर धूप में झुलस कर काला हो गया था । मामी के वार्ड रोब में असंख्य साड़ियाँ थीं जिन्हें वे मौसम, मौके और मिजाज के हिसाब से बदल बदल कर पहनतीं । कभी वासंती बयार चली तो गेंदे के पीले फूल जैसे पीले रंग की साड़ी और उसके रंग से मैच करता ब्लाउज । कभी गर्मी बढ़ी तो ऑफ़ व्हाइट रंग पर गुलाबी बॉर्डर वाली साड़ी । रात की पार्टियों में हल्के रंग और दिन में चटख रंग । उनके बाल घने और काले थे - करीब करीब साधना कट स्टाइल में । मामी महीने में कम से एक बार अपने बाल जरूर हेयर स्टाइलिस्ट से सजवातीं और ब्यूटी सैलून हफ्ते में एक बार । उनका चेहरा हरदम चमचम चमकता । उनके पास हर तरह की साड़ी से मैच करने वाली दर्जनों सैंडिलें थीं - अधिकांश ऊंची एड़ियों वाली थीं ।
मामी की सुबह की शुरुआत बेड टी से होती थी । नौकरानी उनके कमरे में चाय की ट्रे ले आती और मामी अकेले या कभी मामा के संग वहीं चाय पीतीं । मामा तो व्यस्त रहते, अक्सर बाहर रहते, पर मामी को घर में कुछ खास काम न था । कोई दस बजे कॉफी मार्निंग के लिए उनकी सहेलियाँ मामी के यहाँ आ जातीं या वे उनके यहाँ चली जातीं । दोपहर में लंच अक्सर घर में ही करतीं । फिर बिस्तरे में लेटी फ़िल्मी कलियाँ या स्टारडस्ट पढ़ते पढ़ते सो जातीं । कभी किसी सहेली का फोन आता तो वे आपस में जीनत अमान और परवीन बॉबी की तुलना करते हुए बहस करतीं । मामी को परवीन बॉबी पसंद न थी, वे जीनत की फ़ैन थीं । उनका मानना था कि परवीन बहुत लाउड थी, जबकि जीनत में एक सुरुचिपूर्ण सॉफिस्टिकेशन था ।
फिर मामी शाम को ड्राइंग रूम में बैठ कर चाय पीतीं और शाम की पार्टी में कौन सी साड़ी पहननी है - यही सोचती सोचती सुहावने सपनों में गुम हो जातीं ।
मामी भोजपुरी नहीं बोलती थीं । खड़ी बोली बोलते बोलते कभी कभी अंग्रेज़ी भी बोल देतीं । जैसे - व्हाट ऐन इडियट या हाऊ स्टूपिड या व्हाट शिट ।
मेरी मां की उम्र मेरी मामी से बहुत अधिक न थी पर मेरी माँ बूढ़ी हो गई थी और मामी जवानी की दहलीज़ पर कदम रख रही थीं । मेरी माँ के चेहरे पर बदनुमा परछाइयाँ थीं, रंग मटमैला भूरा काला था, पैरों में बेवाई फट गई थी । मेरी मामी का चेहरा सुंदर और सुडौल था, कमनीयता और कोमलता थी, उनके पाँव मीना कुमारी के पाँवों की तरह सलोने थे ।
पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो मामी चारुलता की माधवी मुखर्जी सी दिखती हैं ।
मेरी मामी का गाँव मेरी माँ के गाँव के बगल में ही था । उनके गाँव में भी भोजपुरी के अलावा कोई और भाषा नहीं बोली जाती थी । पर वह गए जमाने की बात थी । मामी अब मुज़फ़्फ़रपुर में थीं ।

१९

***

मामी मामा का समाज में ऊँचा ओहदा था । मामी अफसर पत्नियों की सुबह की कॉफी मीटिंगों में जातीं जहां दुखियारी महिलाओं के उत्थान के लिए योजनाएँ बनतीं । महिलाओं को सिलाई मशीन के इस्तेमाल का प्रशिक्षण, क्रोशे के प्रयोग से स्वेटर बुनने का प्रशिक्षण आदि । कॉफी मीटिंगें थीं तो अफसर पत्नियों के लिए पर ऊंचे समाज की एक दो दूसरी महिलाओं के लिए भी जगह रहती धी ।
मामा अक्सर अफ़सरों के संग क्लब में बिलियर्ड खेलते जहां ब्रेक में सामाजिक गैरबराबरी और अशिक्षा जैसे मुद्दों पर लोग व्हिस्की पी कर राय ज़ाहिर करते ।
मामा मामी लॉयन्स क्लब के सदस्य भी रहे । एक बार संयोग से मैं भी उनकी मीटिंग में चला गया । तब तक मेरा हुलिया बदल चुका था । मेरे चेहरे पर भी अब हल्की सी रोशनी थी, मेरी सफेद कमीज और काली पतलून में कस्बाई फूहड़पन न रहा था । मेरे जूते चमकते थे । मामा मामी को समाज में अपनी प्रतिष्ठा का हमेशा ख्याल रहता था । वे नहीं चाहते थे कि कोई फूहड़पन हो और उनकी सामाजिक पूँजी, उनकी हैसियत पर आँच आए ।
मीटिंग शाम को सात बजे शुरु हुई थी - ऑफ़िसर्स क्लब में । मामी ने पीले ब्लाउज पर दहकते ख़ूनी लाल रंग की साड़ी पहनी थी । गले में मोतियों का हार, कानों में कंगना, पाँवों में चमचमाती ऊँची एड़ी वाली सैंडिल और बाएं हाथ में हौले से झूलता महँगा इम्पोर्टेड हैंड बैग । मामी का रंग हालिया ब्यूटी पार्लर की यात्रा से और गोरा हो गया था । मामी चमचम चमक रही थीं ।
मामा भी कम न थे । स्याही की तरह काले शरीर पर चमकता काले रंग का थ्री पीस सूट, सफेद कमीज, चमचमाते सोने जैसे पीले कफ लिंक, जैकेट की जेब में कायदे से खोंसा गया रेशमी गुलाबी रूमाल । गले में क़रीने से लटकाई गई पीली सिल्क टाई, पैरों में चमचमाते काले जूते । मामा का क़द ठिगना था, तोंद हल्की सी निकली हुई थी । मामा के घुंघराले बाल हालिया खिजाब के इस्तेमाल से काले थे - उनपर कभी रोशनी पड़ती तो चमचम करते थे । मामा का चेहरा हालिया शेव करने से चिकना था, पर कानों से निकलते बालों के नन्हें गुच्छे अभी भी सफेद थे, करीने से कटी मूँछों से हल्की सफेदी झांकती थी । मामा की आँखों पर मोटे फ्रेम का काला चश्मा था जिसके अंदर से उनकी मिचमिचाती आँखें बाहर का नजारा देखती थीं ।

२०

***

लॉयन्स क्लब की मीटिंग के बहुत सारे नियम कानून थे । कुछ लिखित, कुछ अलिखित । आप लस्टम पस्टम वहां पहुँचते तो कोई आपको सभागार से बाहर तो नहीं करता, बस आपको लोग घूरते, महिलाएं आपकी तरफ हल्का सा इशारा कर दूसरी महिलाओं के कानों में कुछ फुसफुसातीं । हर शख्स यहाँ लॉयन था, और हर शख़्सी लॉयनेस । जैसे मेरे मामा लॉयन मा कह कर बुलाए जाते और मेरी मामी लॉयनेस मी ।
वहां के लॉयन्स क्लब की सेक्रेटरी कमिश्नर साहब की पत्नी थीं । दक्षिण भारतीय महिला । कांजीवरम साड़ी में निखरा भव्य व्यक्क्तित्व । श्याम वर्ण, श्वेत केश, बालों में पीले फूलों का गुच्छा । मलयाली

ऐक्सेंट में अंग्रेज़ी और टूटी फूटी हिन्दी बोलती ममतामयी स्त्री । वे डायस पर बैठी थीं । उनके सामने एक टेबुल था जिस पर पीला फूल पत्ती वाली डिजाइनों वाला टेबुल क्लाथ था जिस पर दोनों ओर दो बड़े गुलदस्ते रखे थे और बीच में लॉयन्स क्लब, मुजफ्फरपुर लिखा चौकोर प्लाक रखा था । उनकी दोनों तरफ दो दो कुर्सियाँ रखी थीं । सामने पंक्तियों में ढेर सारी कुर्सियाँ लगी थीं - मामूली लॉयनों, लॉयनेसों के बैठने के लिए । बाईं तरफ नीले साटिन का एक पर्दा सीलिंग से फर्श तक लटका था जिसके पीछे शायद खाने और पीने की व्यवस्था थी । इधर उधर सफेद यूनिफ़ॉर्म में कर्मचारी घूमते थे अतिथियों को ड्रिंक वग़ैरह सर्व करने के लिए ।
मामा एक जमाने में लॉयन्स क्लब की इस शाखा के कोषाध्यक्ष थे । उन्होंने अपने समय में बहुत सारे सामाजिक कार्यक्रम करवाए । पर जैसा कि सदा से होता आया है इससे कुछ लोगों को जलन हुई । सतीश गुप्ता करके पी डब्ल्यू डी का अफ़सर था, यूपी का था, बहुत काइयाँ था । उसने और गिरे हुए लोगों के संग मिल कर मामा के ऊपर मोतियाबिन्द ऑपरेशन के पिछले कैम्प में धोखाधड़ी का आरोप लगाया और एकाउंट के तत्काल सार्वजनिक ऑडिट की माँग कर दी । मामा बेचारे बहुत दुखी हुए । पर मामा जीवट वाले आदमी थे, इतनी जल्दी हथियार कैसे डालते । उन्होंने बिहार के ठाकुर बाभनों से सलाह ले कर रास्ता निकाला । अगली मीटिंग में मंच से दुख भरा भाषण दिया । लोगों की आंखों में आँसू आ गए । मामा ने वहीं त्यागपत्र देने की पेशकश कर दी । हंगामा मच गया । गुप्ता की बोलती बंद हो गई । लोग मामा से त्यागपत्र न देने के लिए विनती करने लग गए । सभा कक्ष में हर तरफ अपराध भाव की लहर दौड़ गई । पर मामा नहीं चाहते थे कि लोग इस्तीफ़े को नाटक समझें । वे अड़ गए और कार्यसमिति को मामा का त्यागपत्र स्वीकार करना पड़ा । मामा अक्सर सिद्धांतवाद की राह पकड़ लेते थे । पर मामी के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं । उन्हें लगा कि मामा ने यह क्या कर दिया !
२१
***
हुआ यह था कि मामा के छोटे साले यानी मामी के भाई मुज़फ़्फ़रपुर में ही आँखों के डॉक्टर थे । कई साल बीत गये थे, पर प्रैक्टिस चल नहीं रही थी । बहुत परेशान थे बेचारे । एक दिन अचानक मामी को खयाल आया कि मामा तो लॉयन्स क्लब के पदाधिकारी हैं, अक्सर दुखियारी गरीब जनता के मोतियाबिन्द के ऑपरेशन के लिए कैम्प लगवाते हैं । क्यों न इस बार भइया को इस कैम्प से जोड़ कर हाइलाइट किया जाय । जिन मरीज़ों का वे ऑपरेशन करेंगे वे बाद में भागे भागे उनकी क्लीनिक में आएँगे । और फिर सारे शहर में भइया के नाम की धूम मच जाएगी, उनकी क्लीनिक चल निकलेगी । परोपकार का परोपकार, काम का काम । मामी ने यह बात मामा को बताई । मामा तो अपने साले को वैसे ही इतना मानते थे, ऊपर से पत्नी का आग्रह । कैसे टालते ?
दो महीने बाद मोतियाबिंद के ऑपरेशन का कैम्प लगाने की घोषणा हुई । मामा के साले और उनके एक दोस्त डॉक्टर शुक्ल के नाम के पोस्टर शहर के कोने कोने में लग गए । अभी तो कैम्प लगा भी नहीं

और मामा के साले के नाम की धूम मच गई और उनकी क्लीनिक जो पहले खाली रहती थी, स्टाफ़ चाय समोसा करते रहते थे, वह गुलज़ार होनी शुरु हो गई । मरीज़ों का ताँता लगने लगा ।

२२

***

साले की प्रैक्टिस और दुखियारी जनता की आँखों की रोशनी का मामला था, मामा ने जी जान लगा दिया । शहर की दीवारों पर पोस्टर लग गए । पोस्टरों पर विख्यात आई सर्जन डॉक्टर सिंह और डॉक्टर शुक्ल के नाम बड़े बड़े अक्षरों में उनकी मनमोहन तस्वीरों के साथ । रिक्शे पर माइक लेकर एक आदमी ने शहर का चक्कर लगाया घोषणा करते हुए । तब टीवी नहीं था, इसलिए अख़बारों में इश्तिहार छापे गए । कैम्प दिसम्बर के महीने में लगने वाला था । आपको तो पता होगा भारत में ऑपरेशन - खास तौर पर आँखों का ऑपरेशन - जाड़ों में ही कराने की पुरानी परम्परा है । शहर के बाहरी इलाक़े में एक फ़ुटबॉल मैदान चुन लिया गया कैम्प के लिए ।

फिर वह दिन आ ही गया जिस दिन कैम्प लगना था, ऑपरेशन होने थे । मैदान के गेट के पास रिसेप्शन बनाया गया जिसका जिम्मा मामी के हाथों में था । मरीज वहाँ आते, फ़ॉर्म भरते, कम्पाउंडर उनका ब्लड प्रेशर जांचता । फिर वे मरीज रैंडम ऑर्डर में मैदान के बाएँ या दाएँ बाज़ू में भेज दिए जाते । दो शामियाने लगे थे । बाईं तरफ के शामियाने में डॉक्टर सिंह ऑपरेशन करने वाले थे और दाईं तरफ वाले में डॉक्टर शुक्ल ।

दोनों शामियानों में लाइन से पाँच पाँच ऑपरेशन टेबुल लगा दिए गए थे । योजना यह थी कि जैसे ही ऑपरेशन समाप्त होगा , मरीज को बाहर डिस्चार्ज लाउंज में भेज दिया जाएगा जहां कम्पाउंडर उन्हें आंख में डालने वाले ड्राप्स देगा और निर्देशों से भरा कागज पत्तर भी थमा देगा ।

रिसेप्शन डेस्क के पास ही एक दूसरा टेबुल लगा था जहां लाउड स्पीकर की व्यवस्था थी जहां शहर की एक जानी मानी रेडियो कर्मी युवा महिला जिसका कंठ कोकिला की तरह मधुर था और देहयष्टि राखी की तरह सुंदर थी और जो कभी कभी क्रिकेट मैच की कमेंट्री भी करती थी, बैठी थी ।

अग़ल बगल में चाय समोसे का भरपूर इंतज़ाम था ताकि डॉक्टर और स्टाफ़ काम करते रहें, थकें नहीं । कोका कोला की दर्जनों बोतलें बर्फ भरे कंडाल में रख दी गई थीं । एक खुशनुमा उत्सव जैसा वातावरण हर तरफ छा गया था ।

२३

***

वह शुरु दिसम्बर की एक खुशगवार सुबह थी । जाड़ों की ये हिन्दुस्तानी सुबहें जब हवा में हल्की सी खुनक होती है जो खरामा खरामा धूप निकलने पर भाप बन कर उड़ने लगती है, संसार की सबसे ख़ूबसूरत नियामतों से एक हैं । ऐसी कितनी ही सुबहें मैंने बाहर घास पर बैठे ऊंघते हुए चाय पीते हुए अखबार पढ़ते हुए बिताई हैं, जिनकी याद कहीं दूर रेडियो पर बजते गुरुदत्त की फिल्म के किसी उदास गीत की तरह अचानक उठती है और मीठी टीस छोड़ जाती है ।

२४

***

सुबह के नौ बजे रहे होंगे । ठंढ विदा हो रही थी । धूप की गुनगुनी ऊष्मा ने हर तरफ पाँव पसार दिए थे । निरभ्र आकाश में बादल का एक टुकड़ा न दिखता था । शौक़ीन लोगों ने चढ़ती हुई खुशगवार गर्मी के बावजूद बंदर टोपियाँ और रंग बिरंगी डिज़ाइनों के स्वेटर पहन रखे थे । महिलाओं ने ख़ूबसूरत शॉल ओढ़ रखे थे । कुछ कर्मचारी कुल्हड़ों में गर्म चाय सुड़क रहे थे । रेडियोकर्मी कोकिला अपने बाल सँवारने के बाद लाउड स्पीकर में हेलो हेलो टेस्टिंग टेस्टिंग कर रही थीं । पहले उनका मधुर कोकिल स्वर गूंजा, फिर आवाज फट गई और लाउड स्पीकर में से ऐसी आवाज निकली कि जैसे जंगल में कोई जानवर चिंघाड़ रहा हो । उन्होंने माइक बंद कर दिया और उँगलियों के इशारे से टेक्नीशियन को बुलाया । मरीज आने लग गए थे । डॉक्टर सिंह और डॉक्टर शुक्ल पहुँच गए थे, संग संग चाय सुड़क रहे थे और दिन भर के कार्यक्रम के बारे में विचारों का आदान प्रदान कर रहे थे । कम्पाउंडर और दूसरे स्टाफ़ डॉक्टरों के पीछे खड़े हाथ पीठ के पीछे किए डॉक्टरों की ख़िदमत के लिए तैयार खड़े थे ।

उधर रिसेप्शन पर एक देहाती आदमी ने पान खा कर वहीं पिच्च से थूक दिया था जिससे मामी बहुत विचलित हुई थीं । उनकी क्रीम रंग की साड़ी पर बस एक मामूली सा लाल छींटा पड़ा था । मामी ने उसे गंवार जाहिल की संज्ञा देते हुए कस कर डांट पिलाई थी । थोड़ी देर के लिए उनका मूड ऑफ हो गया था । उन्होंने अपने गॉगल्स निकाल कर टेबल पर रख दिए थे और रेशमी रूमाल को पानी में भिंगो कर महंगी साड़ी पर पड़ा दाग रगड़ कर मिटाने की अर्धसफल चेष्टा की थी ।

२५

***

थोड़ी देर में मामी का गुस्सा शांत हुआ । उन्होंने अपना काला गॉगल्स फिर से धारण कर लिया था और वे अपनी कुर्सी पर बैठी कर्मचारियों को तरह तरह के निर्देश देने लग गई थीं । मरीज़ों की संख्या बढ़ती जा रही थी । उनके लिए मैदान में दरियां बिछा दी गई थीं । बारी बारी से एक एक मरीज बुलाया जाता, उसका रजिस्ट्रेशन होता, उसकी आँखों में आई ड्रॉप डाल दिया जाता, उसका ब्लड प्रेशर नापा जाता । जिन मरीज़ों का रजिस्ट्रेशन हो चुका था, उन्हें दूसरी तरफ लगी प्लास्टिक की कुर्सियों पर बिठा दिया जाता जहां वे धैर्यपूर्वक ऑपरेशन के लिए अपना नम्बर आने का इंतज़ाम करते ।

डॉक्टर सिंह और डॉक्टर शुक्ल दोनों अपने अपने शामियानों में अपनी अपनी टीमों के साथ प्रवेश कर चुके थे ।

कोकिला मैडम ने एक बार पहले माइक्रोफ़ोन को अपनी तर्जनी से ठोंक कर साउंड चेक किया, फिर माइक में हेलो हेलो, टेस्टिंग टेस्टिंग बोलीं । सारे मैदान में उनके कंठ से निकला मधुर स्वर गूंजा । फिर मैडम माइक में बोलीं :

भाइयों और बहनों

२६

***

कोकिला मैडम ने खाँस कर गले का खंखार साफ़ करने के बाद सबसे पहले आदरणीया कमिश्नर पत्नी का आभार प्रकट किया जिन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से जनकल्याण के इस पवित्र कार्य के लिए समय निकाला था । फिर उन्होंने लॉयन्स क्लब की पुरानी जनसेवा की विरासत का हवाला देते हुए सारे लॉयनों और लायनेसों की सराहना की । उन्होंने लल्लू भोजनालय वाले लल्लू साव का चाय, समोसा और कोक की सुविधा प्रदान करने के लिए आभार प्रकट किया । फिर रामप्रसाद चौरसिया टेंट वाले, ओमप्रकाश श्रीवास्तव सिनेमाघर वाले और महेंद्र कपूर साड़ीवाले को तमाम सुविधाएँ और धनराशि के योगदान के लिए धन्यवाद दिया ।

फिर नंबर आया दोनों डॉक्टरों का । उन्होंने डॉक्टर सिंह के आँखों के इलाज में पूरे प्रांत में प्रसिद्ध होने का हवाला दिया । बताया कि डॉक्टर साहब ने अपना जीवन जनता की आंखों को समर्पित कर दिया है । उनके हाथ में ऐसा गुण है कि अंधे से अंधे आदमी की आँखों की रोशनी भी लौट आए । कुछ इसी तरह की पर हल्की सी कम प्रशंसा उन्होंने डॉक्टर शुक्ल की भी की ।

फिर उन्होंने मरीज़ों को दूर दूर से अपनी नि:शुल्क चिकित्सा के लिए आने के लिए धन्यवाद दिया और आश्वासन दिया कि लॉयन्स क्लब के तत्वधान में ऐसे कैम्प आगे भी लगते रहेंगे ।

उन्होंने जनता की सेवा को जीवन का मूल मंत्र बताया, सकल धर्मों का सार, ईश्वर की आराधना बताया ।

२७

***

कोकिला मैडम ने घोषणा की कि जैसी कि लॉयन्स क्लब की परम्परा रही है, अब राष्ट्रगान होगा । राष्ट्रगान की समाप्ति के बाद जनता के लाभ के लिए और पारदर्शिता के हित में कैम्प में हो रहे ऑपरेशनों का आँखों देखा हाल मंच से प्रसारित होगा । सौभाग्य से मैडम का रेडियो पर क्रिकेट कमेंट्री करने का अनुभव शायद यहाँ काम आएगा ।

मैडम ने वहाँ एकत्र सज्जनों और देवियों से थोड़ी देर के लिए चाय समोसा छोड़ कर राष्ट्रगान के सम्मान में अपने अपने स्थान पर खड़े होने की अपील की ।

२८

***

वहां उस दिन मौसम गुलज़ार खुशगवार जरूर था पर यहाँ तो ऐसा नहीं है । यहाँ तो बड़ा भद्दा और मनहूस है । इसलिए इस कथा को आगे बढ़ाना अब जी का जंजाल है । पर दिक्कत यह है कि न लिखूँ तो कैसे न लिखूं । कर्तव्य निर्वाह का कितना महत्व है - यह तो मैंने लॉयन्स क्लब की उस मीटिंग में सीख ही लिया था । तो कर्तव्य तो करूँगा किसी तरह काँख कूंख कर । बस ईश्वर से यही प्रार्थना करनी होगी कि मनहूसियत क्वारंटीन में ही रहे, इधर उधर न फैले ।

२९

***

राष्ट्रगीत गायन के बाद सब लोग अपने अपने स्थान पर बैठ गए । कोकिला मैडम ने शांतिपूर्ण तरीके से राष्ट्रगीत गाने के लिए सबके प्रति आभार प्रकट किया । अब तकरीबन दस बज चुके थे और आँखों के ऑपरेशन का कार्यक्रम आरम्भ होने वाला था । मैडम ने माइक संभाला :

"भाइयों और बहनों

आप जिस घड़ी की इतनी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे, वह घड़ी अब आन पहुँची है । डॉक्टर सिंह और डॉक्टर शुक्ल दल बल के साथ अपने अपने शामियानों में हैं । मैं देख रही हूँ कि डॉक्टर शुक्ल के शामियाने में एक मरीज ऑपरेशन टेबुल पर लेट भी चुका है । कोई वृद्ध पुरुष हैं, उनके चेहरे पर हल्की सी चिन्ता का स्वाभाविक भाव है । पर चिन्ता की तो कोई बात ही नहीं । सबको पता है डॉक्टर शुक्ल कितने अच्छे और कुशल सर्जन हैं ।

डॉक्टर सिंह पिछड़ रहे हैं । समझ में नहीं आ रहा है कि उनके लोग इतनी धीमी गति से क्यों चल रहे हैं । ऐसा करेंगे तो बेचारे डॉक्टर सिंह बुरी तरह पिछड़ जाएंगे । इसी लिए कहा गया है कि टीम भावना किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए कितनी महत्वपूर्ण चीज है । देखिए, डॉक्टर सिंह के ऑपरेशन टेबुल पर तो मरीज अभी लेटा भी नहीं, उधर डॉक्टर शुक्ल ने तो बुढ़ऊ की आँख में चीरा भी लगा दिया । कम ऑन डॉक्टर सिंह, डोंट बि लेफ़्ट बिहाइंड, डोंट लेट योर सपोर्टर्स डाउन ।

डॉक्टर सिंह के समर्थकों में मायूसी की लहर दौड़ गई । मैडम ने चाय के कुल्हड़ से एक चुस्की ली और रुकी हुई कमेंट्री फिर शुरु कर दी :

पर यह क्या । गजब हो गया । डॉक्टर शुक्ल ने पहला मरीज तो जल्दी से निपटाया, पर डॉक्टर सिंह अब पीछे नहीं हैं । उन्होंने भी एक ऑपरेशन समाप्त कर दिया है । मरीज एक बूढ़ी स्त्री थी नीली साड़ी में । अब वह वहाँ से उठ कर डिस्चार्ज लाउंज में जा रही है । मामला अब बराबरी पर है ।"

डॉक्टर सिंह के समर्थकों ने राहत की साँस ली ।

कोकिला मैडम आँखों देखा हाल सुनाती रहीं । लंच के समय ब्रेक हुआ । कोकिला मैडम समोसा खाने लगीं और उन्होंने साधना का झुमका गिरा रे गीत लाउड स्पीकर पर चला दिया ।

देखते देखते तीन बज गए । कैम्प को चार बजे बंद होना था । मैडम ने घोषणा की :

"लंच तक तो मामला करीब करीब बराबरी पर था, पर अब डॉक्टर शुक्ल ने कम्फर्टेबल बढ़त बना ली है । डॉक्टर शुक्ल अड़तीस ऑपरेशन कर चुके हैं जबकि बेचारे डॉक्टर सिंह पैंतीस पर ही अँटके हैं । अब डॉक्टर सिंह के लिए डॉक्टर शुक्ल को पकड़ पाना टेढ़ी खीर सिद्ध हो सकता है । कुछ भी हो, हारना जीतना अपनी जगह पर है, पर स्वस्थ और रोमांचकारी प्रतियोगिता चल रही है ।

ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारा जीवन भी ऐसे ही चलता रहे ।"

३०

***

तीन बजे टी ब्रेक हुआ था । अब कैम्प समाप्त होने में बस एक घंटा बचा था । अब इस एक घंटे में जितने ऑपरेशन हो जायं ।
मैडम ने फिर माइक संभाला :
"अब तक तो डॉक्टर शुक्ल थोड़ा सा आगे चल रहे हैं । देखना है कि डॉक्टर सिंह उनको छू पाते हैं या नहीं । लगता तो मुश्किल है पर जब तक खेल समाप्त न हो जाय, फैसले की घोषणा नहीं हो सकती । वैसे मैं देख रही हूँ कि डॉक्टर सिंह की ऑपरेशन करने की रफ़्तार तेजी पकड़ रही है । यदि अंत तक ऐसे ही चला तो कौन जाने क्या हो । वह जो काली साड़ी में मोटी औरत उनके टेबुल पर अभी अभी लेटी थी, देखती हूँ उठ कर डिस्चार्ज लाउंज में जा रही है । गजब ! कुछ भी कहो, डॉक्टर सिंह के हाथों में जादू है ।
अब तो सिर्फ पंद्रह मिनट बचे हैं । डॉक्टर शुक्ल ने ४५ ऑपरेशन पूरे कर लिए हैं जबकि डॉक्टर सिंह ४४ पर हैं । पर यह क्या ! डॉक्टर शुक्ल इस मरीज का ऑपरेशन करने में इतना समय क्यों लगा रहे हैं ? हाथों में दर्द तो नहीं उठ गया ? कोई कॉम्प्लिकेशन तो नहीं हो गया ? हे भगवान, डॉक्टर शुक्ल तो अटक गए हैं और देखती क्या हूँ कि डॉक्टर सिंह उनकी बराबरी करके मरीज नंबर ४६ पर पहुँच गए हैं । यह तो गजब हो गया । अगर डॉक्टर शुक्ल ने जल्दी से यह ऑपरेशन नहीं निपटाया तो फिर डॉक्टर सिंह बाज़ी मार ले जाएंगे ।
अभी अभी डॉक्टर शुक्ल ने ४६ वें मरीज का ऑपरेशन शुरु कर दिया है । डॉक्टर सिंह का ४६ वाँ मरीज उठ कर डिस्चार्ज लाउंज में चला गया है । अब इतना समय नहीं बचा कि ४७ वें मरीज का ऑपरेशन निर्धारित समय सीमा में हो सके ।
घड़ी की सुई किसी भी वक्त ४ को छूने वाली है । तीस सेकेंड, बीस, दस, पाँच । ४ बज गए ।
यह तो गजब हो गया । ऑपरेशनों की संख्या के आधार पर दोनों डॉक्टरों में ड्रॉ हो गया । दोनों ने ४६ ४६ ऑपरेशन किए । पर चूँकि डॉक्टर सिंह के आखिरी मरीज का ऑपरेशन डॉक्टर शुक्ल के मरीज से दो मिनट पहले पूरा हो गया, इसलिए डॉक्टर सिंह विजयी रहे । "
सारा मैदान तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा । डॉक्टर सिंह के समर्थकों में हर्ष की लहर दौड़ गई । लोग एक दूसरे को बधाई देने लगे । मामी को चेहरा जो पहले थोड़ा बुझा बुझा सा था, फिर से चमचम चमकने लगा । उनके चेहरे पर बित्ते भर की मुस्कान दौड़ी और फिर वहीं ठहर गई ।
भाई की विजय के मौके पर किस बहन का चेहरा नहीं खिलेगा ?
३१
***
सारा दिन व्यस्तता में गुज़रा । लोग थक गए थे । कोकिला मैडम ने सभी देवियों तथा सज्जनों से अपना स्थान ग्रहण करने का निवेदन किया ।
फिर उन्होंने पूजनीया कमिश्नर पत्नी को आशीर्वचन के दो शब्द कहने के लिए मंच पर आमंत्रित किया । कोकिला मैडम ने कमिश्नर पत्नी को गुलाब के लाल फूलों का गुलदस्ता भेंट किया ।

कमिश्नर पत्नी मैडम ने दुखियारी जनता की आँखों के ऑपरेशन के इस यज्ञ के आयोजन के लिए लॉयन्स क्लब मुजफ्फरपुर की भूरि भूरि प्रशंसा की । उन्होंने दोनों डॉक्टरों के ऑपरेशन कौशल को मुजफ्फरपुर का गौरव बताते हुए उन्हें मंच पर आमंत्रित किया । डॉक्टर शुक्ल को रनर अप और डॉक्टर सिंह को विजयी होने के प्रमाण पत्र और एक एक शॉल दिए गए । कमिश्नर पत्नी ने लॉयन्स क्लब को उन्हें आमंत्रित करने के लिए धन्यवाद दिया ।

कमिश्नर पत्नी मैडम के मंच से उतरने पर लोगों ने तालियाँ बजाईं । कोकिला मैडम ने फिर माइक संभाला । उन्होंने बारी बारी से सभी मरीज़ों को मंच पर आमंत्रित किया और दवा दारू के लिए लॉयन्स क्लब की ओर से पचास पचास रुपए दिए । फिर उन्होंने सारे स्पॉन्सर्स और दानकर्ताओं को कार्यक्रम की सफलता संभव बनाने के लिए धन्यवाद दिया । जाते जाते उन्होंने कहा कि हमें अपनी ओर से प्रयास करना चाहिए कि जनसेवा के इस महान कार्य की मिसाल रखने के लिए दोनों डॉक्टरों - विशेष कर डॉक्टर सिंह - के नाम की पद्मश्री पुरस्कार के लिए केन्द्र सरकार से अनुशंसा की जाय । पुरस्कार मिलेगा हौसला बढ़ेगा ।

अंत में उन्होंने सब सम्मानित जनों को बुफे भोज में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया ।

इसी कार्यक्रम में जो चंदा स्पॉन्सरों ने दिया था, उसमें हेराफेरी का आरोप यूपी के कमीने गुप्तवा ने मीटिंग में लगाया था और ऑडिट की माँग कर दी थी जिससे मामा इतने दुखी हुए थे और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया था । लोग हक्का बक्का रह गए थे, गुप्ता के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं और लोगों ने मामा से त्यागपत्र वापस लेने के लिए अनुनय विनय किया था । पर मामा इस्तीफ़े पर अड़ गए थे और चारों तरफ कुहराम मच गया था । मामी को समझ में नहीं आ रहा था कि मामा ने ऐसा क्यों किया । पर मामा मामी को हर बात बताते कहाँ थे ? कोई बात लीक हो जाय तो ?

३२

***

गुप्तवा नया नया यूपी से आया था । व्यापारी था । आते ही कुछ अफ़सरों से साँठगाँठ करके स्थानीय राजनीति में लग गया था । अपने को बहुत चालाक समझता था । पैसा भी रखा था, अक्सर अपने यहाँ पार्टी करता । नेटवर्किंग में उस्तादी कर रहा था । लॉयन्स क्लब में ऊँचे पद पर खुद बैठना चाहता था । इसीलिए उसने मामा के खिलाफ साजिश रची और ऑडिट की बात उठाई । पर उसे अंदाज नहीं था कि मामा कितने घाघ हैं - ऐसे कितने गुप्ता फुप्ता को साबुत लील जायं ।

मामा ने स्थानीय ठाकुर बाभनों से मंत्रणा कर इस षडयंत्र से निपटने की योजना बनाई ।

लॉयन्स क्लब की मीटिंग में सबके सामने मामा ने इस्तीफ़ा दे दिया । गुप्तवा तो सकते में आ गया । उधर लोग मामा से इस्तीफा वापस लेने के लिए अनुनय विनय करने लगे । सिंह साहब के बिना लॉयन्स क्लब का क्या होगा आदि । पर मामा ने सारी विनतियों को ठुकरा दिया, इस्तीफा वापस न लिया । इससे मामा की स्थिति और भी मज़बूत हुई । लोगों ने उनके सिद्धांतवाद का लोहा माना ।

पर कोषाध्यक्ष का पद रिक्त हो गया था । उसके लिए चुनाव होना तय हुआ । मुज़फ़्फ़रपुर के वरिष्ठ एवं संभ्रांत नागरिक कपड़ा व्यापारी रामलगन दुबे ने मामी के नाम का प्रस्ताव रख दिया । उनका कहना था कि स्त्री सशक्तिकरण के युग में उचित नहीं है कि महत्वपूर्ण संस्थाओं के महत्वपूर्ण पद पुरुषों के पास रहें । इससे समाज में गलत संदेश जाता है और संस्था की छवि धूमिल होती है । और फिर मामी से अधिक कर्मठ एवं मेधावी कोषाध्यक्ष कहाँ मिलेगा । अधिकांश लोगों ने उत्साहपूर्वक दुबे जी का समर्थन किया ।
गुप्ता तिलमिला कर रह गया । कुछ न कर सका । मामी निर्विरोध कोषाध्यक्ष चुन ली गईं । घर की बात घर में रही, घर का माल घर में रहा ।
३३
***
मामा मामी के संग साथ में धीरे धीरे मुझ में भी बदलाव आने लगा । गवईं गवांर अंधविश्वासों से मुझे पहले से ही नफरत थी, अब और बढ़ी । मैं उस कूपमंडूक पिछड़े समाज से अपने सम्बंध की बात सोचता और मेरा चेहरा शर्म से लाल हो जाता । मैं नहीं चाहता था कि मैं ऐसी कोई भी हरकत करूँ जिससे किसी को मेरे गवंई गवांर माहौल से कभी जुड़े होने का कोई संकेत मिले । अंग्रेज़ी तो मुझे पहले से ही आती थी, अब मेरा धड़का थोड़ा और खुला । अंग्रेज़ी में भी मेरा स्तर अब जेम्स हेडली चेज से निकलता हुआ थॉमस हार्डी की ओर बढ़ चला था । मैं मामा के यहाँ होने वाली पार्टियों में और कभी कभी लॉयन्स क्लब की मीटिंगों में सजे धजे लोगों को देखता तो ईर्ष्या से भर उठता । मैं चाहने लगा कि मैं आधुनिक बनूँ, प्रगतिशील बनूँ । यहीं पहली बार मेरी राजनेताओं, व्यापारियों और प्राध्यापक बुद्धिजीवियों से मुठभेड़ हुई । मैं उनकी बातें सुनता और हैरान हो जाता । मैं अबतक किस दुनिया में सड़ रहा था ! अच्छा हुआ अंग्रेज़ी में मेरे खराब नम्बर आए वरना इस नई दुनिया से मेरा परिचय कैसे होता ।
मैंने वहीं आधुनिकता, प्रगतिशीलता के लिए अपने बढ़ते हुए जज़्बे को महसूस किया । । नई दुनिया की नई ताज़ी हवा में मेरा व्यक्तित्व गुलाब की ताजा कली की तरह खिल उठा । मैंने उस सड़े गले पुरातनपंथी समाज से अपने सारे नाते रिश्ते तोड़ने का फ़ैसला कर लिया ।
मैंने तय कर लिया - कुछ भी हो, मैं आई ए एस बन कर ही रहूंगा ।
३४
***
मामा के दोस्तों में कई स्थानीय कॉलेज के प्राध्यापक थे । अक्सर मामा के यहाँ उनकी बैठकी बैठती । मेरा अनुमान है कि वे सबसे छिपा कर वहाँ वोदका का सेवन करते । वैसे कभी कभी पिताजी भी ऐसी ही बातें करते थे जैसी यहाँ बैठकों में होती थीं पर मैंने उनकी बातों पर बहुत ध्यान न दिया था । उनका स्टाइल देहाती था जबकि यहाँ माहौल आधुनिक और प्रगतिशील था । यहां नई दुनिया की रोशनी का promise था । वे संभावनाओं से भरे दिन थे, वे बौद्धिक विकास के उत्सव के दिन थे । इन बैठकों में अक्सर सर्वहारा की शोषण से मुक्ति, लैटिन अमेरिका में चल रहे वर्गसंघर्ष, सामंती बुर्जुआ समाज के

पूंजीवादी समाज में परिवर्तन की दार्शनिक अवधारणा और मार्क्स के उस विषय पर विचार, प्रगतिशील साहित्य के सरोकार जैसे विषयों पर गूढ़ बहसें होतीं, कभी कभी तो हाथापाई की नौबत आ जाती, फिर वे लोग गिलास में थोड़ा सा द्रव और लेते और स्थानीय राजनीति के बारे में बात करने लग जाते । ये लोग स्वयं तो साहित्यकार नहीं थे पर प्रगतिशील जनवादी साहित्य रचना और वर्गसंघर्ष में उस साहित्य की भूमिका के बारे में अक्सर बातें करते । भारतीय समाज की सड़ांध को बढ़ाने में परम्परा, धार्मिक अंधविश्वास, वर्जना से लदे रीति रिवाज, सड़े गले संस्कार और वैज्ञानिक सोच के अभाव के बारे में भी उन दिनों मैं सोचने को मजबूर हुआ ।
उन दिनों ही मेरी बौद्धिकता का बिरवा रोपा गया जो बाद में बड़ा होकर वृक्ष हुआ जिसकी छाया में मैंने जीवन के तमाम सुखों का आनंद लिया ।

३५

***

मामा ने मुजफ्फरपुर के एक जाने माने महाविद्यालय में मेरा प्रवेश करा दिया । यह मेरे जीवन का एक निर्णायक मोड़ रहा । वहाँ मेरे बौद्धिक विकास की नींव पड़ी । मेरी अंग्रेज़ी और चमकी और निखरी । मैं अब कभी कभी शेक्सपियर को उद्धृत कर देता और सामने वाले दंग रह जाते । मामा मामी मेरी प्रगति से बहुत प्रसन्न थे । पिता जी से बात तो नहीं हुई पर वे भी अप्रसन्न न थे । मेरी माँ तो पहले से ही गदगद थी । अब सबको विश्वास हो चला था कि मेरा भविष्य बन कर ही रहेगा । आइएएस बनने में भी अब बहुत संदेह न रहा था ।
अब पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो प्रतीत होता है कि मेरे अंदर जीनियस होने की संभावनाएँ तो प्रारम्भ से ही मौजूद थीं पर गाँव गवंई वातावरण में वे कुम्हला रही थीं । वे उस पौधे की तरह थीं जो गर्मी के दिनों में पानी के अभाव में सूख कर मरने वाला हो कि तभी माली की उस पर नजर पड़े, माली उसे दुलार से खादपानी दे और मरते हुए पौधे का रंगरूप निखर आए, उसमें खूबसूरत फूल निकल आएँ । बुद्धिजीवियों से संगत के अभाव में मेरी प्रतिभा का क्षरण, उसका नाश हो रहा था ।
आप शायद विश्वास न करेंगे जो लड़का हाई स्कूल में पास विदाउट इंग्लिश होते होते बचा था, उसी ने सारे विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी में टॉप किया । अंग्रेज़ी के अतिरिक्त मेरे दूसरे मुख्य विषय थे - हिन्दी साहित्य, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र । इन विषयों के अतिरिक्त इतिहास और दर्शनशास्त्र में भी मेरी भारी रुचि रही ।
अब मेरी प्रतिभा बुरी तरह खिलने जा रही थी । उसमें स्वर्णिम पंख लग रहे थे ।

३६

***

मैंने खद्दर का सफेद कुर्ता नीली जीन्स पर डाला और ऊंची शिक्षा के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय चला गया ।

३७

***
ऊंची पढ़ाई लिखाई के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जाने के निर्णय तक पहुँचने में बहुत कठिनाई नहीं हुई । निर्णय सर्वसम्मत हुआ । मुजफ्फरपुर में जिस बुद्धिजीवी से पूछो - एक ही बात कहता :
“बुद्धिजीवियों के लिए कम से कम एशिया में कोई स्थान है तो जनेवि है । ठीक है, इंगलैंड में कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड और अमेरिका में हावर्ड हैं जो शायद जनेवि को टक्कर दे सकें । और तो हमें कोई दिखता नहीं ।
वहां बुद्धिजीवियों की संगत में रहोगे तो एक दिन वह आएगा जब तुम खुदै बड़के बुद्धिजीवी बन जाओगे । बड़ा बुद्धिजीवी बनने के लिए सही हवापानी, सही माहौल ज़रूरी है । ठीक है, यहाँ मुजफ्फरपुर में हमलोग भी छोटे-मोटे बुद्धिजीवी हैं पर जनेवि के बुद्धिजीवियों का जलवा ही अलग है । और वहाँ भाँति भाँति के बुद्धिजीवी हैं । अब समझ लो कि जनेवि बुद्धिजीवियों की नर्सरी है । वहाँ जाओगे, चमक आ जाएगी, फलोगे फूलोगे । यहां वहाँ जा कर अपनी प्रतिभा का नाश न करो ।
तुम तो खुदै जीनियस हो, सब बात समझते हो ।”
३८
***
पिताजी की मेरे बारे में बहुत ऊँची धारणा कभी नहीं रही । पास विदाउट इंग्लिश वाली बात से तो वे मेरे बारे में बहुत निराश हुए । उनको समझ में ही नहीं आया कि जिस लड़के को इतनी उम्मीदों से और हाथ तंग होने के बावजूद इतना खर्च करके उन्होंने सेंट टेरेसा कॉन्वेंट में पढ़ने को भेजा वह ससुर पास विदाउट इंगलिश होेते होते कैसे बचा ?
पिताजी मुझे हमेशा नाकारा लल्लू ही समझते रहे ।
पर जब मेरे जनेवि जाने की खबर मिली तो पहले तो उन्हें विश्वास ही न हुआ । उनको लगा कि मामा मामी ने जरूर कोई हेराफेरी की होगी । पर काफी ठोंकने ठठाने के बाद जब उन्हें पता चला कि वाकई बिना हेराफेरी के वहां मुझे प्रवेश मिल गया है तो मजबूरी में न चाहते हुए भी दबी ज़ुबान से उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि शायद मेरे अंदर शुरु से ही जीनियस होने के लक्षण थे जो वे पकड़ न पाए थे । इस बात से उन्हें अपनी आंख के बारे में निराशा भी शायद हुई पर दूसरी तरफ पिता होने के नाते अंदर ही अंदर वे प्रसन्न भी हुए हालांकि किसी को इस बात का पता न चला ।
पिताजी ने जनेवि के प्रकांड विद्वान जैसे मैनेजर पांडेय और नामवर सिंह का नाम सुन रखा था । उन्हें इस बात की खबर थी कि देश में यदि कहीं बुद्धिजीवी हैं तो जनेवि में हैं । वे यह भी मानते थे कि कम से कम भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वहारा की मुक्ति का मार्ग कहीं से निकलेगा तो जनेवि की वैचारिक भूमि, वहां की क्रांतिधर्मी जमीन से निकलेगा ।
मां ने जनेवि का नाम न सुना था । पर सब लोग खुश थे तो उनको लगा कि उनका लड़का सही रास्ते पर है । इसी रास्ते से कलेक्टर बनेगा । वे इस संभावना को सोच सोच कर फूली नहीं समा रही थीं ।

उन्होंने घर में सत्यनारायण व्रथ कथा करवाई जिसमें पिताजी को बैठना पड़ा । सारे मुहल्ले में पंचामृत और प्रसाद बँटा ।

३९

***

हो सकता है आप इसे अतिशयोक्ति समझें, हो सकता है कुछ असंवेदनशील लोग मेरा मजाक उड़ाएँ पर मैं जो कहता हूँ पूरी तरह सच है । जब मैं जनेवि के कैम्पस पहुँचा तो मेरा माथा ही घूम गया । मेरी आँखें ऐसे चौंधियाईं जैसे किसी बच्चे की खिलौने की दुकान में घुसने पर चौंधियाती होंगी । मुझे घुसते ही विश्वास हो गया कि मेरा भविष्य अब करीब करीब बन चुका है । यही है वह जगह जो मेरे लिए ही बनी थी । मैं तो अभी सड़कों, ढाबों, छात्रावासों को ही घूर घूर कर देख रहा था, अभी मेरी किसी से बात तक न हुई थी पर बात बिल्कुल स्पष्ट थी, आप उसे सूंघ सकते थे । हर तरफ से बौद्धिकता टपक रही थी । एक ढाबे में बैठ कर मैंने चाय पी, मुझे तो लगा चाय तक में बौद्धिकता घुली हुई है । सड़कों, छात्रावासों, फ़ैकल्टी की इमारतों में जिस तरह अध्यापक, छात्र, कर्मचारी चलते, उनकी भंगिमाएँ, उनकी आँखों की चमक, उनके बोलने के ढंग - हर तरफ से बौद्धिकता झरी चली जा रही थी । मुझे लगा मैं जीनियसों की नर्सरी में आ गया ।

छात्रावास में मुझे एक कमरा मिला । अहा, मेरा कमरा । यहाँ अब मेरी बौद्धिकता का फूल खिलेगा । और दूसरे गदहिया विश्वविद्यालयों की तरह यहाँ सोने जागने के कोई दक़ियानूसी नियम न थे । पहली रात मैं मेस में खाना खाकर कमरे में लौट कर बिस्तरे पर सो गया । देखता क्या हूँ कि अचानक किसी ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया । मैं घबराया हुआ आँखें मलता हुआ उठा । घड़ी देखी - रात के दो बज रहे थे । मुझे समझ में नहीं आया कि रात दो बजे इस नई जगह में जहां अभी मुझे कोई जानता नहीं है, कौन दरवाजा खड़खड़ा रहा होगा । ध्यान रहे मेरे पुराने दकियानूसी संस्कार अभी झड़े न थे, सड़ी गली वर्जनाओं की जंजीरें अभी टूटी न थीं ।

४०

***

मैंने कमरे की बत्ती जलाई और हिचकिचाते हुए दरवाजा खोला । मेरे सामने पाँच छ लड़के लड़कियों का झुंड था । यह मॉनसूनी गर्मियों की रात थी । मैं पसीने में लथपथ था । मुझे पता था कि मेरे शरीर से पसीने की बास आती होगी । पसीने की बास को लेकर मैं हमेशा ही सचेत रहता हूँ । ठीक से नहाता हूँ, टैल्कम पाउडर भी लगाता हूँ । पर सामने से जो पसीने की मदमस्त महक का झोंका आया उसकी तासीर ही कुछ और थी । यह मिला जुला पसीना था । एकाध लड़के ने लुंगी गंजी जैसी कोई चीज पहन रखी थी, बाकी सबने टी शर्ट और जीन्स पहन रखे थे । टी शर्टों पर क्रांतिकारी इबारतें लिखी थीं । जैसे Down down capitalism, Free Bolivia, Victory to Angolan comrades, Hail Che, hail Fiedel, hail Mao आदि । एक के टी शर्ट पर लिखा था : Down with Trotsky, down with revisionism.

उनमें से एक लड़की ने तो मेरे गले में बाहें डाल दीं । first night in JNU, welcome. लड़की के मुंह से सिगार के धुएँ की तीखी गंध आ रही थी । यह बात सही है कि मैं बुद्धिजीवी बनने के मार्ग पर तेजी से अग्रसर था, पर आया तो मैं गवईं गंवार वातावरण से था - सकपका गया । तब तक मैं धूम्रपान न करता था, मुझे मितली आ रही थी, पर मैंने जज्ब किया और हिचकता हुआ उसके गले मिला । उसके पसीने की गंध ठीक ठाक थी । बाकी छात्रों ने हो हो हो हो का शोर मचा कर मेरे स्वागत में तालियाँ बजाईं । हर तरफ गुलजारियत की गंध फैल गई । मेरे जनेवि प्रवेश के चंद घंटों के अंदर मेरी वर्जनाएं दरकने सी लगीं, जंजीरों के चटकने की आवाजें आईं ।

४१

***

मैं जिस माहौल से आया था वहाँ तो घर की लड़कियों के अलावा दूसरी लड़कियों से बात तक करना एक अजूबा माना जाता था । लोग कहते - वो देखो सुगंधा सुनील से बात कर रही है, कैसा जमाना आ गया है, लड़कियों में अब शर्म न रही, आंख का पानी मर गया । लड़कियाँ दुपट्टा संभालते हुए नजर नीची करती हुई चलती थीं । और यहाँ ! बाप रे बाप । यहाँ तो लड़कियां जीन्स पहनती थीं । कोई कोई तो आप पर गिरती हुई सी रहती थीं - हैलो डार्लिंग हैलो डार्लिंग कहती हुई । मैं कहाँ तो लड़कियों से बात करने में शरमाता था और कहाँ तो अब लड़कियां यहाँ लदी चली आ रही थीं । कोई कहती - मेरे संग वोदका पीओ । कोई कहती - आओ सिगार पीओ । एक ने कहा - "यह क्या रोनी सी सूरत बना रखी है, यह यहाँ न चलेगा । यह बनारस पटना मुज़फ़्फ़रपुर नहीं है, यह जेएनयू है । वर्जनाएँ तोड़ कर फेंक दो साथी, देखो नई दुनिया तुम्हारे स्वागत में बाँहें फैलाए खड़ी है ।" अब आप मेरी स्थिति की कल्पना करिए । मेरी स्थिति बस्तर के उस आदिवासी जैसी थी जिसने रायपुर न देखा था और जिसे सीधे पेरिस के नाइट क्लब में उतार दिया गया था ।

बाद में मालूम हुआ कि उस रात जो लड़की मेरे गले में बाँहें डाल रही थी और जिसके बारे में मैंने सोचा था कि उसके मुँह से सिगार की गंध आ रही है, दरअसल वह सिगार की नहीं गांजे की गंध थी । मैं गधा पहचान न पाया था । वे लोग लड़कियों के छात्रावास में गाँजा और वोदका की महफ़िल से उठ कर आए थे ।

मैं एक तरह के सांस्कृतिक संकट से गुज़र रहा था । एक तरफ तो मेरी पुरानी गवंई गवांर पृष्ठभूमि और दूसरी तरफ यहाँ साथियों का यह खुलापन - दुनिया को समेटने, उसे आलिंगन करने की ज़िद ।

पर मैं कौन सा कम था । मैंने अपने अतीत का दमघोंटू बोझ एक झटके में अपने कंधे से उतारा । ठीक है - मैं गवईं गवांर माहौल से आया, पर इसमें मेरी कोई ग़लती तो न थी । मैं जानबूझ कर तो वहाँ पैदा न हुआ था । मैं अपने अतीत को मेरे वर्तमान का गला घोंटने न दूँगा । मैं साथियों के संग कंधे से कंधा, झोले से झोला, वोदका से वोदका, गाँजा से गाँजा और सिगार से सिगार मिला कर चलूँगा । मैं साथी बनूँगा ।

अब मैं वह आदमी न था जो एक समय में गवंई गंवार था । जैसे हिन्दुओं में कहते हैं न वैसे मेरा पुनर्जन्म हुआ ।
४२
***
मैं कितनी भी कोशिश करूँ जनेवि के उन दिनों के वातावरण का विवरण आपको न दे पाऊँगा । आपको अपनी कल्पना का सहारा लेना पड़ेगा । अब आप इतना ही समझ लीजिए - हर तरफ़ सर्वहारा क्रांति का वातावरण । सोते जागते क्रांति ही क्रांति । पशु और मनुष्य में कोई भेद नहीं । आदर्श समतामूलक समाज का एक छोटा मोटा मेला । दिनरात क्रांतिप्रसूत उत्सव । कभी यहाँ धरना, कभी वहाँ प्रदर्शन । कभी फ़िलिस्तीन की जनता पर हो रहे इज़रायली अत्याचार पर गोष्ठी, कभी अंगोला में क्रांतिकारी साथियों के जज़्बे को सलाम करने के लिए समारोह । कहीं महिषासुर सम्मान मेला । कहीं मनुस्मृति जलाने का कार्यक्रम ।
एक दिन सुबह सुबह मेरे कमरे में तीन साथी आए । एक कश्मीरी युवती जिसकी ख़ूबसूरती उसके सिर पर सजे लाल रंग के हिजाब से और भी निखर आई थी, एक बीड़ी फूंकता दुबला पतला बंगाली लड़का जिसकी शक्ल क़ानू सान्याल से मिलती थी और एक स्मार्ट जीन्स और टी शर्ट में गोरा चिट्ठा दिल्ली का ही रहने वाला किसी बड़े उद्योगपति का पुत्र । वे मुझे स्टूडेण्ट्स फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडिया का सदस्य बनाने आए थे । नहीं करने का तो सवाल ही नहीं था । कौन क्रांतिकारी होगा जो स्टूडेंट्स फेडरेशन का सदस्य न बनेगा ? हम सबों के हृदय में क्रांति की ज्वाला पहले से ही हल्की सी सुलगी थी, स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन ज्वाइन करने के बाद वही ज्वाला धधक उठी । हम तकरीबन रोज़ ही किसी न किसी मीटिंग में शामिल होते , सर्वहारावाद समतामूलक समाज की स्थापना के लिए योजनाएँ बनाते ।
वे शुरुआती दिन नशे में डूबे हुए दिन थे । मेरे जीवन का एक ही लक्ष्य रहा था - पूँजीवादी साम्राज्यवाद का ख़ात्मा । समतामूलक समाज की स्थापना । पुराने रीतिरिवाजों, शोषण पर आधारित परम्पराओं का ख़ात्मा । दलित, शोषित, वंचित का वर्चस्व ।
एक दिन क्रांति के सपनों में खोया मैं अकेला यूँ ही सड़क पर टहल रहा था कि दूर से आती एक जानी पहचानी शक्ल दिखाई दी । मैंने आंखें मलीं - कहीं मैं धोखा तो नहीं खा रहा हूँ, कल रात कहीं वोदका ज़्यादा तो नहीं पी ली ? थोड़ा नज़दीक आया तो शक्ल साफ़ हुई । मैंने धोखा न खाया था । यह तो बचपन का मेरा दोस्त था - चंदन । चंदन यहाँ कहाँ से आ गया ? वही घुंघराले बाल, दुबला पतला शरीर, कालिख की तरह काला रंग । मैं हैरान रह गया ।
४३
***
चंदन मेरे बचपन का दोस्त था । हम सेंट टेरेसा स्कूल में साथ ही पढ़ते थे । स्कूल की परीक्षाओं में कभी चंदन अव्वल आता, कभी मैं । चंदन गाता भी था, उसका गला बहुत सुरीला था ।

मैंने चंदन को बाँहों में जकड़ लिया । हम साथ साथ मेरे कमरे में गए । पुरानी बातें होती रहीं । पता चला कि चंदन भी यहीं जनेवि में पढ़ने आ गया था । चंदन विज्ञान का विद्यार्थी था - भौतिकी में शोध करना चाहता था । मैंने चंदन के स्वागत में आलमारी से बोतल निकाली जिसमें थोड़ी सी वोदका बची हुई थी । मैंने चाय के दो प्यालों में वोदका ढार दी । चंदन ने पूछा - क्या है ? मैंने कहा - पहले चखो, फिर बताता हूँ, इसे वोदका कहते हैं, रूस की क्रांतिकारी धरती पर इसका ईजाद हुआ था । वोदका जनेवि का सर्वहारा प्रसाद है । चंदन ने कहा - सॉरी यार, मैं नहीं पीता ।
मेरा तो माथा भिन्ना गया । कैसा लड़का है, यह यहाँ जनेवि में कैसे चलेगा ? लगता है इसके विचार बहुत सड़े गले हैं । पर कुछ दिन यहाँ रह लेगा तो शायद सुधर जाएगा । मैंने चंदन को कहा - तुम स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन ज्वाइन कर लो, तुम्हारी आंखें खुल जाएँगी । रोज़ एक नए बुद्धिजीवी से मिलने का मौक़ा मिलेगा, दुनिया की समझ विकसित होगी, यही वे चीज़ें हैं जिनसे आदमी का व्यक्तित्व निखरता है ।
फिर चंदन ने जो कहा वह सुन कर तो मैं हैरान रह गया । मुझे पता था चंदन बचपन में कभी कभी शाखा जाता था, नमस्ते सदा वत्सले गाता था । आपसे क्या छिपाऊँ एक दो बार उसके संग मैं भी गया था । पर वे लड़कपन की बातें थीं । लड़कपन में किससे भूलें नहीं होतीं ?
पर चंदन अब भी शाखा में जाता था, विद्यार्थी परिषद का सदस्य था - यह सुन कर मेरे मुँह का स्वाद कसैला हो गया । मुझे समझ में ही नहीं आया कि इस क्रांतिधर्मा उर्वरा भूमि पर यह पुरातनपंथी, प्रतिक्रियावादी बबूल का झाड़ कैसे उगा । कुछ देर तक तो मैं सन्न सा रहा । फिर जब मुझे अपने विचारों को दिमाग में थोड़ी तरतीब देने का मौक़ा मिला तब मैंने चंदन से कहा : चंदन, हम सब अपने जीवन में गलतियाँ करते हैं । और तो और कॉमरेड स्टालिन का ही उदाहरण लो । कॉमरेड स्टालिन तो पादरी बनने वाले थे, उन्होंनै बाकायदा पादरी की पढ़ाई की थी । पर देखो, जीवन ने एकदम नया मोड़ लिया और कॉमरेड सर्वहारा क्रांति के रहनुमा बन गए । अभी भी देर नहीं हुई है चंदन । तुम मेरे दोस्त हो, मेरी बात सुनो, यह सड़ा गला अतीत कूड़े में डालो और क्रांति की नई दुनिया में प्रवेश करो । क्रांति की देवी द्वार पर फूलों का हार लिए खड़ी है । यह उसी देवी की महिमा रही होगी जो तुम्हारे जैसे पुरातनपंथी, सड़े गले प्रतिक्रियावादी समाज में कुंद हो गए वर्जनाग्रस्त व्यक्ति को इस क्रांतिभूमि पर ले आई । इस अवसर का सम्मान करो चंदन । क्रांति की देवी की अवमानना न करो, स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन ज्वाइन कर लो । तुम्हारी ज़िंदगी बदल जाएगी, मेरे दोस्त । लो यह थोड़ी सी वोदका ले कर अपने अतीत का नाश करो, नई दुनिया के दरवाजे पर अपनी दस्तक दर्ज करो ।
चंदन मेरे कमरे की दीवारों पर लगी तस्वीरों को देख रहा था । बाईं दीवार पर स्टालिन, सामने की दीवार पर चेयरमैन माओ, दाईं दीवार पर चे । चंदन ने स्टालिन और चेयरमैन को तो पहचान लिया, चे की तस्वीर को न पहचान पाया । मैंने उसे चे के क्रांतिकारी व्यक्तित्व, सर्वहारा के लिए सब कुछ बलिदान करने के उनके जज़्बे के बारे में विस्तार से बताया । मैंने उसे चे की तस्वीर वाली एक टी शर्ट भेंट में दी और अगली बार उसे यह टी शर्ट पहन कर आने की हिदायत दी ।

मैंने चंदन से साफ साफ कहा - मैं झूठ नहीं बोलता । मैंने कहा कि चंदन जैसा संघी क्रांति के बग़ीचे जनेवि में कैसे घुसा - मेरे लिए तो यही अचरज की बात थी । खैर घुस गया, अच्छा हुआ, कुछ भी हो, चंदन मेरा दोस्त है, सुधर जाएगा । मैंने उसे समझाया कि घुस तो वह गया पर यदि उसने अपना संघीपन नहीं छोड़ा और बुद्धिजीवियों को उसके संघीपन की हवा लगी तो उसका कैरियर चौपट हुआ । आईएएस होने का तो सवाल ही नहीं उठता, एम एस सी भी पास न कर सकेगा । मैंने उसे प्रैक्टिकल होने की सलाह दी । कुछ भी हो, आखिर चंदन मेरा दोस्त था ।

४४

***

चंदन संघी होते हुए भी दिमाग से तेज था । स्कूल में अक्सर वाद विवाद प्रतियोगिता में प्रथम आता । वह किसी भी विषय पर दोनों ओर से बहस कर लेता । भारत चीन संबंध पर बहस हो तो पहले भारत की तरफ से फिर चीन की तरफ से । दोनों पक्षों से एक जैसे जोशीले तर्क । लोग सुनते और दांतों तले उंगलियां दबाते । वैसे उसका संघीपन बस हल्का सा ही था । मुझे लगा कि थोड़ी मेहनत करके यदि उसके संघीपन की धूल झाड़ दी जाय तो चंदन अच्छा चमकीला वामपंथी बन सकता था ।

मैंने संसार में मज़दूरों के शोषण की बात उठाई । मैंने चाय के कप से थोड़ी सी वोदका ली और चंदन से पूछा :

"चंदन, हमारे समाज में इतनी आर्थिक विषमता क्यों है ? किसी के पास अट्टालिका और कोई झोपड़ी में ? ऐसा क्यों है चंदन ? तुम्हें नहीं लगता कि समाज में बराबरी होनी चाहिए ? प्रोफेसर और चपरासी में बराबरी, मज़दूर और मालिक में बराबरी, बाप और बेटे में बराबरी । चंदन इतनी विषमता देख कर तुम्हारा दिल नहीं दुखता ? तुमने बस्तर के आदिवासियों में फैली भुखमरी के बारे में नहीं सुना ? मैं कहता हूँ एक बार दास कैपिटल पढ़ो, चंदन - तुम्हारी आँखें खुल जाएँगी । कभी रूस, चीन, वियतनाम, उत्तर कोरिया के शोषणविहीन, समतामूलक, आदर्श समाजों की तरफ नजर डालो चंदन - तुम्हारा दुनिया को देखने का नज़रिया बदलेगा । बोल्शेविक क्रांति का इतिहास पढ़ो, कॉमरेड लेनिन और स्टालिन की जीवन गाथा पढ़ो । चेयरमैन माओ की लाल किताब पढ़ो ।

चलो, वोदका पी लो । कल जंतर मंतर में बोलीविया के जनसंघर्ष के समर्थन में रैली है, उसमें मेरे संग चलो । मेरे एक प्रोफेसर हाल में ही सोवियत संघ की यात्रा कर के लौटे हैं, उनसे मिलो । सोवियत संघ के आदर्श समाज के बारे में सुनो । वहाँ न कोई भूखा न नंगा । सब लोग बराबर । प्रोफेसर और चपरासी की तनख्वाह बराबर । सब लोग एक साथ रात दस बजे सोते हैं, छ बजे उठते हैं । सारा समाज समाजवादी हार्मोनी में कंधे से कंधा मिला कर स्वर्गभूमि की तरफ बढ़ रहा है चंदन । कॉमरेड स्टालिन ने सोवियत संघ को स्वर्ग बना दिया चंदन । सुनोगे तो भौंचक्के रह जाओगे । ये संघी शोषण के प्रतीक हैं, बुर्जुवा पूँजीपतियों के एजेंट हैं, साम्राज्यवादी विस्तारवादी अमरीकियों के दलाल हैं । आँखें खोलो चंदन । सर्वहारा के वैश्विक संघर्ष में अपना योगदान दो चंदन । ऐसा करोगे तो तुम सिर्फ समाज की मुक्ति में ही नहीं, अपनी मुक्ति में भी योगदान दोगे । जनेवि में तुम्हारा कैरियर चमकेगा चंदन । एक दिन तुम जनेवि में

प्रोफेसर बन जाओगे । तुम्हारी शोहरत होगी । अख़बारों में, टीवी पर तुम्हारे लेखों की चर्चा होगी । तुम अमेरिका और इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में भारत विशेषज्ञ की हैसियत से विद्वत्तापूर्ण भाषण दोगे । हर तरफ तुम्हारी वाहवाहियां होंगी । क्या पता किसी दिन तुम्हें नोबेल ही मिल जाय, चंदन ।
अपना कैरियर बनाओ चंदन ।"

४५

***

मैं ही बोले जा रहा था, चंदन चुपचाप मेरी बातें सुनता जा रहा था । चंदन वोदका का कप उठाने में हिचकिचा रहा था । मैंने इस बात का बुरा न माना । पहला दिन था और आपको तो पता है कि वर्जनाएँ टूटते टूटते ही टूटती हैं । आदमी को धैर्य नहीं खोना चाहिए, सतत प्रयास करते रहना चाहिए - सारा जनवादी प्रगतिशील साहित्य हमें यही तो सिखाता है । चेयरमैन माओ ने कितनी तकलीफ़ों का सामना किया, बीच में छोड़ दिया होता तो मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता का यह विशाल चीनी उपवन कैसे बनता ?
अचानक मेरी नज़र चंदन की दाईं कलाई पर पड़ी । वहाँ लाल रंग का धागा बँधा था । मैं देखते ही चकराया । मैंने चंदन से पूछ ही लिया - यह लाल धागा क्या है चंदन ? चंदन ने बताया कि कल रक्षाबंधन का पर्व था, उसकी बहन ने पोस्ट से राखी भेजी थी । मुझे तो पहले से ही पता था । मेरी बहन ने भी राखी भेजी थी - कल ही पहुँची थी । मैंने कमरा बंद करके और खिड़कियों के पर्दे गिरा कर ताकि किसी को भनक न लगे, धीरे से कल दोपहर ख़ुद राखी बाँध ली थी । दो मिनट पहनने के बाद सूटकेस में कपड़ों के नीचे राखी छुपा कर राख दी थी । क्या पता अनजाने में कपड़े उलटते पलटते किसी को दिख जाय और बात का बवंडर हो । आदमी को सावधान रहना चाहिए । कब कौन क्या देख ले - क्या ठिकाना ?

४६

***

चंदन मेरी परेशानी का सबब न समझ सका । नया नया आया था, बेचारे का वहाँ की आबोहवा से परिचय न था । मैंने उसे समझाया :
"देखो चंदन, यहाँ तुम कलाई में राखी बाँध कर आ गए तो कोई बात नहीं । मैं तुम्हारा दोस्त हूँ, मैं नहीं चाहता तुम्हारा अहित हो, किसी को नहीं बताऊँगा । पर तुम्हीं सोचो चंदन, गंगा ढाबा में या क्लास में किसी ने देख लिया होता तो कितना बवंडर मचता । तुम्हें नहीं मालूम कि रक्षाबंधन का त्योहार पितृसत्तात्मक व्यवस्था का चिन्ह है, स्त्री जाति का अपमान है । कहीं नारीवादियों ने तुम्हें राखी बाँधे हुए देख लिया होता तो सारे परिसर में शोर मचा होता - स्त्रियों पर सदियों से चले आ रहे अत्याचार का प्रतीक रक्षाबंधन का धागा प्रगतिशीलता की राजधानी जनेवि में ! कितनी भद्द मचती ! लोग तुम्हें घोंचू है, घोंचू है - कह कर चिढ़ाते । चंदन क्या तुम्हें अपने मान अपमान का ज़रा भी ध्यान नहीं ?
चंदन, राखी मैंने भी बाँधी थी । पर तुम्हारी तरह खुलेआम नहीं, छिप कर । देखो चंदन, तुम्हें पता होना चाहिए कि दिल की हर बात ज़ुबान पर लाना समझदारी की बात नहीं । तुम्हें विश्वास नहीं होगा जब मैं

बनारस जाता हूँ, रोज़ भोर में दुर्गाकुंड मंदिर में दुर्गा जी की पूजा करता हूँ । पर यह बात यहाँ जनेवि में लोगों से बताने की क्या ज़रूरत है ? यहाँ तो मैं महिषासुर सम्मान सम्मेलन में सबसे आगे आगे रहता हूँ ।

अब यही चीन वाली बात लो, १९६२ में भारत पर चीन के हमले की बात तुम्हें क्या लगता है मुझे पता नहीं है ? मैं क्या इतना बड़ा गधा हूँ ? मुझे मालूम है चीन ने ज़बरन तिब्बत और अक्साई चीन हथियाया । इस बात का दर्द मुझे भी है - अंदर से मैं भी भारतीय हूँ, मेरी रगों में भी भारतीय ख़ून दौड़ता है । पर हर बात हर जगह नहीं कही जा सकती । जब भी यह बात कहीं उठती है मैं मौन रहता हूँ या साम्यवादी चीन की नीतियों का हल्का सा बचाव करता हूँ । जब एक नवोदित साम्यवादी देश दुनिया भर की साम्राज्यवादी पूँजीवादी ताक़तों से घिरा हो तो उसके पास अपनी धरती, इतनी जद्दोजहद के बाद, इतने बलिदानों के बाद सर्वहारावाद की धरती, की सुरक्षा नहीं करनी चाहिए ? हमें भारत चीन सम्बंधों को अंतर्राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष - एक तरफ प्रतिक्रियावादी ताक़तों का जमावड़ा, दूसरी तरफ़ जनवादी गणतंत्र - की पृष्ठभूमि में समझना चाहिए ।

देखो, तुम्हें यह बात समझनी चाहिए - यह बनारस नहीं है, तुम्हारा गाँव भी नहीं है, यह जनेवि है । कोई तुम्हारी कलाई में ऐसा लाल धागा बंधा देखेगा तो तुम्हारे बारे में क्या सोचेगा ? तुम्हें आगे बढ़ना है तो यहाँ की विचारधारा की धारा में बहो । यहाँ के रीति रिवाज रक्षाबंधन वाले नहीं हैं, माओ जन्मदिवस वाले हैं, यहाँ दुर्गा की नहीं महिषासुर की पूजा होती है । हम प्रगतिशील लोग हैं, हमारी जीवन दृष्टि प्रगतिशील है । तुम्हें तो अंग्रेज़ी की कहावत पता होगी : रोम इन रोम ऐज रोमन्स रोम । हिन्दी में भी तो कहावत है : जैसा देस वैसा भेस । मेरे प्यारे दोस्त चंदन, देस देखो, भेस देखो ।"

अब आप ही बताइए, क्या मैंने चंदन को ग़लत सलाह दी थी ? आप मैनेजर पांडेय को तो जानते होंगे, नामवर सिंह को तो जानते होंगे । दोनों जनवादी प्रगतिशील साहित्य के वयोवृद्ध मूर्धन्य योद्धा । किसी दुष्टात्मा ने मैनेजर पांडेय की पूजा करती हुई तस्वीर फ़ेसबुक पर छाप दी और बेचारे मैनेजर पांडेय की जीवनपर्यंत प्रगतिशीलता काम नहीं आई, कितनी गालियाँ पड़ीं, कितनी छीछालेदर हुई । वही हाल प्रगतिशील हिन्दी साहित्य के पितामह नामवर सिंह का हुआ । बनारस के रहने वाले हैं । जाने अनजाने में मरने के कुछ दिन पहले एक साक्षात्कार में नामवर सिंह के मुख से एक दो बार बाबा विश्वनाथ निकल गया था और फिर बेचारे नामवर सिंह की कितनी फ़ज़ीहत हुई थी । हम साम्यवादी प्रगतिशील लोग हैं, हमारे लिए हमारा सिद्धांत सर्वोपरि है, हम उम्र और सम्मान जैसी मामूली चीज़ों को तवज्जो नहीं देते । चंदन मेरी बात सुनता रहा । शायद गुनता भी रहा ।

४७

***

चंदन देर से चुपचाप मेरी बातें सुनता जा रहा था । वैसे जैसे कोई विद्यार्थी शिक्षक की बात सुनता है । बहुत देर लगातार बोलने के बाद मुझे आभास हुआ कि मैं ही बस बोलता जा रहा हूँ, चंदन ने तो कुछ कहा नहीं । मैंने चंदन के कंधे पर अपना हाथ रखते हुए कहा :

“चंदन, तुम सोचते होगे मैं तुम्हें भाषण पिला रहा हूँ । पर ऐसा नहीं है मेरे प्यारे दोस्त । मैं भाषण नहीं पिला रहा हूँ, तुम्हारे भविष्य की बेहतरी के लिए एक मित्र के नाते तुम्हें सलाह दे रहा हूं । वह कैसा मित्र जो अपने मित्र को उचित सलाह न दे, उसे गलत रास्ते पर जाने से न रोके ? चंदन, मैं नहीं चाहता तुम कोई ऐसी ग़लती करो जिससे तुम्हारा भविष्य चौपट हो । आँखें खोलो चंदन, यह प्रगतिशील जनवाद का युग है चंदन, जनवादी बनो चंदन, पूँजीवाद और सामन्तवाद को छोड़ दो, चंदन ।”
अचानक चंदन दबी सहमी हुई सी आवाज में बोला :
“तुम सर्वहारा के उत्थान की बात करते हो । मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ । दबे कुचले सर्वहारा का उत्थान हमारे युग की माँग है, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का ख़ात्मा हमारे समय की माँग है । पर एक बात मेरे दिमाग में उठती है : कॉमरेड स्टालिन तो सर्वहारा के मसीहा थे, उनके राज्य में करोड़ों सर्वहारा भूख से बिलबिला कर क्यों मरे ? सामुदायिक खेती के अभियान के बाद खेती का उत्पाद २० प्रतिशत क्यों गिरा, किसान मज़दूर भूख से क्यों बिलबिलाया ? मानता हूँ चेयरमैन माओ का जीवन सर्वहारा के हितों की रक्षा के लिए समर्पित रहा, पर उनके लाल रंग के लांग मार्च में सुनता हूँ करोड़ों लोग मरे । ऐसा क्यों हुआ ?
सर्वहारा की उन्नति के लिए सर्वहारा का मारा जाना आवश्यक है ? समाजवादी फसल बिना खूनी खाद के नहीं उगती ? ”

४८

****

चंदन बोलता ही जा रहा था । मुझे यह बात नहीं समझ में आई कि संघी पृष्ठभूमि के बावजूद चंदन में हीन भावना अधिक क्यों नहीं थी, वह तो तर्क किए जा रहा था । संघी तो मेरे जैसे बुद्धिजीवियों को देखते ही सहम जाया करते हैं विशेष कर यदि वे ग़लती से प्रगतिशीलता और जनवाद के लाल रंगों में रंगी नगरी जनेवि में प्रवेश कर गये हों । मैंने पहले किसी को किसी बुद्धिजीवी से इस तरह तर्क करते न देखा था । लोगबाग तो प्रगतिशीलता और जनवाद का नाम सुनते ही सहम कर चुप हो जाते हैं - जरूर कोई महान विद्वान होगा, कौन इसके मुंह लगे ?
चंदन ने समाजवादी गणतंत्र की बात उठाई :
“तुम जनवादी लोग गणतंत्र की बात करते हो । गणतंत्र में चुनाव होता है न । और तुम्हीं बताओ चुनाव के लिए एक से अधिक प्रत्याशी और एक से अधिक राजनीतिक दल न होगा तो चुनाव कैसे होगा ? बताओ समाजवादी गणतांत्रिक देश रूस, चीन, क्यूबा, उत्तर कोरिया, कम्बोडिया, पूर्वी जर्मनी में चुनाव होते हैं ? उन चुनावों में कितने राजनीतिक दल भाग लेते हैं ? कॉमरेड स्टालिन ने, चेयरमैन माओ ने, पोल पॉट सर ने, किम जोंग सर ने किसके विरुद्ध चुनाव जीता था ? जहाँ एक ही प्रत्याशी हो और एक ही राजनैतिक दल - वहां किस तरह का चुनाव होता होगा ?
और तुम वर्गसंघर्ष की बातें करते हो । ज़रा यह बताओ कि तुम्हारे नक्सली कॉमरेडों का संघर्ष बिहार, बंगाल, तेलंगाना के छोटे छोटे तथाकथित ज़मींदारों से है, टाटा और बिरला से क्यों नहीं है ? बिहार और

बंगाल के गाँवों में तुम्हारे क्रांतिकारी जिन तथाकथित ज़मींदारों की गर्दनें काट रहे हैं - उनकी हालत देखी है तुमने ? उनका सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण किया है ? उस विषय पर जनेवि के किसी विद्वान प्रोफेसर ने कोई शोध प्रबंध लिखा है ? वे तुम्हें बहुत अमीर दिखते हैं ? उनमें से अधिकांश किसी तरह अपना पेट पाल रहे हैं, उनके बदन पर कायदे के कपड़े नहीं हैं, पैसों के अभाव में अपनी लड़कियों का विवाह करने में कितनी जहालत से गुजरते हैं - तुम उन बेचारों के ख़ून से क्रांति की फ़सल सींच रहे हो क्योंकि वे तुम्हारे गणशत्रु हैं । बिरला तुम्हारा गणशत्रु क्यों नहीं है ? तुम गरीब किसान का अपहरण करते हो, उसकी गर्दन काटते हो, बिरला की क्यों नहीं काटते ?
गणशत्रुता में भेदभाव क्यों, ग़ैर बराबरी क्यों ?
और जरा यह तो बताओ कि जिस सर्वहारा की मुक्ति के लिए तुमने समाजवादी देशों में इतना खून बहाया, उस सर्वहारा की स्थिति क्या है उन देशों में ? समाजवादी पूर्व जर्मनी का मजदूर पूंजीवादी पश्चिम जर्मनी के मजदूर से अधिक खुशहाल है ? आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक अर्थों में ? तुम्हारा समाजवाद तो विज्ञान की भूमि पर खड़ा है न, तुम तो बात बात में विज्ञान की दुहाई देते हो, मेरी बात के उत्तर में कुछ वैज्ञानिक आंकड़े भी देना ।
Let's look at some outcome data."
४९
***
बहस अब गर्मी पकड़ रही थी । मुझे अनुमान न था कि एक संघी इस तरह की बहस करेगा । मैंने वोदका का एक घूँट लिया और बोला :
“देखो चंदन, कॉमरेड स्टालिन और चेयरमैन माओ की तुम्हारी आलोचना ऊपर से दमदार लग सकती है, पर अंदर से खोखली है । तुमने उन ऐतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय पक्षों का ध्यान न रखा जिनके बिना सर्वहारा क्रांति की समझ अधूरी है । मैं तो कहूँगा कि तुम्हारी सोच में बुर्जुवा प्रतिक्रियावाद की झलक है । देखो चंदन, यह सही है कि रूस के सहकारी खेती के अभियान में और चीन के लाल रंग के लाँग मार्च में करोड़ों सर्वहारा किसान मज़दूरों की बलि देनी पड़ी । मैं सोचता हूँ तो मेरी आँखों में आज भी आँसू आ जाते हैं । तुम्हें क्या लगता है - कॉमरेड स्टालिन और चेयरमैन माओ को कम दुख हुआ होगा ? मत भूलो चंदन कॉमरेड स्टालिन और चेयरमैन माओ ने अपना जीवन सर्वहारा क्रांति के लिए, आदर्श समतामूलक समाज की स्थापना के लिए समर्पित किया था, वे महान क्रांतिकारी थे चंदन । हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए । पर एक मौलिक बात ध्यान में रखो, चंदन, इस संसार में हर चीज की कीमत है । तुम एक बोतल वोदका भी ख़रीदना चाहो तो तुम्हीं उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी । जैसे वोदका मुफ्त में नहीं मिलती, वैसे क्रांति मुफ्त में नहीं मिलती, आदर्श समाज मुफ्त में नहीं बनता । वे करोड़ों लोग जिनकी मृत्यु हुई थी चंदन, वे महान बलिदानी थे, उन्होंने क्रांति की ज्वाला में अपना जीवन भस्म किया ताकि आदर्श समाज की रचना हो सके, आने वाली पीढ़ियां शोषण रहित समतामूलक समाज में जी सकें । हमें उन बलिदानियों के सम्मान में सिर झुकाना चाहिए चंदन । आज जो तुम क्यूबा, बोलीविया,

उत्तर कोरिया, पूर्वी जर्मनी, पोलैंड, रूस और चीन में शोषण विहीन सर्वहारा के अधिनायकत्व के ऊँचे आदर्शों की नींव पर स्थापित आदर्श समाज की झलक देख रहे हो चंदन, वह इन्हीं करोड़ों बलिदानियों के पवित्र रुधिर से सिंचित हुआ है चंदन । हमें उनके ऊँचे आदर्शों से प्रेरणा लेनी चाहिए ।
एक बात और - तुम उन बीस पच्चीस प्रतिशत सर्वहाराओं के जीवन के नष्ट होने की बात करते हो, पर जिन पचहत्तर अस्सी प्रतिशत का जीवन कहीं नहीं गया - उनकी बात क्यों नहीं करते । तुम तो विज्ञान के आदमी हो चंदन, तुमने ऐसी अवैज्ञानिक, अगणितीय बात कैसे की ? मैं तुम्हारी बातों की अवैज्ञानिकता पर हैरान हूँ, चंदन ।
५०

***

वोदका का बस हल्का सा नशा था । नशा क्या था, सुरूर था । मैंने अनुभव किया है कि वोदका पीने से चिंतन क्षमता की तीक्ष्णता को धार मिलती है । चंदन ने गणतंत्र की बात की थी, मैंने उसका पैना जवाब दिया :
"तुमने गणतंत्र की बात उठाई चंदन, बहुत अच्छा किया । देखो हम समाजवादी लोग हैं, हमसे अधिक गणतांत्रिक कोई और कैसे हो सकता है ? गणतंत्र में हमारी आत्मा बसती है, गणतंत्र हमारी वैज्ञानिक विचारधारा की नींव है । हम चाहते हैं कि दुनिया एक हो कर एक गणतंत्र के लाल धागे में बँधे । आदर्श समाज की स्थापना की हमारी अवधारणा के मूल में ही यह बात स्थापित है चंदन ।
पर, तुमने शायद ग़ौर नहीं किया, गणतंत्र का दुनिया में कोई एक मॉडल नहीं है । जिसे तुम गणतंत्र कहते हो, यूरोप और अमेरिका का गणतंत्र - वह सिर्फ एक छलावा है चंदन । पूँजीवादी ताक़तों का षडयंत्र, जनता की आँखों में धूल झोंकने का विशाल दानवी उपक्रम । वह जनतंत्र नहीं, दासता है चंदन, सर्वहारा को ज़ंजीरों में बाँधे रखने की मुहिम है, चंदन । तुम्हें क्या लगता है तुम्हारे तथाकथित गणतंत्र में रॉक्फेलर और एक भिखारी के गणतांत्रिक अधिकार समान हैं ? तुम एक बहुत बड़े छलावे में फँस गए हो चंदन । और यह बात ही कहाँ से उठी कि गणतांत्रिक चुनावों में एक से अधिक पार्टी और एक से अधिक प्रत्याशी होना चाहिए ? यह भ्रम कहाँ से उपजा ? आखिर एक पार्टी और एक प्रत्याशी की व्यवस्था में बुराई क्या है ? और तुम देखते नहीं रूस और चीन में कितनी भारी संख्या में मतदान होता है ! यह क्या इस बात का प्रमाण नहीं कि जनता हमारे गणतांत्रिक मॉडल से न सिर्फ सहमत है बल्कि बहुत प्रसन्न है ? तुमने जनता के हँसते मुस्कुराते हुए चेहरे नहीं देखे ? यह समाजवादी गणतंत्र है चंदन, क्रांति के लाल फूलों से सजा है, तुम्हारा सड़ा गला, खोखला पूँजीवादी गणतंत्र नहीं ।
और तुमने कभी इस बात पर ग़ौर किया कि गणतांत्रिक समाजवादी समाज की स्थापना का यह बिरवा कितनी मेहनत, मशक्कत और कितनी जद्दोजहद के बाद हमारे रहनुमाओं और हमारे सर्वहारा साथियों ने रोपा । यह नाजुक पौधा है चंदन, चारों तरफ से बुर्जुवा, पूँजीवादी, विस्तारवादी, संशोधनवादी, प्रतिक्रियावादी शत्रुओं से घिरा है । शत्रुओं को मौक़ा मिला और उन्होंने बिरवा उखाड़ फेंका । इस पवित्र बिरवे की रक्षा करना हम समाजवादियों का पवित्र कर्तव्य है । हम जान की बाज़ी लगा कर इस बिरवे की रक्षा करेंगे ।

हम बलिदान करेंगे - मानवाधिकार का बलिदान, तथाकथित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का बलिदान, मनुष्य पशु और प्रकृति का बलिदान । हमें ये तकलीफें बर्दाश्त करना सीखना होगा । हम विचलित नहीं होंगे, हमारा रास्ता लम्बा है, हम बलिदान देते चलेंगे, रास्ते पर बढ़ते चलेंगे और एक दिन आदर्श समाज की स्थापना कर देंगे ।
यह हमारे भविष्य का प्रश्न है । हम अपने आदर्श भविष्य के लिए वर्तमान को क़ुर्बान कर देंगे ।"
५१

***

बात करते करते हमें पता ही नहीं चला और कितने घंटे बीत गए । मैंने घड़ी देखी - बारह बजने वाले थे । दो बजे मेरा अपने सुपरवाइजर रक्तरंजित पांडे सर के संग मिलने का समय तय था । प्रोजेक्ट के विषय में बात करनी थी । प्रोजेक्ट का नाम पहले से ही तय हो गया था :
कबीर की जनवादी चेतना और निराला के नक्सली काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
गाइड तो मेरे रक्तरंजित पांडेय सर थे पर सह गाइड जनवादी अग्रवाल सर थे । जनवादी अग्रवाल सर का कबीर की कविता के मार्क्सवादी पहलुओं पर गहरा अध्ययन रहा ।
मैं थोड़ी हड़बड़ी में था । कहने को तो बहुत कुछ था - जनवादी सौंदर्यशास्त्र पर मैं ख़ास तौर पर बल देना चाहता था । पर आज इससे लम्बी बात संभव न थी । मैंने बात को समेटते हुए चंदन को कहा :
"देखो चंदन, बात को समझा करो । मार्क्सवाद सिर्फ़ एक राजनीतिक विचारधारा नहीं है, यह जीवन को वैज्ञानिक ढंग से, प्रयोगशाला में जैसे वैज्ञानिक प्रयोग होते हैं, वैसे बारीकी से देखने, नापने और तौलने की चीज़ है । अब देखो तुमने रूस और चीन में लोगों के भूखों मरने की बात कही । तुम्हें क्या लगता है यह किसी ग़लती से हुआ ! नहीं मेरे दोस्त । ग़रीबी और भुखमरी की खाद न हो तो मार्क्सवाद का बिरवा कैसे फले फूले ? मैंने बार बार समझाया कि वर्तमान के चक्कर में हम नहीं पड़ते । बल्कि हम तो मानते हैं कि हमारा वर्तमान जितनी ही गुरबत में बीतेगा, हमारी क्रांति का रंग उतना ही चोखा और चमकदार होता जाएगा । वर्तमान को छोड़ो, ख़ून बहे तो बहने दो, बल्कि और बहाओ । तुम्हारी दृष्टि स्वर्णिम भविष्य पर टिकी रहनी चाहिए, एक क्षण के लिए भी स्वर्ग जैसे समतावादी, सर्वहारा समाज की स्थापना का हमारा स्वप्न, हमारा भविष्य आँखों से ओझल न हो ।
आदर्श समाज की स्थापना के लिए क़ीमत चुकानी होगी, चंदन । जिसे तुम लोग अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कहते हो वह सीआइए का फासीवादी षड्यंत्र है, समाजवाद के नाज़ुक पौधे को सुखाने की सोची समझी साज़िश है । हम अपनी जान देकर उस पौधे को बचाएँगे, चंदन ।
और इसके अलावा जाते जाते एक और बात । देखो, यहाँ कोई सुन नहीं रहा है, इसलिए कहता हूँ । तुम्हारी बातों में भी सच्चाई की बू है । मेरे मन में भी ऐसे सवाल उठते हैं । पर मन पर लगान लगाना सीखो चंदन । फालतू सवाल पूछना कोई होशियारी की बात नहीं । हमें अपने कैरियर को ख़तरे में नहीं डालना चाहिए । अब देखो, कहीं से यदि रक्तरंजित पांडे सर को यह भनक लगी कि मैं जब बनारस में होता हूँ तो प्रतिदिन दुर्गाजी के मंदिर में जाता हूँ, तो मेरा तो कैरियर चौपट हुआ न, चंदन । आदमी को

क़ायदे से और सावधानी से रहना चाहिए चंदन । मत भूलो कि हम जनेवि में हैं चंदन । अभी जो मैं कह रहा हूँ यह यदि किसी को पता चला तो तुम्हारा कैरियर तो गड्ढे में गया ही, मेरा कैरियर भी नाबदान में डूबा । फिर मैं बन चुका आइएएस !
तुम्हें पता होगा इंदिराजी हम जनवादियों को कितना मानती हैं । अब तो हममें और इंदिराजी में वही सम्बंध है जो नेपाल और भारत में है । कहीं कोई पासपोर्ट कंट्रोल नहीं, जब चाहो सीमा के इस पार उस पार चले जाओ । उसी तरह हमलोग भी कभी SFI में तो कभी NSUI में आते जाते रहते हैं । हमलोग जुड़वा भाइयों की तरह हैं, बल्कि Siamese twins हैं । इसीलिए तुमसे कहता हूँ - स्टूडेंट्स फेडरेशन ज्वाइन करने में हिचकते हो तो इंदिरा जी का राष्ट्रीय छात्र कांग्रेस ज्वाइन कर लो ।
अपना कैरियर बनाओ, चंदन ।"

५२

***

मुझे थोड़ी हड़बड़ी थी, रक्तरंजित पांडेय सर ने घर पर बुलाया था - प्रोजेक्ट पर बात करने के लिए । हमने अपनी वार्ता को वहीं विराम दिया । पता नहीं चंदन ने मेरी बातों का कितना नोटिस लिया । अब तो यह आगे का समय ही बताएगा । उस दिन तो मूँड़ी हिलाता हुआ गया ।
रक्तरंजित पांडेय सर जनेवि के प्रतिष्ठित विद्वान थे । हिन्दी साहित्य के महान आलोचक के रूप में उनकी ख्याति थी । दलित साहित्य और नारीमुक्ति साहित्य में उनकी विशेष रुचि थी और काफी काम था । बोलीविया के आदिवासी साहित्य और बस्तर की जनजातियों के साहित्य की समानताओं पर उन्होंने बहुत बारीक काम किया था । बनारस और बर्लिन के मजदूर साहित्य की समानताओं पर भी कुछ काम था ।
रक्तरंजित सर मार्क्सवादी विद्वान थे । वे हवा और पानी, समंदर और आकाश, धरती और तालाब - सबको मार्क्सवादी दृष्टि से देखते थे । मार्क्सवाद ओढ़ते थे, मार्क्सवाद ही बिछाते थे । उनकी बौद्धिकता का डंका हिन्दी जगत में बजता था । जो उनका शिष्य बना उसका मार्क्सवादी भविष्य बना । उनके कितने ही प्रगतिवादी शिष्य भारत के अमरीकी और फ़्रांसीसी दूतावासों में उच्च पद पर थे, कुछ बड़े लेखक और कवि हो गए थे, कुछ दूसरे विश्वविद्यालयों में मार्क्सवादी जनवाद की शिक्षा दे रहे थे, एकाध इंदिराजी की प्रगतिशील सरकार में मंत्री भी थे । जनवादी विचारधारा के सरगना होने के कारण इंदिरा जी की सरकार में उनकी बहुत इज्जत थी ।
मैं इस भेंट के बारे में सोच सोच कर फूला नहीं समा रहा था, पर अंदर से थोड़ी नर्वसनेस थी, पता नहीं कैसे होंगे, रक्तरंजित सर ? क्या पता चेयरमैन माओ की लाल किताब में से कोई कठिन प्रश्न निकाल लें ? घबराहट स्वाभाविक थी । इतने बड़े बुद्धिजीवी से आप पहली बार मिलेंगे तो नही घबराएंगे क्या !

५३

***

प्रोफेसर रक्तरंजित पांडेय सर का निवास वरिष्ठ अध्यापकों की कॉलनी में था । छोटा पर सुंदर एकमंजिला मकान । सामने छोटा सा लॉन । बरामदे में सुरुचिपूर्ण ढंग से लगे गमले जिनमें तरह तरह के फूल खिले हुए थे । दोपहर के दो बजने वाले थे । बरसाती दिन थे । कल रात तेज बारिश हुई थी । सड़कें, मकान, हवा, पेड़, पौधे सब बारिश में धुल कर ताज़े हो गए थे और तेज धूप में चमक रहे थे । हवा ठहरी हुई थी और धूप चुभती थी ।

मैं डरता डरता सीढ़ियों से ऊपर बरामदे में चढ़ा और मैंने दरवाजे पर लगी घंटी एक बार बजाई ।

५४

***

मुझे पता था कि एक बार से अधिक घंटी बजाना फूहड़ता का चिन्ह है । इसलिए मैं साँस बाँधे कई मिनट तक दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा करता रहा । मैं नहीं चाहता था कि मेरे किसी फूहड़ कृत्य से रक्तरंजित सर मेरे बारे में बुरी धारणा बना लें और मेरा भविष्य बर्बाद हो । मुझे आइएएस बनना था । मेरा दिल धड़क रहा था और मेरी लाल कमीज बरसाती पसीने में भींगती जा रही थी । मैंने घड़ी देख कर तीन मिनट तक दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा की । पर किसी के आने की आवाज भी न सुनाई दी । बस सामने पेड़ पर बैठे सुग्गे की चीख ही कभी कभार सुनाई देती थी । मैं साहस कर दुबारा घंटी बजाने ही जा रहा था कि फर्श पर किसी के चप्पलों की आवाज आई और दरवाजा खुला ।

५५

***

दरवाजा एक अधेड़ देहाती सी दिखती महिला ने खोला था । दोहरे बदन और औसत लम्बाई की साँवली स्त्री । अधपके बाल, सीधे पल्ले की सफेद सूती साड़ी । चेहरे पर चेचक के हल्के दाग ।

मैं तय नहीं कर पाया कि ये स्त्री श्रीमती पांडेय थीं या कोई सेविका । मैंने बरामदे में से ही झुक कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया । महिला दरवाजे पह ही खड़ी रहीं और उन्होंने साड़ी के पल्लू से नाक का नेटा पोंछा ।

५६

***

उन्होंने भोजपुरी लहजे की हिन्दी में मुझसे पूछा : क्या काम है ?

मैंने उन्हें बताया - सर के साथ एप्वाइंटमेंट है । उन्होंने कमरे के अंदर आने के लिए कहा और मुझे कोने में रखे एक स्टूल पर बिठाया । उन्होंने कहा कि सर तो अभी अभी नहाने गये हैं, दस पंद्रह मिनट में फ़ारिग़ होंगे ।

मैं उनसे बात करने लग गया और मैंने कमरे के चारों ओर डरते डरते नजर दौड़ाई ।

वे सर की पत्नी नहीं थीं । सर की पत्नी शॉपिंग करने कनॉट प्लेस गई हुई थीं । सर फाफामऊ के रहने वाले थे । उनका शुरु का नाम बलराम पांडेय था जिसे बदल कर उन्होंने रक्तरंजित पांडेय कर लिया था ।

ये महिला उनकी बहन थीं । बगल के गाँव में ब्याही थीं । कम उम्र में विधवा हो गई थीं । बाल बच्चे नहीं थे । अब दिल्ली में भरोसे की नौकरानी मिलना तो आप जानते ही हैं कितना मुश्किल है, सो रक्तरंजित सर बहन को अपने यहाँ ले आए । घर का काम भी अब ठीक से होता था, चोरी वग़ैरह का डर न था और बहन के रहने खाने का इन्तज़ाम भी हो गया था । भाई बहन में दुलार बहुत था ।
५७

***

प्रोफेसर सर की बहन से मालूम हुआ कि उनका परिवार फाफामऊ के सम्मानित पर निर्धन ब्राह्मण परिवारों में से गिना जाता था । उनके पिता अब भी पुरोहित का काम करते थे । शुद्ध सनातनी ब्राह्मण । घर में लहसुन प्याज़ तक का प्रयोग नहीं । सारा समय धार्मिक कर्मकांडों और पूजापाठ में बीतता । यजमान जो श्रद्धा से देते उसी से परिवार का काम चलता ।
ऐसे ही सात्विक ब्राह्मण परिवार में बलराम पांडेय का जन्म हुआ । पर बच्चा बलराम दूसरे बालकों से अलग था । संस्कृत का विद्यार्थी होते हुए भी अंग्रेज़ी की किताबें पढ़ लेता था । हिंदी की तो बात ही क्या करनी ? वहीं उसके हाथ लगी महापंडित राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक "गंगा से वोल्गा तक" । इस पुस्तक ने बालक बलराम की जीवन दिशा बदली । फिर तो दास कैपिटल, यशपाल के मार्क्सवादी उपन्यास, बाद में चेयरमैन की लाल किताब । बलराम पढ़ता ही चला गया । फाफामऊ के इंटर कॉलेज में स्टूडेन्ट्स फेडरेशन की सदस्यता ग्रहण की और छात्रसंघ के चुनाव में उपाध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ा और समाजवादी युवजन के प्रत्याशी से थोड़े मतों से हारा ।
धीरे धीरे उसका बौद्धिक विकास होता चला गया । हिन्दी साहित्य में उसकी रुचि थी । अकविता और जनवादी कविता का उसने गहन अध्ययन किया । सुदामा प्रसाद पांडेय धूमिल की कविताएँ उसे कंठस्थ हुईं और उसके मिज़ाज में क्रांतिकारी तेवर की धार तेज होती चली गई । किसी साथी कॉमरेड ने ऊंची शिक्षा के लिए ज ने वि जाने की सलाह दी । जनेवि में पदार्पण के बाद बलराम ने अपना नाम बदल कर रक्तरंजित रखा और फिर पीछे मुड़ कर न देखा ।
५८

***

मैं प्रोफेसर सर की बहन से बातें कर रहा था और मेरी नज़रें धीरे से, सहमी और सकुचाई कमरे का निरीक्षण कर रही थीं । यह कमरा शायद उनका ड्राइंग रूम था । कमरा बहुत बड़ा न था, पर सलीक़े से सजा था । लाल रंग का तीन सीटों वाला एक सोफ़ा और अग़ल बगल दो कुर्सियाँ । एक कुर्सी पर वे बैठी थीं और मैं कमरे में रखे इकलौते स्टूल पर बैठा था । ऊपर सीलिंग फैन के चलने से बरसाती गर्मी में राहत थी । कमरे की दीवारें सफेद रंग से पुती थीं । दीवारों पर कार्ल मार्क्स, स्टालिन, चे ग्वे वारा और चेयरमैन माओ की बड़ी बड़ी सुंदर फ्रेमों में मढ़ाई गई तस्वीरें लगी थीं । सोफे के पीछे एक आलमारी थी जो अंग्रेज़ी और हिन्दी की किताबों से अंटी हुई थी । एक कोने में स्टालिन की आत्मकथा, उसके बगल में माओ की लाल किताब, बोलीविया और फ्रांस की क्रांति के ऊपर किताबें, धूमिल और मुक्तिबोध के

काव्यसंग्रह । फर्श पर और सामने रखे टेबुल पर अखबार और पत्रिकाएँ बिखरी थीं । टेबुल पर कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो नामक किताब आधी खुली रखी थी । रक्तरंजित सर शायद पढ़ते पढ़ते उठ कर बाथरूम चले गए थे । बाईं दीवार पर प्रोफेसर सर की कहीं भाषण देते हुए तस्वीर लगी थी । एक दूसरी तस्वीर में किसी दीक्षांत समारोह में वे खड़े थे - युवा दिखते थे, शायद पीएचडी वग़ैरह की डिग्री ले रहे थे । दाएँ तरफ की दीवार पर प्रोफ़ेसर सर की तस्वीर कॉमरेड डांगे और इंदिरा जी के साथ थी ।
कुल मिलाकर वहाँ बहुत बौद्धिक वातावरण था - वैसा ही जैसी मैंने अपेक्षा की थी । मैं अपने भाग्य पर इतराया और मुझे फिर से विश्वास हुआ कि इतने बौद्धिक शिक्षक की छत्रछाया में मैं स्वयं विद्वान बनूँगा और मुझे आइएएस होने से अब कोई रोक न सकेगा ।
५९
***
हम बात कर रहे थे कि तभी पिछले दरवाजे का पर्दा खिसका और पचास पचपन की उम्र के एक सज्जन कमरे में दाखिल हुए । मैंने अनुमान लगाया कि यही प्रोफेसर रक्तरंजित पांडेय होंगे । बाद में यह सिद्ध हुआ कि मेरा अनुमान गलत न था । रक्तरंजित सर दुहरे बदन के स्वामी थे । अपनी बहन के रंग से अलग बिल्कुल गौरांग । चमकता हुआ ललाट । खिचड़ी बाल । आगे के बाल झड़ गए थे । क्लीन शेवेन गोल चेहरा । औसत लम्बाई । लाल कुर्ते और सफेद पायजामे में सर का व्यक्तित्व बहुत प्रभावी दिखा । आप दूर से उनको देख कर पहचान सकते थे कि हो न हो यह शख्स जरूर बुद्धिजीवी है ।
उनको देख कर मेरा हीनभाव जो बहुत दिनों से सुसुप्त पड़ा था, अचानक जागृत हो गया । मेरे माथे पर पसीने की बूँदें उभर आईं और मेरा दिल धड़कने लगा । मैं रूमाल से पसीना पोंछ कर स्टूल से उठ खड़ा हुआ और मैंने सर का झुक कर अभिवादन किया ।
रक्तरंजित सर ने मुझे स्टूल पर बैठ जाने के लिए इशारा किसा और वे खुद सोफे पर बैठ गए । उनकी बहन अंदर चली गईं ।
प्रोफेसर सर ने मुझसे मेरी पृष्ठभूमि के बारे में पूछा । जैसे ही उन्हें पता चला कि मेरे पिताजी भी प्रगतिशील विचारों वाले करीब करीब कम्युनिस्ट हैं, उनका चेहरा खिल उठा ।
६०
***
थोड़ी देर में ही स्पष्ट हो गया कि सर आम मास्टरों की तरह लभ्भड़ नहीं थे, गम्भीर थे, मितभाषी थे, सोच कर बोलते थे । वे शायद मुझे टटोल रहे थे । जाँच रहे थे कि यह लड़का इस परिसर में ठीक से फल फूल सकेगा या नहीं ।
लगता है इसी कारण सर ने मुझसे बहुत सारे सवाल धीरे धीरे पूछे । उन्होंने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिदृश्य के बारे में मेरी राय पूछी । जयप्रकाश जी के बारे में, इंदिरा जी के बारे में, वामपंथी राजनीति के भविष्य के बारे में ।
फिर क्या था - मेरा धड़का खुला ।

मैंने अपनी सोची समझी राय बिना लाग लपेट के उनके सामने रख दी ।
मैंने कहा कि जयप्रकाश नारायण बुरे आदमी न थे पर वे अब फासिस्टों के चंगुल में थे, सीआईए के हाथों बिक चुके थे । इंदिरा जी के बारे में मैंने कहा कि वैसे तो इंदिरा गांधी पारम्परिक सामंतवादी बुर्जुवा ताक़तों का प्रतिनिधित्व करती थीं पर आज के हालात में जब उनकी मित्रता सर्वहारा समाजवाद के शरणस्थल सोवियत रूस से बढ़ती जा रही थी और उनपर जयप्रकाश और आरएसएस जैसी पूँजीवादी ताक़तों का हमला बढ़ता जा रहा था, सभी प्रगतिशील ताक़तों को इंदिरा के पक्ष में लामबंद होना चाहिए । वे ताक़तें जहां भी हों, इंदिरा के हाथ मजबूत करें । अब इस समय इंदिरा और जनवादी प्रगतिशील ताक़तों में सामंजस्य बना रहे । ठीक है कि इंदिरा की प्रगतिशीलता, सर्वहारा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उतनी गहरी नहीं जितनी चेयरमैन माओ की है या कॉमरेड स्टालिन की थी, पर उनकी दिशा सही है और भारतीय ऐतिहासिक और सामाजिक ताक़तें जिस दिशा में जा रही हैं, उसे ध्यान में रखते हुए फिलहाल प्रगतिशील ताक़तों के सामने इंदिरा के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है ।
मेरी बात सुन कर उनके चेहरे पर मेरे बारे में जो शायद संदेह की हल्की सी छाया थी, दूर हुई और उनके चेहरे का भाव सहज हुआ । बल्कि उनके चेहरे पर मैंने वात्सल्य की हल्की सी आभा उतरती देखी ।
फिर सर ने मुझसे अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य और प्रगतिशील सर्वहारा ताक़तों की उसमें भूमिका के बारे में पूछा ।

६१

***

हमलोग बातों में मशगूल थे । सर ने अंतर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक और सामाजिक ताक़तों की दशा और दिशा और प्रगतिशील जनवाद की उसमें भूमिका के बारे में मेरा मत पूछा था जिसका उत्तर मैं देने ही वाला था कि उनकी बहन हमारे लिए चाय ले आईं । हमने चाय सुड़कना शुरु ही किया था कि बाहर के दरवाजे पर घंटी बजी । उनकी बहन ने बढ़ कर दरवाजा खोला । दरवाजा खुलते ही कमरे में जैसे अचानक हजार वाट का बल्ब जल उठा । कमरा रोशनी में दमका ।
ये मैडम थीं । कनॉट प्लेस से शॉपिंग करके लौटी थीं । मैं तो उन्हें देख कर ही दंग रह गया । हो सकता है मैडम पचास की रही हों, पर देखने में तीस से एक दिन अधिक की नहीं लगती थीं । तन्वांगी सुंदर स्त्री, दुबला बदन, गोरा रंग, औसत से अधिक लम्बाई, कसी हुई देहयष्टि, आँखों पर धूप का बड़े शीशों वाला चश्मा, गले में सफेद मोतियों का कीमती हार, कलफ की हुई आसमानी हल्के नीली शिफॉन की साड़ी, माथे पर बड़ी गोल लाल बिंदी, हल्का सुरुचिपूर्ण मेक अप, हाथ में झूलता महँगा इम्पोर्टेड बैग । उनके मुख से, उनकी भावभंगिमा से, उनकी साड़ी से, उनके चश्मे से, उनके अस्तित्व के एक एक कण से सुरुचि और अभिजात्य की आभा चम चम चमक रही थी । यह कल्पना करना मुश्किल था कि वे फाफामऊ की हैं ।
मुझे एक मिनट को लगा कि कहीं विद्या सिन्हा छोटी सी बात के सेट से उतर कर उस कमरे में तो नहीं आ गईं ।

चाय की घूँट मेरे गले में अंटक गई । किसी तरह मैंने उसे गले के नीचे उतारा ।
६२
***
मैडम फाफामऊ की नहीं थीं । उन्होंने फाफामऊ का नाम ज़रूर सुना था पर फाफामऊ जा नहीं पाईं थीं । मैडम पूरी तरह दिल्ली वाली थीं । दिल्ली में ही उनका जन्म हुआ था । उनके पिता प्रोफ़ेसर लालकुंवर सान्याल यहीं दिल्ली में विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर थे । जब रक्तरंजित सर दिल्ली में एक युवा विद्यार्थी की तरह आए थे तभी उनकी एक कार्यक्रम में प्रोफेसर सान्याल से भेंट हुई । प्रोफ़ेसर सान्याल दिल्ली के जाने माने बुद्धिजीवियों में से गिने जाते । उन्हें इस नए देहाती लड़के में प्रतिभा दिखी और विशाल हृदय प्रोफ़ेसर सान्याल ने फाफामऊ से आए इस कुशाग्रबुद्धि छात्र को अपनी छत्रछाया में लिया । फिर तो रक्तरंजित सर का, जो तब शुरु शुरु में बलराम पांडेय के नाम से जाने जाते, कैरियर तेज़ी से ऊपर ही बढ़ता चला गया । प्रोफ़ेसर सान्याल बलराम को अपने बेटे की तरह मानने लग गए । बलराम का प्रोफ़ेसर सान्याल के यहाँ आना जाना शुरु हुआ और वहीं वह पुरानी बाबा आदम के ज़माने से चली आ रही मुहब्बत की कभी न मिटने वाली कहानी एक बार फिर से लाल रंगों की स्याही से लिखी गई ।
प्रोफेसर सान्याल ने अपनी बेटी का हाथ बलराम, जो अब रक्तरंजित कहलाते थे, के हाथों में दिया । एक ही संतान - लाड़ली संतान । अब प्रोफ़ेसर सान्याल को अपनी बेटी के भविष्य की चिंता न रही और उन्होंने एक दिन उस लोक की ओर प्रस्थान किया जहाँ लेनिन और स्टालिन की रूहें विचरती थीं ।
६३
***
युवावस्था के दिनों में जब मैडम दिल्ली विश्विद्यालय के रामदास कॉलेज में अंग्रेज़ी की छात्रा थीं, उनके सौन्दर्य का डंका विश्वविद्यालय में बजता था । सुंदरियाँ जगह जगह हर गली हर नुक्कड़ पर तमाम फैली, बिखरी हुई थीं पर उनका सौन्दर्य मैडम के सौन्दर्य के पेट्रौमैक्स के मुकाबले मरियल मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश जैसा होता । मैडम हजार वाट की हैलोज़न बल्ब थीं और दूसरी सुंदरियाँ ट्रैफिक लाइट की पीली मरियल रोशनी । साधना का जमाना बीत रहा था वरना हो सकता है साधना उनका मुक़ाबला कर पातीं । बाद के दिनों में शायद हेमा मालिनी भी । शर्मिला फ़र्मीला, डिम्पल फिम्पल का तो कोई चांस ही नहीं । ऊपर से ईश्वर या मार्क्स ने उन्हें कोकिला का कंठ भी दे दिया था । जब मैडम लाल साड़ी पहन कर मंच से रवीन्द्र संगीत गातीं, लोग खास तौर पर छात्र , भले ही उन्हें बांगला और अरबी में भेद न दिखता हो, सुधबुध खो बैठते । उन पर दो बोतल वोदका का नशा सवार हो जाता । एक बार वे मंच पर आ जायं तो बाद में आने वाले कलाकारों का काम तो आप अब तमाम ही समझिए ।
आप ऊपर ऊपर से देखें तो बलराम और मैडम में कोई समान बात न थी । कहाँ तो दरिद्र सनातनी पुरोहित के बेटे भोजपुरी स्टाइल में अंग्रेज़ी बोलने वाले गवंई बलराम और कहाँ तो महानगर के उच्च अभिजात्य वर्ग की फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलने वाली, इतने बड़े प्रोफेसर की बेटी, दिल्ली विश्वविद्यालय में

प्रसिद्ध अनिंद्य सुंदरी । कोई मेल न था । पर आपने ब्यूटी ऐंड दि बीस्ट की लोककथा अवश्य सुनी होगी । दिल की भाषा अंग्रेज़ी नहीं, भोजपुरी भी नहीं । दिल की भाषा जब बोलने लगी, सारी दूसरी भाषाएँ दरकिनार हुईं । ऊपर से भावी पति पर विद्वान पिता का वरदहस्त, कैरियर में कोई बाधा नहीं ।
मैडम कोकिला की तरह गाती भूतपूर्व बलराम के संग परिणय सूत्र में बँधीं ।
६४
***
इधर बलराम सर ने कोकिला मैडम से विवाह किया उधर उनका अकादमिक कैरियर परवान चढ़ा । वे जनेवि के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता नियुक्त हो गए । अब वे बलराम पांडेय न थे, रक्तरंजित पांडेय थे । धीरे धीरे वे हिन्दी साहित्य के ऊँचे वृक्ष की ऊँची शाखाओं पर चढ़ने लगे । हंस में उनके लिखे लेख छपे । बस्तर के आदिवासियों पर, बीड़ी उद्योग पर, बोलीविया की सर्वहारा क्रांति पर, अमेरिका के पूँजीवादी विस्तारवादी षडयंत्र पर लिखे उनके आलेख, उनकी कविताएं पत्र पत्रिकाओं में छपीं । समय बीतने के साथ एक प्रगतिशील क्रांतिधर्मी सर्जनहार की उनकी छवि और बड़ी, और चमकीली होती चली गई । उन्होंने सोवियत रूस, उत्तर कोरिया, क्यूबा की कितनी ही अकादमिक यात्राएँ कीं । रूस के आदर्श समाज के बारे में लिखे गए उनके संस्मरणात्मक लेख सारे देश में सराहे गए । बस्तर के आदिवासियों और अमरीका के रेड इंडियन्स के साहित्यों की तुलनात्मक समीक्षा पर उनकी पीएचडी थीसिस से न जाने कितने भविष्य में उन्हीं की तरह महान बुद्धिजीवी बनने वाले छात्रों ने प्रेरणा ग्रहण की । क्यूबा पर लिखी गई उनकी कविताएँ बीए और एमए के पाठ्यक्रम में शामिल हुईं । रक्तरंजित सर भारत सरकार की शिक्षा नीति तय करने वाली समिति के सदस्य बने । जनेवि में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तो वे पहले ही हो गए थे । अनगिनत छात्र छात्राएँ उनके वटवृक्ष समान साहित्यिक व्यक्तित्व के नीचे फले फूले । रक्तरंजित सर प्रगतिशील लेखक संघ में बहुत सक्रिय रहे, उसकी गोष्ठियों में कभी गौहाटी, कभी आरा, कभी कोटा और कभी त्रिवेन्द्रम जाते रहे । कबीर में उनकी विशेष रुचि रही । वे कबीर को पहला मार्क्सवादी कवि मानते रहे । रक्तरंजित सर के शिष्य देश के कोने कोने में तमाम विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागों में नियुक्त हुए । वे साहित्य अकादमी की पुरस्कार चयन समिति के सम्मानित सदस्य रहे । कितने ही अनाम कवियों, लेखकों का रक्तरंजित सर की देखभाल में नाम गूंजा । सर की दलित और स्त्री लेखन में विशेष रुचि रही । स्त्री पीड़ा या ब्राह्मणवादी शक्तियों के अत्याचार जैसे विषयों पर जो कोई भी कुछ भी लिखता, सर उसे आंख मूंद कर हाथोंहाथ लेते ।
चूंकि सर सीपीआई से जुड़े थे, इसलिए इंदिरा जी की सरकार से भी उनके तार जुड़ गए । वे इंदिरा जी की सरकार को समाजवादी सरकार तो नहीं मान पाते थे पर फासिस्ट पूंजीवादी संशोधनवादी प्रतिक्रियावादी ताक़तों के खिलाफ चल रही विश्वव्यापी मुहिम में इंदिरा जी जैसी प्रगतिशील राजनीतिक व्यक्तित्व का समर्थन एक राजनैतिक आवश्यकता और कर्तव्य मानते थे । धीरे धीरे इंदिरा जी की सरकार से उनका सम्बंध बढ़ता चला गया । कई बार वे प्रधानमंत्री निवास पर बुलाई गई बैठकों में भाग लेने गए । रूसी दूतावास जब भी भारतीय रूसी बुद्धिजीवियों को दूतावास में या किसी पाँचसितारा होटल में भोज पर

आमंत्रित करता, तो यह संभव ही नहीं था कि प्रोफेसर रक्तरंजित पांडेय का नाम सम्मानित अतिथियों की सूची में न हो ।
जनेवि कैम्पस में SFI और NSUI संगठनों में कभी विवाद होता तो वह सर के पास निपटारे के लिए आता । सर प्रगतिशील संस्थाओं में आपसी भाईचारे के पक्षधर रहे ।
६५

***

कोकिला मैडम का वास्तविक नाम रुधिरवर्णा सान्याल था । पर उनका कंठ इतना मधुर और कोमल था कि उनका नाम ही कोकिला पड़ गया । उनके अनन्य सौंदर्य का वर्णन करने का अपनी सामर्थ्य के अनुसार पर वास्तव में अत्यंत निर्बल और क्षीण प्रयास मैंने पीछे किया है । सुधी जन अपनी कल्पना से उसमें जो उचित समझें जोड़ें । मेरी सामर्थ्य जितनी थी उतनी कोशिश मैंने की । कंठ का हाल भी वही रहा । जैसा रूप वैसा कंठ ।
ईश्वर या मार्क्स ने बुद्धि भी रूप और कंठ से मैच करती ही दी । मैडम धीरे धीरे अंग्रेज़ी साहित्य की विद्वान बनती चली गईं । पर यदि यह आप समझते हैं कि अंग्रेज़ी साहित्य में रुचि के कारण उन्होंने अपने सामाजिक दायित्वों से मुँह मोड़ा तो आप सिर्फ गलती ही नहीं करते, अन्याय भी करते हैं ।
मैडम की फ़्रांसीसी नारीवाद में गहन रुचि थी । नारीवाद के अध्ययन के सिलसिले में वे कई बार फ़्रांस गईं । फ़्रांस की तर्ज़ पर भारत में स्त्री स्वातंत्र्य का जनांदोलन खड़ा करने में मैडम ने बड़ा योगदान दिया । उन्हें पितृसत्ता से घोर चिढ़ थी । जहां पितृसत्ता देखतीं, भड़क जातीं । मैडम ने स्त्री मुक्ति अभियान को बल देने के लिए एक स्वयंसेवी संस्था खोली जिसकी अध्यक्ष वे स्वयं थीं । संस्था के बोर्ड में कई समाज सुधारक, प्रोफेसर, फिल्म जगत के माने जाने लोग और कैबिनेट मंत्री शामिल रहे । धन की कमी कम पड़ी । केन्द्रीय सरकार से अनुदान, संयुक्त राष्ट्र संघ के स्त्री सशक्तिकरण अभियान से कुछ समर्थन, रूस और क्यूबा जैसे मित्र देशों की मदद ।
कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि मैडम जनेवि में पहले अंग्रेज़ी की प्राध्यापिका नियुक्त हुईं और धीरे धीरे जैसे जैसी उनकी विद्वत्ता का पौधा बढ़ता गया, वे रीडर और प्रोफेसर के पदों से होते हुए अब भाषा विभाग के डीन पद पर थीं । कई जगहों से उपकुलपति बनने का निमंत्रण आया पर मैडम अपनी कर्मभूमि जनेवि छोड़ कर जाने को तैयार नहीं हुईं ।
मैडम का अंतरराष्ट्रीय संगठनों से बहुत सम्बंध रहा । इंगलैंड और फ़्रांस के नारी मुक्ति आंदोलन से जुड़े संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ की नारी मुक्ति से जुड़ी समितियों की बैठकें आदि । मैडम बहुत व्यस्त हो गईं । उनका अधिकांश समय विदेशों में ही गुज़रता । कभी लंदन में गोष्ठी तो कभी न्यू यॉर्क में भाषण । दुनिया की ताक़तवर महिलाओं से उनके व्यक्तिगत सम्बंध रहे । जैकेलीन कैनेडी जो बाद में जैकेलिन ओनासिस हो गई थीं, मैडम को बहुत मानती थीं, जब भी वे दिल्ली आईं, बिना मैडम संग डिनर लिए न गईं । इंदिराजी भी मैडम को बहुत स्नेह करती थीं ।
६६

***

कालांतर में रक्तरंजित पांडेय सर तथा रुधिरवर्णा सान्याल मैडम के कैरियर का ग्राफ़ वैसे ही ऊपर चढ़ता गया जैसी अपेक्षा थी । उनके घर में दो बच्चों की किलकारियाँ भी वैसे ही गूंजीं जैसी अपेक्षा थी । दोनों ही बच्चे बड़े होनहार । आखिर क्यों न होते होनहार । एक बच्चा एक बच्ची । रक्ताभ और रक्तिमा ।

आपको तो पता ही है समय कितनी तेज़ी से भागता है । यहाँ भी वह न रुका, भागता ही गया । जब तक मेरी एंट्री इस परिवार में हुई तब तक रक्ताभ हावर्ड पहुँच चुका था, एमबीए की पढ़ाई के सिलसिले में । और रक्तिमा ! उसकी कहानी अब मैं क्या बताऊं । उसने तब तक भारत न छोड़ा था । रक्तिमा ने सौंदर्य में अपनी माँ को पछाड़ा और करीब करीब दिल्ली सुंदरी होती होती रह गई । उसकी इतिहास में रुचि थी । वह तब सेंट स्टीफेन्स में इतिहास का अध्ययन कर रही थी । रोमिला थापर और इरफ़ान हबीब से पुराना पारिवारिक सम्बंध रहा । उनसे वह अक्सर गंभीर संवाद करती और नोट्स भी लेती ।

रक्तिमा सिर्फ पढ़ाई लिखाई में मगन रहने वाली बोरिंग बाला न थी । उसकी कला और साहित्य में भी रुचि थी । क्यों न होती - दो बुद्धिजीवियों की लाड़ली बेटी थी । रंगमंच में उसकी बहुत रुचि थी । खास तौर पर ब्रेख़्त के नाटकों का मंचायन । उसकी रंगकला के बारे में दिल्ली में चर्चाएँ ऐसी फैलीं कि बम्बई के एक प्रगतिशील फिल्म निर्माता ने उसे एक फिल्म में रोल ऑफ़र किया । भूमिका उसके पसंद की थी । नारी मुक्ति और पितृसत्तात्मक अत्याचार से जुड़ी थी ।

यही वे दिन थे जब मेरी मुलाकात रक्तरंजित सर से हुई और मेरा उनके यहाँ आने जाने का सिलसिला चला ।

६७

***

मेरे साथ यही दिक्कत है - मैं अक्सर बहक जाता हूँ । अब देखिए न - यह मेरी रक्तरंजित सर से पहली मुलाक़ात थी । रक्तरंजित सर ने मुझे चाय पिलाई थी । भारतीय राजनीतिक परिदृश्य के संदर्भ में प्रगतिशील जनवादी शक्तियों की भूमिका के बारे में उनके प्रश्न का डरते डरते मैंने उत्तर दिया था । मेरा धड़का खुला ही था और मैं उन्हें अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर प्रगतिशील ताक़तों की भूमिका, समाज और इतिहास की धाराओं पर अपनी सोची समझी राय बताने ही वाला था कि बीच में कोकिला मैडम आ गईं और मेरा ध्यान भटक गया । ध्यान भटकना कमजोरी है । प्रगतिशील जनवादी युवा को भटकाव से बचना चाहिए । स्टालिन सर और चेयरमैन माओ की तरह सदा अपने उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित रखना चाहिए ।

पर अपने आप से बहुत कड़ाई से पेश आना भी अच्छी बात नहीं । मैं नौसिखुआ था । इस रंगकर्म में मेरी एक्स्ट्रा की भूमिका थी । मैं सीख रहा था । अभी तो मेरी अंग्रेज़ी में भोजपुरी का भारी पुट था । मैं अभी खुरदुरा था । कायदे का कारकुन बनने में अभी समय था, मेहनत की दरकार थी ।

६८

***

भारतीय परिदृश्य में प्रगतिशील जनवाद की क्रांतिकारी भूमिका के बारे में मैं अपनी राय रक्तरंजित सर को पहले ही बता चुका था । वे चुपचाप सुनते रहे थे । उनके चेहरे पर जिज्ञासा और विनोद के भाव आते जाते रहे थे । मेरा अनुमान है कि सर मेरी बातों से प्रभावित हुए थे । शायद उन्हें अनुमान न रहा हो कि गाँव देहात की पृष्ठभूमि से आया नया लड़का इतनी गूढ़ बातें करेगा ।
जब उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर प्रगतिशील शक्तियों की भूमिका के बारे में पूछा तो मुझे थोड़ा सोचना पड़ा । मैंने चाय की प्याली उठाई और एक सुड़की ली । इससे मेरा दिमाग खुला और सोचने का मौक़ा मिला ।
मैंने कहा :
"सर, आपको तो पता है कि सारे संसार में मनुष्य एक जैसे हैं । हममें और रूसियों या अमरीकियों में कोई भेद नहीं । हम सभी एक विशाल ऐतिहासिक राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मशीन के पुर्ज़े हैं । बस अंतर इतना ही है कि अलग अलग पुर्ज़े अलग अलग रफ़्तार से घूमते हैं । हममें से कुछ अभी सामन्तवाद में जकड़े हैं । सामन्तवाद की जड़ें ग्रामीण कृषक समाज में हैं । धीरे धीरे जैसे जैसे शहरीकरण होगा, नई तकनीकें आएँगी, औद्योगीकरण होगा, पूँजी का महत्व बढ़ेगा वैसे वैसे भौतिकी या जैविकी के नियमों की तरह सामन्तवाद की दीवारें भहरा भहरा कर गिरेंगी । पुरानी ग्रामीण संस्कृति सड़ गल कर नष्ट हो जाएगी । यह विकास की पहली अवस्था होगी । हमारा देश भारत, अफ़्रीका के बहुत सारे देश अभी इस अवस्था से गुज़र रहे हैं । यूरोप के देश पिछली सदी में ही इस अवस्था से निकल चुके थे । यह ऐतिहासिक चक्र है सर । यह चलेगा, इसे कोई रोक न पाएगा । बाबा मार्क्स बहुत बड़े वैज्ञानिक थे सर । उन्होंने इस वैज्ञानिक चक्र को दूर से वैसे देखा जैसे हम अपने सामने टेबुल पर पड़ी चाय की प्यालियों को देख रहे हैं सर । उनकी असाधारण वैज्ञानिक आँखों ने प्रकृति का खेल समझ लिया सर । यह सारा चक्र गणित के नियमों की तरह, फ़ार्मूलों की तरह रहा सर । बस, अंतर यही समझ लीजिए कि इस फ़ार्मूले में कोई समाज अभी प्रारम्भ की अवस्था में है तो कोई प्रारम्भिक अवस्था को छोड़ कर आगे बढ़ चला है । कुछ समाज तो अंतिम आदर्श स्थिति के ठीक पहले के पड़ाव पर अँटके हैं, छलाँग लगाने की तैयारी कर रहे हैं । वे छलाँग लगाएँगे और हमें अद्भुत समाजवादी स्वर्ग के, मनुष्य की स्वतंत्रता के दृश्य देखने को मिलेंगे । मैं कुछ गलत कह रहा हूँ सर ?"
मैंने चाय की एक और सुड़की ली और मस्तिष्क में घुमड़ रहे विचारों को संजोने का प्रयास किया ।
६९
***
मैं बोलता चला गया और रक्तरंजित सर का धैर्य देखिए - वे सुनते चले गए । मेरा धड़का अब खुल चुका था ।
"देखिए सर, मानवजाति के विकास की सीढ़ियाँ बिल्कुल अंकगणित के फॉर्मूलों की तरह स्पष्ट हैं । कहीं किसी संदेश की कोई गुंजाइश नहीं । यह बात मार्क्स ने अपनी अद्भुत वैज्ञानिक दृष्टि से देख ली और

हमें समझाई । इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मानवजाति के समूचे इतिहास में मार्क्स जैसा वैज्ञानिक, मार्क्स जैसा दार्शनिक न हुआ । बल्कि पुरबिया बोली में कहूँ तो ज्यादा सटीक रहेगा - पैदा न लिया ।
सामंतवादी समाज में क्रांति की संभावनाएँ कम हैं । ऐसे कृषक समाज में सर्वहारा की ताक़त बिखरी हुई है, और सर्वहारा और सामंत में सांस्कृतिक समानताओं और साझी ऐतिहासिक स्मृति का एक पुल है । वह अपने वर्गशत्रु के खिलाफ इकट्ठा हो कर मारकाट न कर पाएगा । इसीलिए कृषक समाजों और देशों में समाजवादी राज्य की स्थापना कठिन है । इसके लिए विकास के दूसरे चरण पूँजीवाद से होकर गुज़रना होगा । क्रांति की बाढ़ का रास्ता रोकने वाली सामूहिक ऐतिहासिक स्मृति और सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट करना होगा । ऐसा यूरोप में हुआ है । अब वहाँ बड़ी बड़ी फ़ैक्टरियाँ हैं, उनमें काम करने वाले मज़दूर हैं, उनकी सामूहिक ताक़त है । वहां क्रांति का सारा बारूद मौजूद है, बस तीली भर लगाने की देर है । वहाँ के सर्वहारा एक दिन वर्गशत्रुओं का खात्मा करते हुए क्रांति का बिगुल बजा देंगे ।
हम समाजवादी हैं, फिर भी मनुष्य के विकास चक्र की माँग है कि यदि हम सामंतवादी समाज में हों तो हम आने वाली पूँजीवादी प्रवृत्तियों का विरोध न करें, उन्हें आने दें । अंततः पूँजीवादी शक्तियाँ हमारी वर्गशत्रु हैं, हम उनका खात्मा करेंगे पर फिलहाल वे मनुष्य के विकास में मददगार हैं, हम उनकी मदद करें । इसीलिए सारी प्रगतिशील ताक़तें इस समय भारत में इंदिरा गांधी के साथ खड़ी हैं । इस समय इंदिरा हमारी संगिनी हैं । इंदिरा के हाथ मज़बूत करना महान समाजवादी कर्तव्य है ।
जब हम पूँजीवाद और संगठित सर्वहारा के दौर से गुज़र रहे होंगे तब हम पलटी मार कर पूंजीवादी ताक़तों का गला पकड़ लेंगे । ये स्ट्रैटेजी और तकनीक की बातें हैं जो गंभीर विचार करने पर ही समझ में आती हैं । हड़बड़ी में गलत निष्कर्ष निकल आते हैं ।
अब कॉमरेड स्टालिन की बात ही लीजिए । बहुत से मासूम भोले भाले नासमझ समाजवादी कॉमरेड की आलोचना इसलिए करते हैं क्योंकि कॉमरेड के काल में सहकारिता आंदोलन में करोड़ों लोग भूख से मर गए । मैं ऐसे लोगों की बुद्धि पर तरस खाता हूँ । इनकी मार्क्सवाद की समझ अधपकी है । इनको यह बात समझ में नहीं आती कि इन लोगों को आज नहीं तो कल मरना ही था । यूँ ही मरते उससे अच्छा तो यह हुआ कि भावी समतामूलक समाज की स्थापना के पवित्र कर्म का मार्ग प्रशस्त करते हुए मरे । हर क्रांति की कीमत चुकानी पड़ती है । अब यहीं दिल्ली में आप एक बोतल वोदका ख़रीदना चाहेंगे तो आपको सौ दो सौ खर्च करने होंगे या नहीं ?"
मैं अपनी रौ में बहा जा रहा था ।
७०

***

मैं धाराप्रवाह बोलता जा रहा था और रक्तरंजित सर भौंचक मेरा मुँह देख रहे थे । मैं आगे बढ़ा :
"पहले हमें समाज को मकड़जाल में लपेटने वाली सामूहिक स्मृति, इतिहास को नष्ट करना होगा । इन यथास्थितिवादी शक्तियों का जाल तोड़ने से क्रांति की समतल जमीन बन पाएगी, वरना लोग इन्हीं में उलझ कर रह जाएंगे । पूँजीवाद इस काम में हमारी मदद करेगा । समाज का तानाबाना टूट जाएगा,

वर्गचरित्र और वर्गहित के हिसाब से कर्म करने की मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मूल मानवीय प्रवृत्ति के रास्ते की बाधाएँ हटेंगी । कुंठाएँ नष्ट हो जाएँगी । फिर समाज दो हिस्सों में बँटेगा - पूँजीपति और सर्वहारा । इनके बीच कोई सम्बंध न होगा । पूंजीपति मैदान के इस तरफ, सर्वहारा उस तरफ । कन्फ्यूजन की गुंजाइश न रहेगी । दोनों वर्गशत्रु अपने अपने वर्ग के हित के हिसाब से युद्ध की तैयारी करेंगे । अब यहाँ कोई एक व्यक्ति न होगा, दो समाज होंगे जो अपने अपने वर्ग चरित्र के हिसाब से निपटने का काम करेंगे ।
यही है वह वर्गसंघर्ष का सूरज की रोशनी में चमकती सड़क की तरह स्पष्ट सिद्धांत जो मैंने अपनी अल्पबुद्धि के मुताबिक़ सर के सामने रखने की हिमाक़त की है ।“
७१
***
मुझे लगा कि मैं कहीं बहुत ज्यादा तो नहीं बोलता जा रहा हूँ और कहीं रक्तरंजित सर बुरा न मान जायं । पर मेरी बात तो अभी पूँजीवादी औद्योगिक समाज के आगमन तक ही पहुँची थी, वर्गसंघर्ष और उसके गर्भ से उत्पन्न सर्वहारा के अधिनायकत्व का जो अगला चरण था उसके बारे में तो अभी बोल ही नहीं पाया था, इसलिए मैंने संक्षेप में मनुष्य के विकास की आगे की सीढ़ियों पर भी रोशनी डालना अपना कर्तव्य समझा ।
“अब देखिए सर, एक बार जब पूँजीवादी शक्तियाँ और सर्वहारा वर्ग आमने सामने होंगे और वर्गयुद्ध होगा तो यह अवश्यम्भावी है कि अंत में सर्वहारा की विजय होगी । यह बात भौतिकी के नियमों की तरह तय है । इसमें मुश्किलें आएँगी, पर सर्वहारा बहादुरी से उन मुश्किलों से पार पाएगा । लोग मरेंगे पर मरना तो लोगों का काम ही है । मरना कोई बड़ी बात नहीं । रूस में बोल्शेविक क्रांति में यही तो हुआ न सर । पूंजीवादी शक्तियों का ख़ात्मा हुआ और सच्चे समतावादी गणतंत्र की नींव पड़ी ।
कई मूढ़ सर्वहारा के अधिनायकत्व और सच्चे समाजवादी गणतंत्र की अवधारणाओं में विरोधाभास देखते हैं । ऐसा भ्रम ज्ञान और तार्किकता की कमी के कारण उठना स्वाभाविक है । उन्हें समझ में नहीं आता कि जैसे सामन्तवाद की अगली सीढ़ी पूँजीवाद है और पूँजीवाद की अगली सीढ़ी सर्वहारा का अधिनायकत्व, वैसे ही सर्वहारा के अधिनायकवाद के आगे का चरण सच्चा समतावादी समाजवादी गणतंत्र है । रूस, चीन, क्यूबा, उत्तर कोरिया इसी दहलीज़ पर तो खड़े हैं न सर । अब वे छलाँग लगाने को तैयार हैं कि नहीं सर ?"
७२
***
मैं बोलता गया :
“नादान लोग कहते हैं कि रूस और चीन में, कोरिया और क्यूबा में लोकतंत्र नहीं है, वहाँ चुनाव नहीं होते, वहाँ एकदलीय शासन है । जो ऐसा कहते हैं उनकी मनुष्य के विकास के वैज्ञानिक चरणों की समझ धूमिल है, उसपर काई जमी हुई है । ध्यान से देखें तो समझ में आए कि आदर्श समाजवादी समाज की

स्थापना का यह दीपक कैसे झंझावातों से जूझ रहा है । हमें इस दीपक को बुझने से बचाना है, फासिस्ट पूँजीवादी ताक़तों के षड्यंत्रों से इसे बचाना है । इसलिए पूर्ण बहुदलीय लोकतंत्र अभी संभव नहीं है और उसकी आवश्यकता भी नहीं है । जब एक दल मनुष्य का जीवन सुधारने को इस तरह कृतसंकल्प है तो दूसरे दलों की आवश्यकता ही क्या है ? जब तथाकथित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बिना ही मनुष्य वास्तविक स्वतंत्रता का सुख भोग रहा है तो उसे इस प्राणघातक पूँजीवादी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता ही क्या है ? एक बार ऐसी तथाकथित स्वतंत्रता का द्वार खुला और बाजार पश्चिमी पूँजीवादी सामानों से पटा, मनुष्य की गुलामी का बीज पड़ा । नहीं, हमें एक एक कदम फूँक फूँक कर रखना है । हमारा आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक शोषण न हो, हम पूँजीवादी ताक़तों के षडयंत्र से बचें । वे हमें लीलने को घात लगा कर बैठी हैं ।
और चुनाव ? चुनाव तो समाजवादी समाज में होते हैं - आपको पता ही है सोवियत संघ के पहले चुनाव में बोल्शेविक पार्टी को ९९.७ प्रतिशत मिले थे, बाद में कॉमरेड स्टालिन के शासनकाल में हुए चुनाव में ८५ प्रतिशत मत मिले । यही स्थिति चीन में रही । है दुनिया में और कोई देश जहां कोई शासक दल इतना लोकप्रिय रहा हो ? जब एक दल ही इतना लोकप्रिय है, तो कोई पागल है कि दूसरे दल बनाएगा ?
सर, यह सर्वहारा के अधिनायकवाद का चरण है । इसके आगे का चरण होगा सम्पूर्ण मुक्ति का । वह आदर्श समतावादी समाज होगा । मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्रता मिल जाएगी । वहाँ कोई धर्म, जाति, देश, भाषा, संस्कृति का झंझट न रहेगा । एक ही जाति, एक ही भाषा, एक ही देश, एक ही संस्कृति । मनुष्य जाति, मनुष्य भाषा, मनुष्य देश, मनुष्य संस्कृति । मनुष्य हाथ बढ़ा कर प्रकृति को मुट्ठी में बंद करेगा । चाँद सितारे उसके हुक्म से चलेंगे । इसे कहते हैं असली स्वतंत्रता । हर शख्स एक जैसा । चपरासी और प्रोफेसर मिल कर एक दूसरे के काम में हाथ बटाएँगे । किसी की कोई निजी सम्पत्ति न होगी । आपकी सम्पत्ति मतलब मेरी सम्पत्ति सर । जो जिस घर में चाहे, उसमें जाकर सोए । कहीं कोई बंधन नहीं, कहीं कोई सीमा नहीं ।
सर, जब मैं उस दिन की कल्पना करता हूँ, मुझे रोमांच हो आता है, मेरे होशो हवास गुम हो जाते हैं सर । ऐसे आदर्श समाज की स्थापना के लिए करोड़ों जानों की कीमत चुकानी पड़े तब भी यह बहुत सस्ता सौदा है, सर ।"
मैं भावातिरेक में बह निकला ।
७३
***
मेरी बात सुनकर प्रोफेसर रक्तरंजित पांडेय करीब करीब हतप्रभ थे । उनके चेहरे पर आते जाते भावों से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे न सिर्फ मुझसे अत्यंत प्रभावित थे, बल्कि भावाविष्ट भी थे । उन्हें शायद अनुमान न था कि जनेवि में पहली बार आए किसी गवंई गँवार लड़के लपाड़ी की समाजवाद की समझ

इतनी तार्किक, इतनी वैज्ञानिक, इतनी परिपक्व और इतनी सुलझी हुई होगी । यह कहना कि वे गदगद थे - उनकी उस समय की भावावास्था को कम कर आँकना होगा ।
उन्होंने अपने माथे का पसीना पोंछा और बहन को आवाज लगाई - और दो कप चाय के लिए ।
फिर सर बोले ।
७४
***
रक्तरंजित सर बहुत देर तक बोलते रहे पर उनके मुख से निकला पहला वाक्य धा :
बेटा, तुम जीनियस हो ।
७५
***
रक्तरंजित सर की बहन चाय की दो प्यालियाँ हमारे सामने रख गईं थीं । बातों बातों में काफी समय बीत गया था । रक्तरंजित सर ने दाएँ हाथ से अपनी ज़ुल्फ़ें सँवारीं, माथे का पसीना पोंछा और फिर चाय की अपनी प्याली उठाई । वे देर तक चुपचाप ग़ौर से मेरे चेहरे को देखते रहे । फिर बोले :
“मैं हैरान हूँ कि तुम्हारे अंदर इतनी कच्ची उम्र में समाजवाद की इतनी पक्की समझ है । ऐसी समझ तो यहाँ जनेवि में बहुत से प्रोफ़ेसरों को नहीं है । तुम बहुत आगे जाओगे । तुम्हारे अंदर भविष्य में महान बुद्धिजीवी बनने के सारे लक्षण मौजूद हैं । मैं चाहूँगा तुम हिन्दी कविता लिखो, साहित्य में तुम जैसे कुशाग्र बुद्धिजीवियों की बहुत जरूरत है । तुम गरीब मजलूम की बदहाल जिंदगी पर रोशनी डालो । देखो, जबतक गरीब हैं, तभी तक हम हैं । हमें गरीब गुरबा की जिंदगी के पहलुओं पर साहित्य लिखना चाहिए । हम ऐसा करते हुए आगे बढ़ चलेंगे । तुम युवा हो, तुम्हारे अंदर ऊर्जा है, तुम गरीबी को अपनी जिंदगी का केन्द्र बनाओ । गरीबी जितनी बढ़ेगी, तुम्हारे कैरियर का ग्राफ़ उतना ही बढ़ता चला जाएगा । गरीबी न होती तो चे ग्वेवारा को कौन जानता ?
तुम्हारी भाषा में भोजपुरी का हल्का सा पुट है । यह तुम्हारी ताक़त है । इसे बिला वजह छुपाओ मत, सही जगह पर इस्तेमाल करो । इससे तुम्हारी बात का वज़न बढ़ेगा । पर ध्यान रखना हर जगह ऐसा करना उचित न होगा । विवेक का इस्तेमाल करना होगा । जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ में बोलना हो तो वहाँ बढ़िया अंग्रेज़ी बोलो, भोजपुरी की छाया न आने दो । पर जनेवि में छात्रों की सभा में भोजपुरी का बढ़ चढ़ कर प्रयोग करो । भोजपुरी सर्वहारा की भाषा है । भाषा में तीखा तेवर लाओ, तुम्हारी क्रांतिकारी छवि बनेगी । तुम बहुत जल्दी sub altern की आवाज़ बन कर उभरोगे ।
एक बात और । ध्यान रहे, तुम भभुआ सासाराम से आए हो । तुमने इस बात पर ठीक से ध्यान न दिया । तुम्हें इतनी बड़ी सम्पदा का आभास भी न रहा । अरे, भभुआ सासाराम फ़िलहाल नक्सलवादी क्रांति का मुख्य क्षेत्र है । यह कोई मामूली बात नहीं । यह बात तुम्हारी क्रांतिकारी छवि को चार चाँद लगाएगी । ठीक है, तुम आदिवासी नहीं हो, मुसहर नहीं हो, पर तुम भभुआ से तो हो, कैमूर घाटी से तो हो । तुम्हारा सम्बंध सर्वहारा क्रांति के क्षेत्र से है । तुम्हीं बताओ जब तुम परिसर में भोजपुरी लहजे में भभुआ के

नक्सलवाद का हवाला दोगे तो जनेवि छात्र संघ के चुनाव में तुम्हें कोई कैसे पराजित कर पाएगा ? तुम्हीं बताओ ।"

७६

***

रक्तरंजित सर ने चाय की एक चुस्की और ली और आवाज दबा कर करीब करीब फुसफुसाते हुए बोले :
"देखो, यह बात अपने तक ही रखना । तुम्हारे दिमाग में यह बात जरूर उठी होगी कि उत्तर कोरिया, चीन और सोवियत संघ जैसे महान समाजवादी देशों के रहते हुए भी मैंने अपने बेटे रक्ताभ को ऊँची शिक्षा के लिए हावर्ड क्यों भेजा । ऐसे प्रश्न उठना स्वाभाविक है ।
बात यह है कि समाजवाद की लौ अभी धीमी है और प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी झंझावातों से घिरी है । हमें एक एक कदम सोच समझ कर उठाना होगा । मुझे लगता है कि हमें साम्राज्यवादी पूँजीवादी समाजों की अन्दरूनी बनावट का अध्ययन और गहराई से करना चाहिए । तभी हम उनकी काट निकाल पाएंगे । यह काम हमें गम्भीरता से करना होगा । इसीलिए मैंने रक्ताभ को हावर्ड भेजा । समाजवाद की उसकी समझ गहरी है । अब पूँजीवादी समाज की अंदरूनी स्थिति के बारे में उसकी जानकारी बढ़े तो वह कायदे का समाजवादी सेनानी बन सकेगा ।"
ऐसा कहते हुए रक्कतंजित सर के चेहरे पर संतोष और गर्व की मिली जुली लहर दौड़ी । उन्होंने दालमोट की प्लेट मेरी तरफ बढ़ाई ।

७७

***

मैं रक्तरंजित सर के ड्राइंग रूम की दीवार से लगी पुस्तकों की आलमारियों को देख कर मंत्रमुग्ध सा था । रक्तरंजित सर विद्वान व्यक्ति थे, साहित्य के प्रोफेसर थे, मेरी बात ताड़ गए । सोफे से उठ खड़े हुए । बोले :
"आओ, ये देखो मेरी किताबें । इन किताबों को पढ़ोगे तो तुम भी मेरी तरह विद्वान बनोगे । वैसे विद्वता के शुरुआती लक्षण तो तुममें अभी से मौजूद हैं । बस विद्वत्ता को पढ़ पढ़ कर सान लगाते जाओ ।
यह देखो कॉमरेड स्टालिन की आत्मकथा । अब समझ लो कि इस पुस्तक का मेरे जीवन में वही स्थान है जो मुसलमानों के जीवन में कुरान का है । इस पुस्तक में संसार की सारी गुत्थियों का हल मौजूद है । कॉमरेड स्टालिन की नजर कितनी दूरभेदी थी - इसका आभास इस पुस्तक को पढ़ने से मिलता है । मैं तो उन्हें महामानव मानता हूँ । हमें कॉमरेड के जीवन से प्रेरणा लेनी ताहिए । वैसे चेयरमैन माओ का व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नहीं है । अपनी अपनी पसंद है । जीवन में जब भी कभी मैं अनिश्चय की स्थिति से गुज़रा, मुझे समाधान स्टालिन की इस पुस्तक के पन्नों में मिला । तुम भी पढ़ो, अपना जीवन सवांरो, समाजवाद के सच्चे सिपाही बनो । "

७८

***

रक्तरंजित सर और मैं - दोनों खड़े होकर आलमारी में सजी पुस्तकों का मुआयना कर रहे थे । रक्तरंजित सर का चेहरा गर्व से और मेरा युवासुलभ जिज्ञासा और कुतूहल के रंगों से चमक रहा था । बल्कि मैं तो अपने भाग्य पर इतरा भी रहा था । गहरे में कहीं उन पुस्तकों का लालच भी था । आपको तो पता ही है मनुष्य के अंत:करण में एक संग कैसी अजानी लहरें हिलोरें लेती रहती हैं । पिछली पोस्ट में मैंने बताया था कि रक्तरंजित सर ने किस अभिमान से कॉमरेड स्टालिन की आत्मकथा वाली पुस्तक के उनके जीवन में केन्द्रीय महत्व का विवरण दिया था ।
अब बारी थी चेयरमैन माओ की लाल किताब की । नन्हीं सी प्यारी सी लाल लाल किताब । उसका ज़िक्र करते करते सर भावुक हो गए । कहने लगे :
" देखो, तुम मेरे पुत्र की तरह हो, तुम्हारे और मेरे जीवन दर्शन में कैसा अनोखा और आश्चर्यजनक साम्य है । आजकल ऐसे होनहार युवा कहाँ दिखते हैं ? मैं तुम्हें चेयरमैन की लाल किताब के बारे में बताऊँगा । यह देखने में छोटी सी किताब लगती है, पर बड़े बड़े महान ग्रंथों पर भारी है । इस छोटी सी किताब में जीवन के सूत्र क़ैद हैं । यह किताब सदा मेरे संग रहती है । बिना इस किताब के संग रहे मैं कहीं निकलने की बात सोच भी नहीं सकता । मैं तो कहूँगा कि तुम भी अपनी जेब में यह पुस्तक सदा रखो । कहीं कोई असमंजस हो, इस किताब में उस का हल तत्काल ढूंढ़ लो । बस यह समझ लो जो इस किताब में नहीं है, वह समस्त संसार में नहीं है । मेरी सलाह मानो - इस छोटी सी पुस्तक को पढ़ पढ़ कर कंठस्थ कर लो । मैंने किया और मैं अद्‌भुत समाजवादी ऊर्जा से भर गया ।"
उनकी आलमारी में चेयरमैन की लाल किताब की कई प्रतियाँ रखी थीं । उन्होंने उनमें से एक प्रति निकाल कर धूल झाड़ी । अचानक मेरी नजर किताब के पीछे की खाली हुई जगह पर पड़ी । वहाँ हनुमान चालीसा की एक प्रति रखी थी । मैं समाजवादी जरूर था पर अपने सड़े गले संस्कारों के कारण हनुमान चालीसा से अपरिचित न था ।
७९
***
अचानक इस तरह चेयरमैन माओ की लाल किताब के पीछे से हनुमान चालीसा के झांकने से ड्राइंगरूम की हवा में हल्की सी असहजता घुल गई । सर की आंखें अब मेरी तरफ नहीं, खिड़की के बाहर खुले आसमान पर टिक गई थीं । सर ने खंखार कर अपना गला साफ किया, माथे का पसीना पोंछा, कमीज का ऊपरी बटन खोला और फिर से सोफे पर बैठ गए । उन्होंने अपनी बहन को और चाय और दालमोठ लाने के लिए आवाज दी और गम्भीर विचार में डूब गए । उनकी पलकें देर तक बंद रहीं । कमरे में अब ऊपर घूम रहे पंखे के सिवा और कोई ध्वनि न थी ।
थोड़ी देर में जब चाय आई तो सर की तन्द्रा टूटी । उनके धीर गम्भीर मुख पर पसीने की नन्हीं नन्हीं बुंदियां चमक रही थीं । उन्होंने थोड़ा दालमोठ मुंह में डाला, चाय की चुस्की ली और उनके चेहरे का तनाव ढीला हुआ । वे सामने झुके और धीमे स्वर में करीब करीब फुसफुसाते हुए बोले ।
८०

***

“देखो, पहली भेंट में ही मैं तुम्हें पुत्रवत समझने लगा हूँ । समाजवाद की तुम्हारी समझ, सर्वहारा के प्रति तुम्हारी लगन देख कर मैं सिर्फ प्रभावित ही नहीं अचम्भित भी हूँ । मुझे इस बात में रंचमात्र भी संदेह नहीं कि एक दिन तुम मार्क्सवादी विचार में अपना बड़ा योगदान दोगे । महान बुद्धिजीवी बनने की सारी संभावनाएँ तुममें मौजूद हैं ।

मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे दिलोदिमाग़ में ताजा ताजा खिला मार्क्सवादी फूल किसी दुर्घटना की वजह से कुम्हलाए । तुम्हारे मार्क्सवादी विचार शुद्ध हैं, उनमें प्रदूषण के डीज़ल की गंध नहीं है । यह कोई मामूली बात नहीं । इसलिए जो अभी हुआ उससे मैं चिंतित हूँ । मैं नहीं चाहता कि इस घटना के उलटे अर्थ निकाल कर तुम अपने हृदय में कुंठा की गाँठ बाँधो ।”

८१

***

”देखो, तुम वह पहले व्यक्ति हो जिसने मेरे मार्क्सवादी घर में हनुमान चालीसा देखी है । यह बात मैंने अबतक गुप्त रखी थी । मैं नहीं चाहता था कि मेरे विरोधी बात का बतंगड़ बनाएँ और मेरी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलाएँ । तुम तो आजकल की दुनिया का हाल समझते ही हो । तरह तरह के लोग चहुंओर फैले हुए हैं ।

समझने की कोशिश करो, उत्तर प्रदेश के एक पिछड़े गाँव से आया करीब करीब दरिद्र ब्राह्मण माँ बाप का गवंई गँवार बेटा यूँ ही विद्या के इस महान केन्द्र में वरिष्ठ प्रोफेसर के पद पर तैनात नहीं है । तुम्हें शायद पता न हो, मेरा नाम डीन के लिए भी चल रहा है । मेरी पुस्तकें अब विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हैं । रूसी और चीनी दूतावासों में मेरी आवभगत होती है । मैं क्यूबा और रूस के विश्वविद्यालयों में विज़िटिंग प्रोफेसर हूँ । तुम्हें क्या लगता है - यह सब ऐसे ही हो गया है ? मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसी घटना हो जिससे मेरी मार्क्सवादी प्रतिष्ठा में बट्टा लगे । यह मेरे लिए और मार्क्सवादी विचार के लिए - दोनों के लिए अच्छी बात न होगी । आदमी को एक एक कदम सोच समझ कर उठाना चाहिए ।”

८२

***

रक्तरंजित सर सोफे से उठ गए । चाय का प्याला हाथ में लिए खिड़की के पास मेरी तरफ पीठ करके खड़े हो गए । बाएँ हाथ में चाय का प्याला था, दाएँ हाथ से उन्होंने ललाट पर चमक रहे स्वेद कणों को पोंछने का काम किया । कोई दो मिनट वहीं मौन खड़े खिड़की के बाहर निरभ्र नीले आकाश को एकटक निहारते रहे । फिर धीरे से वापस मुड़े और सोफे पर आकर मेरे सामने बैठ गए । फिर धीमे स्वर में हौले हौले बोलने लगे ।

८३

***

"ठीक है कि मैं मार्क्सवादी हूँ, सर्वहारा का पुजारी हूँ, ब्राह्मणवाद का शत्रु हूँ पर न भूलो कि मैं जन्मना सरयूपारीण ब्राह्मण हूँ, पुरोहित कर्म मेरा आनुवांशिक कर्म रहा है । मैंने बहुत प्रयास कर अपने ब्राह्मण संस्कारों को दबा दिया है, मनुवाद को तो मैंने जमीन में गाड़ने के लिए जीवन लगाया है, मैं वक्त बेवक्त बाबा साहब की पूजा भी करता हूँ । पर मैं क्या अपने अंदर के ब्राह्मण को पूरी तरह मार दूँ ? यह क्या संभव है ? और संभव हो भी तो क्या वांछनीय है ? तुम तो खुदै देख रहे हो जगह जगह तमाम जातियों के लोगों ने अपने अपने खूँटे गाड़े हुए हैं । कहीं ठाकुर तो कहीं यादव । और सबसे आगे तो घुन्ने बिहारी भूमिहार । यही है इस देश की असलियत । इसी असलियत का सामना करते हुए हमें मार्क्सवाद की खेती करनी है ।

ठीक है कि मेरे ब्राह्मण संस्कार सड़े गले हैं । पर मृत तो नहीं हैं पूरी तरह । मैंने उनसे काफी हद तक छुट्टी पा ली है पर यदि थोड़े बहुत बच गए हैं तो उन्हें सबकी नजर से छिपा कर चेयरमैन की किताब के पीछे रखने में क्या बुराई है ? तुम्हीं बताओ, तुम तो समाजशास्त्र के उदीयमान अध्येता हो ।"

८४

***

उन्होंने चाय की एक चुस्की ली, खंखार कर गला साफ किया, बालों पर हाथ फेरा और सोफे से उठ कर मेरे बगल में मोढ़े पर बैठ गए । संझा का समय हो रहा था, सूरज डूबने ही वाला था । कमरे में गरमी की तपिश कम हो चली थी । फुसफुसाते हुए बोले :

"देखो, अब जब बात सामने आ ही गई है तो खोल कर कहने में कोई हर्ज नहीं । और तुम तो अब घर के आदमी हो, क्या पता किसी दिन हम तुम किस रिश्ते में बंधें, समझदार हो, होनहार हो । मुझे पता है तुम यहाँ वहाँ ये बातें नहीं फैलाओगे ।

मेरी माँ देहाती धार्मिक स्त्री थी । कान्यकुब्ज कुल की थी, सरयूपारीण कुल में बचपन में ब्याह दी गई थी । पूजा पाठ, भजन कीर्तन ही उसका बचपन से चना चबेना रहा । सोते जागते उसके कानों में कभी कोई मन्त्र पड़ता, कभी कोई श्लोक पड़ता । मेरे नाना संस्कृत के कर्मकाण्डी विद्वान थे । शास्त्र में पारंगत, धर्म में डूबे । उनके परिवार में बिना स्नान किए कोई भोजन नहीं बना सकता था । संध्या ६ के बाद भोजन की अनुमति न थी । सुबह प्रार्थना होती, शाम संध्या । मेरी माँ ऐसे वातावरण में पली बढ़ी । जब ब्याह कर मेरे पिता के घर में आई तो वहाँ का वातावरण तो और भी धार्मिक । मेरे पिता जी खुदै बहुत धार्मिक रहे ।

मेरे माता पिता का मानना था कि उनके पुत्र का विवाह उच्च ब्राह्मण कुल में हो । सच कहूँ तो मेरी भी अंदर से यही इच्छा थी । पर तुम्हें तो मालूम ही है मुहब्बत वह आंधी है जिसके सामने सारे विचार, सारी परम्पराएँ तिनके की तरह उड़ जाते हैं । युगों युगों से यह रीत चली आ रही है । और चाहे दुनिया में कुछ भी बदला हो, यह बात नहीं बदली । मिर्ज़ा खुदै कह गए कि : लगाए न लगे और बुझाए न बने ।"

८५

***

“यह खुद ब खुद लगी जंगल की आग की तरह सिर्फ खालिस मुहब्बत की आग थी या इसमें अकादमिक प्रगति की चाहना का शहराती पेट्रोल भी पड़ा था - यह मैं आज तक तय नहीं कर पाया । यह मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण का विषय है । मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि संयोग कुछ यों बना कि दिल्ली पहुँचते ही मेरी मुठभेड़ अंग्रेज़ी के विख्यात और विद्वान प्रोफेसर लालकुंवर सान्याल से हो गई । उन दिनों प्रोफेसर सान्याल की दिल्ली विश्वविद्यालय में और बल्कि देश के अकादमिक सर्कलों में तूती बोलती थी । पता नहीं उन्होंने इस गवंई गवांर लड़के में क्या देखा कि वे मुझे बहुत मानने लगे । उन्हें मुझमें संभावनाएँ दिखती थीं ।
कहने की जरूरत नहीं कि कम से कम दिल्ली में हर बंगाली, खास तौर पर यदि वह अकादमिक हो, वामपंथी था । कई तो नक्सली भी थे । ये लोग दिल्ली कॉफी हाउस में बैठते, बीड़ी फूँकते, एक दो कप कॉफी लेते और कभी बंगला, कभी अंग्रेज़ी, कभी हिन्दी और कभी कभी तो फ्रेंच तक में घंटों आपस में बहस करते रहते । कभी कभी तो बहस बहुत गर्म हो जाती । एक दफ़ा तो मेरे सामने ही एक बुद्धिजीवी ने दूसरे का कॉलर पकड़ा था । हिन्दी के उदीयमान लेखक जिनमें अधिकांश के पास कोई काम न था, और वे भी जो कहीं इधर उधर नौकरी करते थे, दिन भर वहीं बैठे रहते । कभी काफ़्का, कभी कामू, कभी मुक्तिबोध, कभी सार्त्र, कभी फ्रांसीसी क्रांति, कभी सोवियत क्रांति - वे निरंतर बहसें करते रहते । उन दिनों धूमिल की बहुत चर्चा चल रही थी । वहीं बैठे लोग धूमिल की कविताओं का जोर जोर से पाठ करते और कभी कभी पाठ बीच में रोक कर पूँजीवादी बुर्जुवा समाज को गालियाँ निकालते ।
इसी कॉफी हाउस में एक दिन अचानक मेरी मुलाक़ात प्रोफेसर सान्याल से हुई थी ।”
८६
***
”परम्परावादी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के बावजूद मेरे दिलोदिमाग़ में वामपंथ के बिरवे ने महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन की पुस्तक - गंगा से वोल्गा तक- के परिचय से ही जन्म ले लिया था । रूसी समाजवादी सपने के लिए मेरे युवा हृदय में एक उत्कंठा, एक अकुलाहट थी । जोसेफ स्टालिन और माओ त्से तुंग मुझे दुनिया को बदलने, शोषण के ख़ात्मे और आदर्श समतावादी समाज की स्थापना के लिए धरती पर उतरे देवदूत की तरह दिखने लग गए थे । साहित्य में मेरी गम्भीर रुचि थी । मैं मुक्तिबोध और धूमिल की कविताएँ पढ़ पढ़ कर रोमांचित होता ।
पर यह संक्रमण काल था । या दूसरे शब्दों में कहो तो मेरे व्यक्तित्व के विकास का काल था । मेरी मनुवादी कुंठाएँ गई तो नहीं थीं, पर कमजोर पड़ रही थीं । कीचड़ के दामन से वामपंथ का नया ताजा फूल किसी भी वक्त खिलने को था ।
उन्हीं संक्रमण या यों कहो कि रचनात्मक विध्वंस के दिनों में जब मैं यहाँ वहाँ धूमिल की कविताएँ बांचता दिल्ली में घूम रहा था कि संयोग की बात देखो कि उस मानसूनी शाम दिल्ली के उस कॉफी हाउस में प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर लालकुंवर सान्याल की आँखों ने मेरा नोटिस लिया । देखो, मैं भले ही पक्का

मार्क्सवादी हूँ पर फिर भी मैं भाग्य की ताक़त को नकार नहीं सकता । यह भाग्य न था और क्या था ? उस मॉनसूनी शाम की उस मुलाक़ात ने मेरी जिंदगी की दशा बदली, दिशा बदली ।
हुआ यह था कि मैं उन दिनों दिल्ली में इधर उधर यूँ ही आवारा घूमता था । जनेवि में मुझे प्रवेश मिल गया था पर अभी पढ़ाई शुरु न हुई थी । वहीं मेरे नए नए दोस्त बने कश्मीरी से आए शहनवाज़ ने, जो मेरी तरह ही उभरता हुआ मार्क्सवादी था, कॉफी हाउस का हवाला दिया था ।
शहनवाज़ और मैं एक कोने में एक टेबुल पर बैठे थे । मेरे झोले में हमेशा जनवादी कविताओं की पुस्तकें रहती थीं । हम कॉफी की प्रतीक्षा कर रहे थे । मैंने झोले से धूमिल की पुस्तक - संसद से सड़क तक - निकाली और अपनी एक प्रिय कविता शहनवाज़ को पढ़ कर सुनाने लगा ।
हमारे बगल की टेबुल पर तीन लोग बैठे थे । उसी टेबुल से उठ कर कोई पचास की उम्र के वे सज्जन कुर्सी खींच कर मेरे टेबुल के पास बैठ गए । औसत क़द, हल्का मोटा शरीर, गेहुआं रंग, आँखों पर मोटा चश्मा, लाल रंग का चेक वाला कुर्ता और सफेद पायजामा, कंधे पर लटकता खादी आश्रम का झोला, होठों में फंसी करीब करीब बुझी हुई सिगरेट, चेहरे पर एक गम्भीर विचारवान भाव ।
ये प्रोफेसर लालकुंवर सान्याल थे । पर मुझे तो यह बात बाद में पता चली ।
फिर वहीं से चला वह सिलसिला जो आजतक न थमा ।"
८७
***
रक्तरंजित सर की चाय की प्याली खाली हो चली थी । उनके चेहरे पर चिर-परिचित सहजता लौट आई थी । वे बोलते गए :
"देखो, मेरे साथ एक बड़ी कठिनाई है । मैं जब मार्क्सवाद के बारे में बोलने लगता हूँ, एक अजीब सा नशा मेरे दिलोदिमाग़ पर छा जाता है, मैं भावनाओं में बह जाता हूँ, मुझे समय का ध्यान नहीं रहता । यह एक तरह की कमजोरी है जिससे हर प्रगतिशील विचारक को, हर जनवादी क्रांतिकारी को बचना चाहिए । तुम नौजवान हो, क्रांति के रास्ते पर कदम रख रहे हो, अभी से इस बात का खयाल रखो । अब देखो न, बात तो हनुमान चालीसा की थी और मैं डोलता लहराता हुआ दिल्ली कॉफी हाउस पहुँच गया ।"
८८
***
बाहर अंधेरा गिरने लग गया था । सर की बहन पिछले दरवाजे का परदा हटा कर कमरे में घुसीं । उन्होंने सामने वाले दरवाजे के पास दीवार पर लगे ट्यूब लाइट के स्विच को ऑन कर दिया । ट्यूब लाइट से एक घुटी हुई सी अजीब सी ध्वनि कोई एक मिनट तक आती जाती रही, संग संग सफेद रोशनी जलती बुझती रही, फिर अचानक फक्क से कमरे में दूधिया रोशनी फैल गई।
सर बोले :
"बहुत देर से हम बातें कर रहे हैं । तुम नौजवान तो हो पर अब शायद थक गए होगे । जनवाद के रास्ते में भी विश्राम की आवश्यकता पड़ती है । इसलिए मैं तो कहूँगा हम इस बात को आज यहीं विराम दें ।

मैं तो कहूँगा तुम भोजन भी आज यहीं करो । भोजन भी हो और मेरे परिवार से मुलाकात भी । मेरी बहन और पत्नी से तो तुम्हारी हल्की सी भेंट हो ही चुकी है, मेरी बेटी भी अब घर लौटने ही वाली होगी ।"

८९

***

हम सोफे से उठ कर डाइनिंग रूम की तरफ रुख करने ही वाले थे कि बाहर किसी स्कूटर के रुकने की आवाज आई । मैंने अनुमान लगाया शायद यह रक्तिमा हो ।

यह रक्तिमा ही थी । लम्बे क़द की दुबली पतली, लाल टॉप और नीली जीन्स में वह युवती कमरे में क्या घुसी हजार बल्ब एक ब एक जल उठे । लम्बे काले बाल क़रीने से कटे, कंधों पर झूलते, बड़ी स्वप्निल सी आँखें, तीखे पर कोमल नाक नक्श, चमकते ग़ौर मुख पर स्वेद की बूँदें, हर तरफ अभिजात्य की लालिमा । अब आप यह समझ लीजिए कि अभूतपूर्व सौंदर्य । मैं तो अवाक ही रह गया, लज्जावश मेरी नज़रें जमीन पर गड़ गईं, कभी साहस कर एक क्षण के लिए रक्तिमा पर नजर डालता पर तुरंत ही संकोचवश वहां से हटाकर आँखें आलमारी में रखी कॉमरेड स्टालिन की पुस्तक पर गाड़ देता । मेरा हीन भाव पुराने बाई के दर्द की तरह फिर उभर आया था, मेरी ज़ुबान सूख कर तालू से चिपक गई थी, कभी बोलने की कोशिश करता तो हकलाता । रक्तरंजित सर मेरी तरफ हैरत और विनोद की दृष्टि से देख रहे थे । पर रक्तिमा पर मेरे जैसे अपरिचित युवक के वहाँ होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा था । वह मेरी तरह न थी । समाज में उठती बैठती थी, किसी तरह की कोई ग्रंथि न थी । उसने तो मुझ पर नजर तक न डाली । अपने पापा को अगले दिन रूसी दूतावास में होने वाले बैले और उसमें अपनी भूमिका के बारे में विस्तार से बताने लगी ।

वह बहाव में बही जा रही थी कि पापा ने टोका :

”रक्तिमा, इनसे मिलो, यह मेरे नए छात्र हैं । यहाँ जनेवि में हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने आए हैं“ ।

रक्तिमा ने मुस्कुरा कर हाय कहा और मैंने हाथ जोड़ दिए । मेरा दिल इतनी जोर से धड़क रहा था कि मैं डर गया था । मेरा गला सूख गया था । मुझे लगा कहीं इस अनिंद्य बुद्धि और सौंदर्य की देवी के सामने मेरे फूहड़पन, मेरी मूर्खता का भेद न खुल जाय । मैंने जेब से रूमाल निकाली, माथे का पसीना पोंछा और हकलाते हुए सर से बाथरूम का रास्ता पूछा ।

९०

***

सच तो यह है कि मुझे बाथरूम की तलब बिल्कुल नहीं थी । मैं दिन में दो बार ही बाथरूम जाता हूँ । एक बार सुबह बिस्तर से उठते ही और एकबार रात को सोने के पहले । बाकी समय में मैं चाहे जितना भी चाय पिऊँ, मुझे तलब नहीं लगती ।

बात तलब की नहीं थी, बात कुछ और थी । इतनी तेज रोशनी मेरी आँखों से सही न जा रही थी । मैं अंधेरे में छुप कर लम्बी साँस लेना चाहता था, पसीना ठीक से पोंछना चाहता था, अपनी मूल अवस्था में लौटना चाहता था । मैं बस पाँच मिनट का विश्राम चाहता था, वहाँ जहां मेरे सिवा कोई न हो । कॉमरेड स्टालिन भी नहीं ।

बाथरूम में बल्ब जल रहा था । सर ने बाहर से स्विच ऑन कर दिया था । मैंने अंदर घुस कर पहले दरवाजा अंदर से ठीक से बंद किया, बाथरूम का ठीक से मुआयना कर लिया । फिर मैंने बत्ती बुझा दी । अभी पूरी तरह अंधेरा नहीं हुआ था । खिड़कियों से पीली मरियल सी बुझती हुई रोशनी आ रही थी । मुझे पेशाब लगी न थी, फिर भी बाथरूम में था इसलिए यूरिनल के सामने खड़ा रहा, पर परिणाम कुछ न निकला । मैंने टायलेट का इस्तेमाल नहीं किया था, फिर भी मैंने फ्लश चला दिया ताकि कोई शुबहा न हो । फिर मैंने हाथ धोए । पानी ठंढा था जिससे जान में जान आई । मैंने चेहरे पर भी शीतल जल छीटा और जोर जोर से दर्जन भर सांसें ली । तब जा कर मेरा दिलोदिमाग़ स्थिर हुआ । मेरे गले का सुखाड़ अब जा चुका था, नमी लौट आई थी । फिर भी एक बार मैंने जोर से खंखार कर गले को फिर ताजा किया । नाक में नेटा नहीं था, फिर भी नाक को जोर से हवा बाहर कर साफ किया । मैं कोई खतरा नहीं मोल लेना चाहता था ।

मैंने अपने दाएँ हाथ से बाईं कलाई की नाड़ी देखी । मेरी हृदयगति नब्बे के आसपास थी ।

मैंने आखिरी बार आइने में अपनी शक्ल देखी, बालों को उंगलियों से सँवारा, कमीज का कॉलर ठीक किया और एक बार फिर हल्के से गला साफ किया ।

फिर मैंने हौले से बाथरूम का दरवाजा खोला और वापस फिर ड्राइंगरूम में उसी मोढ़े पर किनारे एक तरफ सिकुड़ कर बैठ गया ।

९१

***

मैं ड्राइंगरूम में अकेला बैठा था । सर अंदर चले गए थे । थोड़ी देर में वापस आए ।

डाइनिंग रूम बगल में ही था । सर टेबुल के एक तरफ अकेली लगी कुर्सी पर बैठ गए और मैं उनके सामने । उनकी बहन ढेर सारे व्यंजन बर्तनों में लाकर टेबुल पर सजा गईं । कमरे में भुनी हुई मछली की मसालेदार गंध फैल गई । फिर पीछे के दरवाजे का परदा सरकने की आवाज आई और मां बेटी ने प्रवेश किया । मां उसी नीली साड़ी में थीं जिसमें मैंने पहले उन्हें देखा था । बालों को उन्होंने जूड़े में बांध रखा था । रक्तिमा उसी लाल कमीज और नीली जीन्स में थी, उसके बाल कंधों के नीचे दो लहरदार झूलों में झूल रहे थे - बाईं तरफ के बाल आगे की तरफ और दाईं तरफ के बाल पीछे । दोनों ने बारी बारी से मुझे हाय कहा और कुर्सियों पर अगल बगल बैठ गईं । मैडम ने शायद वातावरण हल्का करने के लिए मुझसे पूछा कि कहीं मैं शाकाहारी तो नहीं हूं । मैंने उन्हें झिझकते हुए बताया कि मैं अंडा तो ले लेता हूं, मांस मछली नहीं खाता । सर ने बीच में टोका :

"ब्राह्मण परिवार से आए हैं, मेरी तरह । पर मछली के अलावा सब्जियां भी हैं, कोफ्ता भी है -वह सब तो खा ही सकते हैं । क्या है कि इस घर में बंगालियत बहुत है, बिना मछली के बात नहीं बनती ।" ऐसा कह कर सर ने मैडम की ओर देखा और हो हो करके हंसे । शिष्टाचारवश मैंने भी मुस्कुराना उचित समझा ।
फिर बात बंगाल की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की छिड़ गई । सर ने बताया कि मैडम रवीन्द्र संगीत की गायिका हैं और रक्तिमा ने अंग्रेजी और हिन्दी के अतिरिक्त बंगला नाटकों में भी अभिनय किया है ।
भोजन स्वादिष्ट था । और अब तो वातावरण भी बौद्धिक हो चला था । सर और मैडम बार बार मुझसे यह लीजिए वह लीजिए कहते गए और मैं खाता गया । जब आइसक्रीम का नम्बर आया तब पहली मार रक्तिमा बोली । धीमा, सुशिक्षित, मधुर, अभिजात्य स्वर । मेरा दिल फिर धड़कने लगा । उसने पापा से कहा :
"पापा, कल रूसी दूतावास में मेरा बैले है, मास्को से एक ट्रूप आया है, उनके संग मेरा भी छोटा सा आइटम है । बड़े बड़े वीआईपी वहां आ रहे है, विदेश मंत्री भी रहेंगे, आमंत्रण तो इंदिरा जी को भी गया था, पर उनका आना अभी कन्फर्म नहीं हुआ है । मेरा आइटम १९१७ की बोल्शेविक क्रांति में लेनिन की भूमिका पर आधारित है । "
फिर मेरी तरफ मुखातिब हो कर रक्तिमा बोली :
" पापा मम्मी के संग आप भी आइए न ।"
मेरा दिल धक्क से रह गया ।
९२
***
पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो लगता है कि सोवियत दूतावास की अशोका होटल में अगस्ती मॉनसून की उस शाम की वह पार्टी मेरे जीवन की निर्णायक घटना रही । वह पार्टी न होती तो यह कहानी बीच में ही टूट कर बिखर जाती, यह पौधा वृक्ष न बनता, फलों फूलों से न लदता । मैं मार्क्सवादी तो हूँ पर संयोग में विश्वास करता हूँ । आप ही बताइए - मार्क्स न होते तो मार्क्सवादी होता ? लेनिन न होते तो बोल्शेविक क्रांति होती ? चेयरमैन माओ न होते तो सांस्कृतिक क्रांति होती ? और दूर क्या जाना - यहीं देख लीजिए - जवाहर न होते तो राहुल होते ?
और फेसबुक न होता तो मैं यह लिखता ?
९३
***
जमाना गया उस शाम की याद न गई । दिल्ली शहर का मद्धम मॉनसून । हल्की बूँदाबाँदी । शाम का धुँधलका और इत्र की ख़ुशबू । और इत्र की ख़ुशबू से भींगी बरसाती ठंढी हवा के झोंकों की सिहरन । या खुदा, किस का माथा न चकरा जाए ? इस लड़के की तो बात ही क्या करनी जिसका बचपन भभुआ

बनारस में नेटा पोंछते गुज़रा । ऐसी चमक, ऐसी महक, ऐसी हवाएँ - उसने तो सपना तक न देखा था । मैंने कहा न संयोग की ताक़त को कम कर न आँका जाय ।

रक्तरंजित सर ने अगले दिन मुझे शाम सात बजे उनके घर आने के लिए कहा था । साढ़े सात बजे हम सभी को उनके घर से अशोका होटल के लिए निकलना था ।

मुझे रात नींद न आई थी । सारी रात मेरा दिल धौंकनी की तरह चला । सुबह उठा तो पार्टी के लिए क्या पहनूँगा - इस चिन्ता में घुलता रहा । मेरे पास एक लाल कमीज थी और खाकी पतलून - मैंने उन्हें धोया और सुखा कर इस्त्री किया । फिर मैं शैम्पू से रगड़ रगड़ कर दो बार नहाया । तौलिए से रगड़ रगड़ कर देह को पोंछा, उसे ताजगी से भरा । उस जमाने में डिओडरेंट का चलन न था, मैंने ढेर सारा टॉल्कम पाउडर उन जगहों पर छिड़का जहां से पसीना निकलता है । मुझे पहले से पता था - मेरा पसीना बहुत बदबू करता है - इसलिए मैंने अतिरिक्त सावधानी बरती थी ।

काले जूतों को मैंने चेरी ब्लॉसम पॉलिश से पहले ही रगड़ कर चमका लिया था । ठीक से टॉल्कम पाउडर के छिड़काव के बाद मैंने लाल कमीज पहनी और खाकी पतलून के अंदर घुसेड़ा । उन दिनों तोंद न होने से बेल्ट की जरूरत नहीं पड़ती थी । कमीज के कॉलर उन दिनों के फैशन के मुताबिक़ ख़रगोश के कानों की तरह झूल रहे थे । बालों को मैंने अपने एक दोस्त से ली हुई बिलक्रीम लगा कर चिकना किया और फिर काकुल काढ़ते हुए कंघी की ।

अब मैं गवंई गँवार न रहा, बाँका मार्क्सवादी जवान हुआ ।

मैंने आइने में आखिरी बार अपना मुआयना किया, दरवाज़े पर ताला लगाया और जूते चटकाता पैदल ही प्रोफेसर रक्तरंजित पांडे के निवास की तरफ बढ़ चला ।

९४

***

क्या है कि मैं कहानी को सीधी रेखा में ले जाना चाहता हूँ । चाहता हूँ कि तेज रफ़्तार से मंज़िल पर पहुँचाऊँ, जी का जंजाल हटाऊँ । दिक्कत यह है कि कहानी अपनी मर्ज़ी की मालिक है, कुछ बोलती तो नहीं पर मेरी बात मानती नहीं है । इधर का उधर कर देती है । कभी मेरी बाईं बाँह मरोड़ देती है, कभी दाईं । कभी अचानक एक धौल जमाती है । लगता है यह कहानी नहीं है, मार्क्स का प्रेत है ।

पर कुछ भी हो, रास्ता चाहे जैसा भी घुमावदार हो, उबड़खाबड़ हो, जैसे ही मेरे दिल में झूठ बोलने की तलब उठती है, मेरा हाथ पकड़ लेती है । इसने साफ साफ संकेत दे दिया है कि जिस दिन मैं झूठ लिखूंगा, उड़ कर अपने लोक वापस चली जाएगी, फिर पकड़ में न आएगी ।

९५

***

मेरा सिर आसमानों से बातें कर रहा था और मेरे पाँव जमीन से ऊपर उठ गए थे । मुझे सड़क पर आते जाते लोग, रिक्शा और कारें - कुछ नहीं दिख रहे थे । एक बार के लिए मेरे दिल में मेरे सहपाठियों का

खयाल जरूर आया और मेरा दिल दया, सहानुभूति और जुगुप्सा के भावों से भर उठा - मामूली लोग हैं, पता नहीं इनका क्या होगा !
मैं बार बार घड़ी देख रहा था । सर ने सात बजे पहुंचने के लिए कहा था, मैं नहीं चाहता था कि मेरी तरफ से कोई हीला हवाली हो, मेरा इम्प्रेशन बिगड़े ।
शाम का हल्का धुँधलका था । हवा मंद मंद बहती थी । आसमान में कुछ सफेद, कुछ काले, कुछ हल्के, कुछ भारी बादल छाए थे । एक बार तो अचानक बिजली कौंधी और मेरा दिल धड़का । कभी अचानक पानी की एक बूंद मेरे बालों पर गिरती । पर हवा इतनी तेज न थी कि इतनी मेहनत से तैयार किया गया मेरे बालों का काकुल बिगड़े ।
जब मैं सर के निवास पहुँचा, मेरी घड़ी में ठीक सात बजने में सिर्फ तीस सेकेंड बाकी थे ।
मैंने घंटी बजाई ।

९६

***

दरवाजा क्या खुला एक बार मेरा दिल फिर से धक सा रह गया । माथे पर पसीने की बूँदें आ टपकीं, साँस तेज़ चलने लगी । जादुई इत्र की महक ने मेरे होशोहवास गुम कर दिए ।
सामने रक्तिमा खड़ी थी । आज ही कली से नवजात पुष्प में तब्दील हुए चटख लाल गुलाब की तरह खिली । गाढ़े लाल रंग की साड़ी, सफ़ेद ब्लाउज़ और ऊँची एड़ियों वाली सफेद सैंडिल । हंस से उजले कोमल गले में धवल श्वेत मोतियों की माला, कानों में झूलते नीलवर्ण कुंतल । घुटनों तक फैले लम्बे घने बंगाली केश । ललाट पर नन्हीं और नाज़ुक गोल पीली बिंदी । वह रक्तिमा न थी, स्वर्ग से उतरी अप्सरा थी । सिर्फ उसके सिर के चारों ओर halo की कमी अख़र रही थी ।
रक्तिमा के ठीक पीछे रक्तिमा की माँ खड़ी थीं । आसमानी नीली साड़ी और लाल ब्लाउज़, बालों का क़रीने से बंधा जूड़ा । माथे पर वही चिरपरिचित बड़ी गोल लाल बिंदी । हाथ में झूलता कत्थई रंग का महंगा इम्पोर्टेड हैंड बैग । सिर से पांव तक अभिजात्य की जीती जागती मूरत ।
अद्भुत दृश्य रहा । आगे अप्सरा और ठीक पीछे अप्सरा की अम्मा ।
मैं बेहोश हो कर गिरते गिरते बचा ।

९७

***

मित्रों, मैं ९७वें खंड तक पहुँच गया, पर मैंने अपना नाम न बताया । है न कितनी अजीब बात ! और उससे भी अजीब बात कि आप में से किसी ने इस धोखाधड़ी का नोटिस तक न लिया ।
बात यह है कि यह भूल न थी, जानबूझ कर की गई हरकत थी । और सच पूछिए तो मुझे इस बात की हल्की सी शर्मिंदगी भी है । दर असल इसके पीछे एक गहरी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि है । आपको तो पता ही है मैं शुरु से ही हीन भावना का मारा हूँ । मैं नहीं चाहता था कि मेरा नाम सामने आए और मेरी और भी भद्द मचे, लोगबाग मेरी खिल्ली उड़ाएं ।

पर अब बात सुधर रही है, मेरा स्टेटस बनता जा रहा है, इसलिए साहस कर के आपको बता देना ही उचित है । मेरा नाम था - बदला बिहारी सिंह । अब आप ही बताइए - यह भी कोई नाम हुआ ? ऐसे नाम वाले का समाज में क्या हाल होगा ? आप ही बताइए कुछ गलत कह रहा हूं ?
इसलिए रक्तरंजित सर की सलाह से जनेवि में मैंने अपना नाम बदल लिया : रक्तक्रांति कुमार ।
९८

***

आज यह कहानी आगे बढ़ाने का दिल न था । पर कहानियों का अपना स्वभाव है, उनका अपना दिल है, मौज है । वे मौक़ा नहीं देखतीं, आपका हाथ पकड़ लेती हैं, आपसे लिखवाती हैं, आपका उन पर वश नहीं । दरअसल कहानियाँ अपनी कहानी खुद मनमौजी मन से कहती चली जाती हैं । आपके दिल पर क्या गुज़री, न गुजरी - इसकी उन्हें परवाह नहीं ।
मैं कोई लेखक तो हूँ नहीं, गैस का हकीम हूँ, गर्मियों की दोपहर में मेरे खेत में मुँह मारती बकरियों की तरह कभी कभार इधर उधर मेड़ फाँदने की कुचेष्टा करता हूँ, इसलिए मेरी बात का भरोसा क्या ? मुझे ऐसा लगा सो मैंने कह दिया । सच झूठ - अब आप जानिए ।
बहरहाल, रूसी दूतावास की गाड़ी बाहर खड़ी थी । शायद कोई टैक्सी थी जो वहाँ से भेजी गई थी । मैं ड्राइवर के बगल में बैठा और सर, मैडम और रक्तिमा पीछे की सीटों पर ।
गाड़ी अशोका होटल की तरफ चल पड़ी । मेरी निगाहें भले ही सामने देख रही थीं, पर मेरा दिलोदिमाग़ किसी और लोक में था जहां न कोई सड़क थी, न कोई गाड़ी । वहाँ बस तूफानी हवाओं का इत्र की ख़ुशबुओं से लदा बवंडर था जिसमें मैं लहरा रहा था - कभी आसमान में उछलता, कभी अचानक धड़ाम से धरती पर गिरता । भाषा में मेरे हालात को बयान करने की ताक़त शायद मिर्जा गालिब में हो तो हो, मुझमें तो नहीं है । देह की स्थिति से मैं बेख़बर सा था पर हल्की फुल्की स्मृति है । मेरा हलक सूख गया था । मेरा दिल धाँय धाँय कर रहा था और मेरा माथा पसीने से लथपथ था । मुझे यह भी ध्यान है कि अचानक मुझे इस चिंता ने घेरा था कि कहीं मेरे पसीने की बदबू बुरी तरह फैल न गई हो ।
इसी बदहवासी की हालत में कब अशोका होटल आ गया - मुझे पता न चला ।
९९

***

आप मेरी बात मानिए - इसके पहले मैंने कभी पाँचसितारा होटल न देखा था । पर मैंने तो संयोग के बारे में पहले ही आपको बता दिया था - संयोग जो न कराए । मुझे तुरंत विश्वास हो गया कि सर्वहारा के अधिनायकवाद का मार्ग इन्हीं वीथियों से होता हुआ गुज़रेगा ।
मेरी आँखें चौंधियां गईं । हमारी गाड़ी अशोका होटल के भव्य पोर्च में उतरी । अब आप यह समझ लीजिए कि जितना बड़ा मेरा गाँव, उसका आधा तो पोर्च । झिलमिल झिलमिल रोशनी में झिलमिलाता । आसमान सी ऊंची सीलिंग, फ़ुटबॉल पिच जितना बड़ा प्रवेश द्वार । लाल रंग की वर्दी में सजे एक सजीले संतरी ने कार का दरवाजा खोला और झुक कर मुझे सैल्यूट किया । मैं तो हक्का बक्का रह गया । इसके पहले

किसी ने कभी मुझे सैल्यूट न किया था । मैं जवाबी सैल्यूट मारने ही वाला था कि मेरी छठी इन्द्री ने मुझे सावधान किया और मेरा दायां हाथ पतलून की जेब से निकलते निकलते रुक गया वरना पहुँचते ही मेरी भद्द पिटने वाली थी ।

मैं कार से उतर कर बाहर खड़ा हुआ । मैं इस संकोच में था कि अब मैं क्या करूँ । पाँचसितारा में आदमी को किस तरह व्यवहार करना चाहिए - इसका प्रशिक्षण मुझे कहीं कायदे से मिला न था । मैं एक क्षण वहीं खड़ा रहा । कार का पिछला दरवाजा खुला तो मेरी जान में जान आई । अब सर, मैडम और रक्तिमा भी बाहर आ गए थे । मैंने राहत की साँस ली और मन ही मन तय कर लिया कि मुझे बस आँख मूँद कर पीछे पीछे चलना है - इसी में मेरी भलाई है। । मैं अपनी वेशभूषा को लेकर चिंतित था - पता नहीं वातावरण के अनुकूल हो न हो । पर अब हो ही क्या सकता था । मैंने माथे का पसीना पोंछा और धीरे से बहुत संभाल कर एक उँगली से बालों का काकुल चेक किया ।

मुझे अच्छी तरह पता है मेरी बात पढ़ कर आप हंसते होंगे, मेरा मजाक उड़ाते होंगे, आजकल बात बात में मजाक उड़ाने की रीत चल पड़ी है, पर दिल पर हाथ रख कर बताइए आप वहां होते तो क्या करते ।

१००

***

सच पूछिए तो आपकी तरह ही मैं भी इस कहानी से आजिज़ आ चुका हूँ । अब देखिए न सौंवां खंड आ पहुँचा और कमबख्त कहानी ने अभी आधा रास्ता तक न नापा । असली बातों तक तो अभी पहुँची ही नहीं ।

बहरहाल मैं सर, मैडम और रक्तिमा के पीछे उस विशाल प्रवेश द्वार से गुज़रा । देखता क्या हूँ कि धुसते ही ठंढी ताज़ी हवा का झोंका आया । बाहर इतनी मुसी हुई पसीनेदार गर्मी और यहाँ ऐसी प्राणदायिनी ताज़ी ठंढी हवा ! मेरा मन तुरंत प्रफुल्लित हुआ और कमीज से पसीने की बदबू निकलने की चिंता भी कुछ कम हुई । पर मैं समझ नहीं पाया कि यह ताज़ी हवा आ कहाँ से रही है ? सिर उठा कर ऊपर देखा तो समझ में आया कि हवा सीलिंग में से आकर चारों तरफ फैली जा रही है । मैंने अनुमान लगाया कि हो न हो यह वातानुकूलन का चमत्कार होगा । एक बार नज़र फिर ऊपर की तो झाड़फ़ानूस नजर आए । एक नहीं, दर्जनों, क़तार में । मुझे याद आया कि ऐसे झाड़फ़ानूस मैंने अमिताभ की एक फिल्म में देखे थे जिसमें परवीन बॉबी अमिताभ के गले में बाँहें डाले डांस कर रही थी ।

फर्श की ओर नजर डाली तो दंग रह गया । हर तरफ फूलों की डिज़ाइन वाली गहरे लाल रंग की मोटी कालीन बिछी थी । ऐसी कि आदमी कायदे से ध्यान न दे तो पैर उसमें धँस जायं और एड़ियों में मोच आने का खतरा पैदा हो जाय ।

हम रिसेप्शन पर पहुँचे । वहाँ नीली साड़ी और सफेद स्लीवलेस ब्लाउज पहने हल्के श्याम वर्ग की एक कमनीयवदना सुंदरी खड़ी थी । उसकी आँखें बड़ी बड़ी और स्वप्निल थीं जैसे कि वह अभी अभी सो कर उठी हो या किसी हल्के मासूम नशे के सुरूर में डूबी हो । उसके घने काले बालों में रजनीगंधा के सफेद फूलों की मालाएँ गुथी थीं, कानों में पीले कर्णफूल चमक रहे थे, गले में मोतियों का हार दमक रहा था ।

सच बताता हूँ मैंने ऐसी स्त्री पहले कभी न देखी थी । मैंने पहले देखी हुई फ़िल्मों के आधार पर अनुमान लगाया कि यह कन्या दक्षिण भारतीय रही होगी । उसने अत्यंत मधुर स्वर में सर से कुछ पूछा और मुस्कुराते हुए बाईं तरफ जाने के लिए इशारा किया । फिर पश्चिमी लिबास में चमकती एक दूसरी श्वेतवर्णा सुंदरी आई जिसकी आँखें नीली और बाल सुनहरे थे, उसने रक्तिमा का हाथ प्यार से पकड़ा और हमें उस ओर ले गई जहां सोवियत दूतावास का कार्यक्रम था । उसकी चाल में गहन गतिमान अभिजात्य था ।
हर तरफ एक उत्सव का वातावरण था । लोग चमक रहे थे । स्त्रियाँ, पुरुष, कर्मचारी, अतिथि ।
मुझे लगा मैं इन्द्रलोक में आ गया । जिधर मेरी नजर जाती मुझे अप्सराएँ दिखतीं । कभी मैं नीली आँखों वाली के प्रेम में डूबता कि तभी मेरी नजर दूसरे कोने में किसी से मधुर बातों में लीन मुस्कुराती हुई पीली साड़ी में सजी काली पुतलियों वाली सुंदरी पर पड़ती और फिर मैं नीली आँखों वाली को भूल कर काली आँखों वाली बालिका के प्रेम में पड़ जाता ।
लब्बोलुबाब यह कि मेरा हाल कुछ वैसा ही था जैसा बस्तर के घने जंगलों में रहने वाले उस आदिवासी युवा का रहा होगा जिसने कभी जिंदगी में शहर न देखा था, रेल और बिजली से जिसका सामना न था और जिसे स्वीडन वालों ने एक दिन अचानक स्टॉकहोम की गलियों में ला कर छोड़ दिया था ।
अब मुझे पक्का विश्वास हो गया कि असली समाजवाद इसी रास्ते से आएगा ।

१०१

***

नीली आँखों और सुनहरे बालों वाली बाला हमें उस हॉल में ले गई जहां सोवियत दूतावास का कार्यक्रम था । एक बहुत बड़े दरवाजे से हमने हॉल में प्रवेश किया । द्वार पर कई सजे धजे युवा स्त्री पुरुष आगंतुकों का स्वागत करने के लिए खड़े थे । इनमें से कुछ भारतीय थे कुछ रूसी ।
हॉल के अंदर प्रवेश द्वार के ठीक सामने दीवार के पास एक बड़ा सा स्टेज सजा था जिस पर मखमली लाल पर्दा गिरा था । मैंने अनुमान लगाया कि शायद इसी स्टेज पर बैले नृत्य होगा । स्टेज के सामने एक छोटा सा टेबुल रखा था जिसके पास दो कुर्सियाँ रखी थीं ।
अतिथि अभी आ रहे थे । जो आ गए थे, हॉल के बाएँ कोने में खड़े आपस में गपशप कर रहे थे । बाला ने हमें वहीं खड़े रहने के लिए आदर सहित कहा और झुक कर अभिवादन कर वापस दूसरे अतिथियों का स्वागत करने चली गई । वहाँ कुछ कुर्सियाँ भी लगी थीं जहां कुछ उम्र वाले अतिथि बैठे थे । श्वेत कमीज और लाल पतलून और लाल टाई में सजे युवा और मिलते ही रंग के परिधानों में सजी बालाएँ धीरे से कभी कभी उधर कभी इस अतिथि के पास कभी उस अतिथि के पास हाथ में ट्रे लिए हुए जातीं और अतिथि से लेने के लिए अनुनय करतीं । ट्टेयों में भिन्न भिन्न प्रकार के व्यंजन थे और भाँति भाँति की मदिराओं की बोतलें थीं जिन्हें सुदर्शन युवा और बालाएं ढालते और कलात्मक तरीके से आपके हाथों में थमाते । सब कुछ बैले की तरह सुदर्शन और कलात्मक था ।
अचानक रक्तिमा मेरी तरफ मुड़ी और फुसफुसाते हुए कोने में बैठे एक अधेड़ पुरुष की ओर इशारा किया - वो देखिए, फ़्रांसीसी राजदूत ।

१०२

***

अचानक कोने में खड़ी एक अनिंद्य सुंदरी पर मेरी नजर पड़ी । दुबली पतली गोरी काया पर उसने सोने के रंग की पीली मैक्सी पहन रखी थी जिस पर जड़े लाल गोटे रोशनी में झिलमिल करते थे, उसके क़रीने से कटे काले बाल कंधों तक झूल रहे थे, उसकी आँखें हल्की भूरी थीं, गले में मोतियों की माला थी और हाथ में शैम्पेन की ग्लास थी । मैंने पहचान लिया - यह तो परवीन बॉबी थी। वही परवीन बॉबी जो उस फिल्म में अमिताभ के संग कैबरे कर रही थी । मेरा माथा चकरा गया ।

तभी मेरी नजर दरवाजे की तरफ गई, देखता क्या हूँ कि अमिताभ बच्चन खुदै चले आ रहे हैं । दुबले और इतने लम्बे तीन पीस सूट और बो टाई में अमिताभ का भव्य व्यक्तित्व । उन्हें देखते ही कोने में खड़े लोगों की भीड़ में से कुछ बालाएँ तुरंत अमिताभ की तरफ भागीं और ऑटोग्राफ़ मांगने लग गईं ।

सर ने मुझे बताया कि कोने में कुर्सी पर बैठे जो अधेड़ सज्जन थे, वे धीरूभाई अम्बानी थे । उनके टेबुल पर संतरे का रस रखा हुआ था । अग़ल बगल नजर गई तो मैंने कई कैबिनेट मंत्रियों को वहीं बैठे देखा । वे सब कोई न कोई ड्रिंक हाथ में लिए आपस में बातें करते । शायद कभी कोई गुप्त बात करनी होती तो एक मंत्री झुक कर दूसरे मंत्री के कान के पास जा कर कुछ फुसफुसाता और फिर दोनों के चेहरों पर रहस्यमयी मुस्कुराहट फैल जाती ।

अमिताभ ने बाएँ हाथ में शैम्पेन की एक छोटी गिलास ली और धीरे धीरे परवीन की करफ बढ़े । दोनों के चेहरे पर चौड़ी मुस्कुराहट बिखर गई । फिर अमिताभ ने झुक कर परवीन के बाएँ गाल को किस किया और उन्होंने उस तरह का संक्षिप्त और सुसंस्कृत आलिंगन किया जिसका, जैसा कि मुझे बाद में पता चला, सभ्य समाज में करने का प्रावधान है ।

१०३

***

वह हॉल झिलमिल रोशनी में नई दुल्हन की तरह सजा था । पीठिका में कोई मधुर पश्चिमी धुन बज रही थी । हॉल के कोनों में लोग इकट्ठे हुए गप कर रहे थे, कुछ लोग कुर्सियों पर बैठ गए थे, कुछ इधर उधर हॉल में निरुद्देश्य से तैर से रहे थे । इनमें यूरोपीय थे और भारतीय भी । कुछ यूरोपीय सुंदरियाँ भारतीय परिधान में सजी धजी अपनी छटा बिखेर रही थीं तो कई भारतीय कन्याएँ और उनकी माताएँ पश्चिमी परिधान में चमक रही थीं । पुरुषों में कुछ ने चमकते रंगीन कुर्ते और पायजामे पहन रखे थे, उनके गलों में कीमती रंग बिरंगे दुपट्टे झूल रहे थे । मंत्री लोग खद्दर के कुर्ते पायजामे में थे, कुछ ने शेरवानी पहन रखी थी, कुछ ने नेहरू सदरियां पहनी हुई थीं । एक दो के जैकेट की जेबों में गुलाबी गुलाब के फूल खोंसे हुए थे ।

होटल के परिधान में सजे सुंदरियां और सुंदर युवक इधर से उधर फुर्ती से अतिथियों के पास जाते और उनसे ड्रिंक लेने के लिए आग्रह करते । उनके मुखड़ों पर स्थायी मुस्कान बिखरी होती जिसकी छटा देखते ही बनती । किन्हीं दूसरे परिचारकों/ परिचारिकाओं के हाथों में थाल थे जिनमें भाँति भाँति के व्यंजन सजे

थे । थालों में सींकें थीं जिन्हें व्यंजन में गड़ा कर थाल से उठाने और मुँह में डालने की प्रथा थी । वहीं मैंने पहली बार ऑलिव देखा । तरह तरह के ऑलिव - काले, हरे, कई मसाले से भरे । समोसे भी थे, ड्रम स्टिक भी । मांसाहारियों के लिए झींगा भी । पेय द्रव्यों में नारियल, संतरे, अनानास, आम के रस, सब रसों के कॉकटेल । वोदका, जिन, व्हिस्की, तरह तरह तरह की वाइनें ।
मेरा तो माथा ही चकरा गया । मैं कभी सर का मुँह ताकता, कभी मैडम का, कभी रक्तिमा का । तभी अचानक हॉल के दूसरे कोने से दो स्त्रियाँ - एक प्रौढ़ा और दूसरी युवा - हमारी तरफ तेजी से बढ़ीं । प्रौढ़ा ने उस तरह का परिधान पहन रखा था जैसा विदेशी फ़िल्मों में पार्टियों में ग्लैमरस स्त्रियाँ पहनती हैं । खुला हुआ गला, खुले हुए कंधे, डोलती हुई अनावृत्त बाँहें, नीला लम्बा ड्रेस जिसमें चाँदी के तारे से जड़े रत्न से चमकते थे, पैरों में ऊँची एड़ी की सैंडिल, लम्बे काले बाल लहरदार जूड़े में क़रीने से बँधे । गौर वर्ण, थोड़ी थुलथुल देह । नवयौवना श्यामवर्णा अपूर्व सुंदरी थी । श्वेत साड़ी और बिना बाँहों वाली लाल ब्लाउज में, लम्बे बालों के ऊपर गुलदाउदी के फूलों की माला सी गुँधी, गले में नन्हें नन्हें मोतियों की माला । दोनों हाय कहती, मुस्कुराहटों की छटा बिखेरती पास आईं और उन्होंने बारी बारी सर, मैडम, रक्तिमा को आलिंगन किया और रिवाज के मुताबिक़ हल्के से चूमा । मैं चुपचाप आँखें फाड़ फाड़ कर देखता रहा ।
मैं भयभीत था कि यदि स्त्रियों ने मेरा आलिंगन किया या चूमा तो मेरा क्या होगा या कि मुझे क्या करना होगा । वातानुकूलित हॉल में मेरे माथे पर पसीने की बूंदें छलक आईं । संयोग से मेरी पतलून की जेब में रूमाल था । मैंने पसीना पोंछा और संतरे के रस का एक घूंट पीकर अपना हलक तर किया ।
१०४
***
नवयौवना श्यामल सुंदरी और गौरवर्णा ग्लैमरस प्रौढ़ा समाज कल्याण, नारी स्वतंत्रता, संयुक्त राष्ट्र संघ में बिताए दिनों और रोम और लंदन के सामाजिक परिदृश्य के बारे में मैडम और रक्तिमा से बातें करने लगीं । उनकी अधिकांश बातें ऊँची अंग्रेज़ी में होतीं जो मेरे पल्ले न पड़तीं । सर ने ग़ौर किया कि मैं अलग थलग सा पड़ा जा रहा था । सर ने वोदका की एक गिलास हाथ में ली, स्त्रियों से क्षमा माँगी और मेरा हाथ पकड़ कर कोने में ले गए जहां दो खाली कुर्सियाँ थीं ।
सर ने कहा :
“तुम्हें तो पता है मैं मार्क्सवादी हूँ । बुर्जुवा समाज में मेरा दम घुटता है । मेरा बस चले तो मैं बस्तर में आदिवासियों के संग रहूँ, उनके संघर्ष में हिस्सा लूँ । वैसे आज की यह सभा समाजवादी ही है, रूसी दूतावास का सांस्कृतिक कार्यक्रम है । पर बुर्जुवा लोग हर जगह पैठ गए हैं, उनसे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया है । न चाहते हुए भी एडजस्ट करना पड़ता है ।
तुमने इन स्त्रियों को देखा । ये प्रसिद्ध समाजसेवी हैं । दिल्ली में इनकी स्वयंसेवी संस्था है जो मुख्यत: ग्रामीण स्त्रियों में स्त्री स्वतंत्रता की अलख जगाने में लगी है । तुमको तो पता है इन कामों में कितना पैसा खर्च होता है । सारी दुनिया से ये बहनें पैसा उठाती हैं । समाज हित के लिए ये जी जान से लगी

हैं । दुनिया भर का दौरा करती हैं - कभी न्यू यॉर्क तो कभी लंदन, कभी मनीला तो कभी ढाका । बहुत मेहनत का काम है । मिल गईं तो उनसे स्नेहपूर्ण व्यवहार हमारा कर्तव्य है । है कि नहीं ?
हां, एक और बात । मैं इतना व्यस्त रहता हूँ कि कोई बात ठीक से पूरी तरह स्पष्ट करने का मौक़ा कम मिलता है । देखते तो हो, कभी यह बैठक तो यह गोष्ठी, कभी यह व्याख्यान तो कभी वह मंथन । अब थोड़ी देर के लिए हम अकेले में हैं, रुधिरवर्णा और रक्तिमा बात करने में मशगूल हैं, तो यही वह अवसर है जब मैं हनुमान चालीसा वाली बात का खुलासा कर दूँ । तुम मार्क्सवादी हो, आदर्शवादी हो, युवा हो । मैं नहीं चाहता तुम्हारे दिमाग में वैचारिक कन्फ्यूजन का बीज पड़े ।
यह नारंगी और संतरे के जूस का चक्कर छोड़ो, थोड़ी सी वोदका लो तो मैं विस्तार से बात बताऊँ ।"
उन्होंने इशारे से दूर खड़ी एक परिचारिका से वोदका की एक ग्लास लाने के लिए कहा ।
१०५
***
एक श्यामवर्णा परिचारिका मुस्कुराती हुई आई और एक ग्लास में वोदका ढार कर गई । मैं हिचकिचाया, मैंने पहले कभी शराब न पी थी । सर मेरी हिचकिचाहट भाँप गए । उन्होंने समझाया :
"देखो, वोदका देख कर तुम्हारा हिचकिचाना स्वाभाविक है । मैं स्वयं इस अनुभव से गुज़र चुका हूँ । पर ध्यान रहे , हम प्रगतिशील लोग हैं, हमें अपनी वर्जनाओं के जाल में जकड़ कर बंद नहीं होना चाहिए । पुराने सड़े गले संस्कारों को जितनी जल्दी हम निर्ममता से कंधों से उतार दें, बौद्धिक विकास का रास्ता वैसे ही हमारे लिए खुलता जाएगा ।
एक बात और । वोदका और मदिराओं की भाँति नहीं है । बल्कि यह तो मदिरा है ही नहीं । यह तो समाजवादी समाज से, सर्वहारा के संघर्ष से हमारी आत्मीयता की प्रतीक है । हमें इसका हृदय की गहराइयों से स्वागत करना चाहिए । तुम वोदका लोगे तो शायद तुम कॉमरेड लेनिन और स्टालिन की आंतरिक क्रांतिकारी दशाओं से रूबरू हो सकोगे । तुम्हें पता नहीं पता है या नहीं, कॉमरेड लेनिन बिना वोदका लिए कभी तक़रीर नहीं करते थे । कॉमरेड स्टालिन भी बिना वोदका के कभी किसी बैठक में नहीं बैठे ।
इस लिए तुम वोदका धीरे धीरे लो । जड़ता से बाहर निकलो, प्रगति की खुली हवा में साँस लो । सुनो, थोड़ी बर्फ डाल लो ।
थोड़ा इस का रस लो, दिलोदिमाग़ में जमे परम्मपराओं के मकड़जाल साफ करो तो मैं फिर तुम्हें हनुमान चालीसा वाली बात बताऊँ । "
१०६
***
सर ने श्यामवर्णा परिचारिका को फिर इशारे से बुलाया और बर्फ के टुकड़े और नींबू के क़तरे लाने के लिए कहा । थोड़ी देर में वह फिर मुस्कुराती हुई हमारे पास आई और उसने हमारी गिलासों में टोंगे से बर्फ के चौकोर टुकड़े पकड़ कर डाल दिए ।

सर ने कहा : " नीबू के कतरे डाल लो, कड़वाहट थोड़ी कम हो जाएगी । नए आदमी हो, ठीक रहेगा । फिर जब अभ्यास हो जाएगा, शायद जरूरत न रहे । मैं नींबू नहीं डालता ।"
परिचारिका ने क़रीने से एक चम्मच से नींबू का कतरा उठाया और मेरी गिलास में एक किनारे धीरे से बहुत नफ़ासत से गिरा दिया ।
मैंने डरते डरते अंदर ही अंदर बजरंग बली का स्मरण करते हुए, गिलास उठाया और मुँह से लगाया । मैंने हिम्मत करके मुँह में बस एक घूँट लिया । ऐसा कड़वा स्वाद कभी मैंने न चखा था । मेरी जीभ पर, मेरे मुँह में, मेरे चेहरे पर एक अजीब तरह की कड़वाहट छा गई । फिर तुरंत मुझे ध्यान आया कि मैं एक सांस्कृतिक आयोजन में बैठा हूँ, मेरे व्यवहार से कहीं कोई ऐसी बात न परिलक्षित हो जिससे मर्यादा का उल्लंघन हो, कहीं कोई तनाव फैले । इसलिए, मैंने मेहनत करके अपने चेहरे का हाव-भाव ठीक किया, बल्कि मुस्कुराहट भी ले आया । मेरी मुस्कुराहट वैसी तो न थी जैसी कभी कभी मेरे चेहरे पर उतरती थी । इस मुस्कुराहट में मेरा चेहरा थोड़ा सा गडबड़ाया था । मैंने आँखें मूँद ली थीं और होंठ पूरी तरह फैला दिए थे । बल्कि मैंने हँसने का भ्रम देने के लिए अपने गले से दबी हुई हो हो की ध्वनि भी निकाली ।
सर मेरा मुँह ताकने लगे ।
१०७
***
मैंने करते करते वोदका की गिलास ख़त्म कर दी थी । स्टेज के नीचे के टेबुल के पास लगी कुर्सियों पर कुछ लोग आ कर बैठ गए थे । स्टेज पर गिरा परदा भी शायद उठने ही वाला था ।
मैं उठ कर शौचालय चला गया । वहाँ मैंने खुल कर फेफड़ों में हवा भरी, खंखार खंखार कर गला साफ कर लिया, ठंढे पानी से मुँह धोया । अब मेरी जान में जान आ गई थी ।
जब मैं वापस अपनी जगह पर लौटा तो देखा कि सर तो वहीं बैठे थे, मैडम भी वहीं पास ही बैठी थीं पर रक्तिमा न थी । मैंने अनुमान लगाया कि वह स्टेज के पीछे चली गयी होगी, बैले में अपनी भूमिका के लिए तैयार हो रही होगी ।
एक रूसी सज्जन टेबुल के पास खड़े हो कर माइक से बोलने लगे । वे रूसी राजदूत थे । अंग्रेज़ी में उन्होंने सबसे पहले भारत के सांस्कृतिक और शिक्षा मंत्रियों का, जो वहाँ उपस्थित थे, अभिवादन किया; आदरणीया इंदिरा जी के वहाँ कार्यक्रम में न आ पाने पर दुख जताया पर इंदिरा जी का प्रतिनिधित्व करने के लिए आदरणीय संजय गांधी जी का आभार व्यक्त किया । उन्होंने मोतीलाल नेहरू से ले कर संजय गांधी तक भारत के नेताओं में कला, विशेष कर सर्वहारा कला में रुचि और उसके संवर्धन के लिए किए गए प्रयासों की भूरि भूरि प्रशंसा की । उन्होंने भारत और सोवियत संघ की मिलती जुलती संस्कृतियों, उनकी आपसी मित्रता, सहयोग की पुरानी परम्पराओं का हवाला दिया । उन्होंने बताया कि बोल्शेविक क्रांति के बाद सोवियत संघ में कलाओं का पुनर्जन्म हुआ है । वे सामंतों के दरबारों से निकल कर सर्वहारा के आँगन में उतर आई हैं । अब हर कला का एक स्पष्ट उद्देश्य है - प्रगतिशील जनवादी चेतना का विस्तार और बुर्जुवा जनविरोधी शोषण पर आधारित पुरानी संस्कृति के असली स्वरूप को उघाड़ना ।

समाजवाद के नए सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना । नृत्य वह जो खेत और फ़ैक्टरी से दिन भर काम कर लौटा थका हारा सर्वहारा देखे, उसमें भाग ले, अपनी चेतना को जागृत करे ताकि भविष्य में एक समृद्ध वर्गहीन समतामूलक सुसंस्कृत समाज की स्थापना में मदद मिले । ऐसा करना ही मार्क्स, लेनिन और कॉमरेड स्टालिन की आत्माओं को सच्ची श्रद्धांजलि देना होगा ।
फिर उन्होंने उस संध्या के कार्यक्रम का संक्षिप्त विवरण दिया । उन्होंने बताया कि बैले पुराना रूसी नृत्य है जिसमें अक्सर क्लासिकी कथाओं का प्रकटन किया जाता है जैसे रोमियो जूलियट, स्वान लेक आदि । पर आज के कार्यक्रम का विषय आधुनिक है - बोल्शेविक क्रांति के बारे में । तो यह सिर्फ शुद्ध बैले न हो कर नृत्य नाटिका है जिसमें भारत और रूस दोनों सगे भाइयों जैसे देशों के कलाकार एक अनूठे तरीके से बिना बोले क्रांति की कहानी कहेंगे ।
उन्होंने दर्शकों से दिल थामने का अनुरोध किया ।
१०८
***
रूसी राजदूत जब बोल कर बैठ गए तो भारत के संस्कृति मंत्री ने माइक संभाला । खाते पीते दिखते मंत्री महोदय की हल्की सी तोंद निकली थी । उन्होंने खद्दर का कुर्ता और चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था । कुर्ते पर लाल सदरी और सिर पर सफेद टोपी सजाए मंत्री महोदय शालीन भव्यता की मूर्ति प्रतीत होते थे ।
उन्होंने मंच पर बैठे सभी गणमान्य अतिथियों का अभिवादन किया । उन्होंने भी इंदिरा जी के न आ पाने पर खेद और संजय गांधी जी की उपस्थिति पर हर्ष जताया ।
रूसी राजदूत की तरह ही उन्होंने भी कला की नई जनोन्मुखी परिभाषा और उसकी क्रांतिचेता भूमिका पर बल दिया । इस विषय में उन्होंने राष्ट्रनिर्माता आदरणीय नेहरू जी और जननेत्री इंदिरा जी की महती भूमिकाओं का विशेष उल्लेख किया । उन्होंने इस गौरवशाली परम्परा को और आगे ले जाने के लिए युवा जननायक संजय जी के प्रति राष्ट्र की कृतज्ञता ज्ञापित की ।
मंत्री महोदय ने बताया कि रूस की तरह ही भारत में पूँजीवादी शोषक शक्तियाँ षडयंत्रलीन थीं, अमेरिकी एजेंसियाँ समाजवादी शक्तियों को तोड़ने में लगी थीं । इसी कारण इंदिरा जी को फासीवाद से देश को बचाने और जनतंत्र और समाजवाद की रक्षा के लिए आपातकाल लगाना पड़ा । उनके इस वक्तव्य पर हॉल में हर्षोल्लास छाया, लोगों ने तालियाँ बजाईं । सर और मैडम तो बाकी लोगों के थपोड़ी पीटने के बाद भी तालियाँ बजाते चले गए । दूसरे लोग उनका मुँह ताकने लगे ।
मंत्री महोदय ने रूस और भारत की सांस्कृतिक समानताओं पर बल दिया । उन्होंने बताया संस्कृति ही वह चीज है जो दिलों को जोड़ती है । सर्वहारा संस्कृति का पौधा तो अब सोवियत संघ में विशाल वृक्ष की करह हवा में झूम रहा है, अपनी छटा बिखेर रहा है । पर भारत में समाजवादी सर्वहारा संस्कृति का पौधा अभी नाजुक है जिसे खादपानी की, संरक्षण और प्रवर्धन की आवश्यकता है । उन्होंने उम्मीद जताई कि ऐसे प्रगतिशील सांस्कृतिक कार्यक्रम नई चेतना, नई ऊर्जा का विस्तार करेंगे और फिर वह दिन बहुत दूर

न होगा जब भारत में भी रूस की तरह ही बोल्शेविक क्रांति होगी, सच्चे समाजवादी समाज की स्थापना होगी । ऐसा कह कर उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया ।
हॉल एक बार फिर से तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा । स्टेज पर गिरा लाल पर्दा हौले हौले उठने लगा और स्टेज की पीछे की दीवारों पर लगाई गई चार तस्वीरों पर लाल रोशनी चमक उठी ।
१०९

***

यह कहानी चमकते दिनों की कहानी है । तब हवा में ताजगी थी, आंखों में संसार को देखने की ललक थी, भविष्य के सपने थे, दुनिया को बदल डालो का जज़्बा था । समाजवाद के ख़ूबसूरत संसार के उदय की प्रतीक्षा थी । समतामूलक समाज के हसीन नज़ारे थे । वही नज़ारे जो अब ताजा फूल की तरह रूस और चीन में खिले थे ।
मंच पर हल्की गुलाबी रोशनी मद्धिम मद्धिम उठी और हमारे सामने चार बड़े सुंदर चित्र उभरे । यही वे जननायक थे जिनके दिखाए पथ पर चल कर हमें स्वर्ग जैसे समाज तक पहुँचना था । मैं बुरी तरह भावुक हो उठा ।
मंच पर सबसे बाईं तरफ लेनिन की क्रांतिकारी तस्वीर थी । युवा लेनिन - क्रांतिचेतना से सराबोर युवा लेनिन । उनके ठीक बगल में नेहरू जी की तस्वीर - काली शेरवानी और सफेद टोपी धारण किए हुए नेहरू जी का काव्यात्मक चेहरा । चेहरे पर मंद स्मित और शेरवानी की जेब में सदा की तरह खोंसा हुआ गुलाब का लाल फूल । नेहरू जी की बगल में हमारी अपनी प्रधानमंत्री प्रियदर्शिनी इंदिरा गांधी । इंदिरा जी का ममतामय युवा मुखमंडल । आँखों में अभिजात्य, संवेदना और बौद्धिकता की चमक । बॉब कट काले बालों में सामने बाएँ की तरफ ललाट के ठीक ऊपर सफेद बालों का एक बारीक गुच्छा । गले में रुद्राक्ष की माला । जैसे कि राजा रवि वर्मा का कोई चित्र । दृढ़ता, विद्वता, शुचिता, संवेदना का संगम । चौथी तस्वीर जो बिल्कुल दाईं तरफ लगी थी, उसमें किसी मनोहारी प्रौढ़ पुरुष का चेहरा था । सुगढ़ व्यक्तित्व, अधपकी क़रीने से कटी गुच्छैल मूंछें, आँखों में मंद मुस्कान, आत्मविश्वास ओर पोर से टप टप टपकता । मैंने अनुमान लगाया - यह शायद कॉमरेड स्टालिन की तस्वीर थी ।
यह भारत सोवियत संघ की दिलोजान मुहब्बत का वक्त था । हम एक दूसरे पर जान छिड़कते थे । स्टालिन के बाद राज कपूर रूस के सबसे चहेते व्यक्तित्व थे । लेनिन और स्टालिन हमारे अभिभावक थे, हमारे प्रेरणा स्रोत थे ।
११०

***

सुधी पाठकों से मेरी विनती है कि वे अपने हृदयों में संवेदना के बल्ब जलाएँ, मेरा मजाक न उड़ाएँ, मेरी दशा को सहानुभूति की आँख से देखें । देखिए, मैं भले ही करते करते अब जनेवि का विद्यार्थी था, अपने आप को हल्का फुल्का बुद्धिजीवी भी समझने लग गया था पर था तो मैं गवंई गँवार ही । ऊँचे सम्भ्रांत समाज का मुझे बहुत ज्ञान न था । मैंने कभी कल्पना तक न की थी कि एक दिन वह भी आएगा जब

मैं अशोका होटल में सोवियत दूतावास के तत्वावधान में हो रहा बैले देखूँगा । सच बताऊँ मुझे तो ठीक से पता भी नहीं था कि बैले होता क्या है । बस एक बार एक रूसी कथा में यह शब्द देखा था ।
बाद में मुझे मालूम हुआ कि यह शुद्ध बैले न था, भारत सोवियत सांस्कृतिक संगठन द्वारा आयोजित नृत्य नाटिका थी जिसमें बोल्शेविक क्रांति का चित्रण था ।
पर्दा उठ चुका था । मद्धिम लाल रोशनी में नेहरू जी, इंदिरा जी, कॉमरेड लेनिन और स्टालिन की तस्वीरें पीठिका में चमकती थीं । हल्का वाद्य संगीत बजना शुरु हुआ । राजा रजवाड़े की वेशभूषा में एक अधेड़ रूसी घोड़े पर चढ़ा आया । उसके सिर पर मुकुट था, हाथों में तलवार थी जिसे वह कभी कभार भांजता । उसके चेहरे पर शाही नूर था । यह जार था । उसके क़दमों तले जमीन पर भूखे नंगे बच्चे और उनकी माँएं लोटती थीं । उनके बदन चिथड़ों से ढँके थे, उनके पाँवों में जूते न थे, उनके बाल धूल में सने थे, उनके चेहरे सूखे हुए थे । वे भूख से बिलबिला रहे थे, सम्राट से रोटी माँग रहे थे । सम्राट ने उन्हें गुस्से और हिक़ारत की नजर से देखा और चाबुक फटकार कर धमकाया । सम्राट घोड़े से उतरा । सजी धजी सिपहसालार की वेशभूषा में एक नौजवान ने सम्राट से चाबुक लेकर किनारे रख दिया । सम्राट सिंहासन जैसी कुर्सी पर बैठ कर बायाँ पैर हिलाने लगा । तभी स्टेज के एक कोने से कुछ और बच्चे भीख माँगने आए । धूल धूसरित, चिथड़ों में लिपटे, कइयों की नाक से नेटा बहता था । उनके चेहरे सूखे और पेट सटके हुए थे । सम्राट के चेहरे पर घृणा, हिकारत और क्रोध के भाव उभरे । सम्राट राजसिंहासन टाइप कुर्सी से उठा, सिपहसलार से चाबुक छीन कर बच्चों पर बरसाने लगा । बच्चे भागने लगे । कई रोते, कई चीख़ते चिल्लाते । जो बहुत छोटे थे उन्हें माँओं ने गोद में उठाया और वे भागीं । नेपथ्य में वायलिन का कारुणिक स्वर उभरा ।
सम्राट फिर कुर्सी पर बैठा । उसके सामने एक टेबुल था । सिपहसलार ने सम्राट के जूते उतारे और सम्राट ने टेबुल पर पाँव पसारे । सम्राट के चेहरे पर अब शांति थी ।
तभी नेपथ्य से एक रूसी सुंदरी का स्टेज पर आगमन हुआ । वह धीरे धीरे सहमती हुई हल्के क़दमों से हौले हौले तैरती हुई सी सम्राट के पास आई और फर्श तक झुक कर उसने सम्राट का अभिवादन किया । सम्राट के चेहरे पर मधुर मुस्कुराहट की रेखा उभर आई, उसके चेहरे का तनाव अदृश्य हुआ । युवती कालिदास के काव्य में वर्णित नायिका की मानिंद अनिंद्य सौंदर्य की स्वामिनी थी । पर भेद था । रूसी थी । उसका वर्ण मक्खन की तरह श्वेत था और उसके लहराते केश सोने के रंग के थे । भारतीय नायिकाओं की तरह वह स्थूल न थी, उसकी देहयष्टि व्यायाम से सुगठित होते हुए भी कमनीय थी । उसकी आँखें बड़ी और गोल थीं, आंखों की पुतलियाँ भूरी थीं, उसकी नासिका रोम की सुंदरियों की तरह सीधी, सुडौल और तीखी थी । उसने लम्बा पीत वस्त्र धारण किया था, उसके गले में छोटे छोटे सफेद मोतियों की माला थी । उसकी अनावृत्त, सुडौल, संगमरमरी बाहें समुद्र में तैरती युवा मछलियों के नैसर्गिक सौंदर्य का स्मरण कराती थीं । उसके मुख पर मंद मंद मुस्कान छितरी हुई थी ।

सुंदरी ने सम्राट के पैरों के बगल में चाँदी के पात्र में कोई पेय अपनी ख़ूबसूरत सुराही से ढार कर रखा । सम्राट का चेहरा जो पहले ही से थोड़ा सा खिला हुआ था और भी चहचहा उठा । पीठिका में मधुर वाद्य संगीत बजा ।

१११

***

ज़ार के चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता के भाव थे । स्टेज पर ज़ार अकेला था, सिपहसालार नेपथ्य में चले गए थे । ज़ार के पाँव मेज पर थे । वह धीरे से सामने रखी गिलास उठा कर होंठों तक लाता और एक बूँद घूँट कर गिलास वापस पैरों के बगल में रखता और उसके चेहरे पर आत्मसंतोष का भाव उतर आता ।

मैं मन्त्रमुग्ध हुआ यह दृश्य देख रहा था । भिगमंगों जैसे बच्चे और उनकी रोती कलपती हुई मांएं कहीं और चली गई थीं और सामने अब शांति थी, सुख था ।

तभी अचानक स्टेज की रोशनी बुझनी शुरु हुई और गुलाबी रंग का पर्दा धीरे धीरे गिरने लगा । हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा । मैंने अग़ल बगल झाँक कर देखा । हर कोई ताली बजा रहा था । मैं भी जोर जोर से ताली बजाने में शामिल हुआ ।

११२

***

पर्दा धीरे धीरे फिर उठा । अब मंच का दृश्य बदल चुका था । ज़ार उस कुर्सी पर न था । अब मंच के एक कोने में एक शाही कुर्सी लगी थी जिसमें रत्न जड़े थे । कुर्सी का पिछला भाग बहुत ऊँचा था । उस पर राजसी वेशभूषा में एक अत्यंत सुंदर कोई तीस पैंतीस वर्ष की श्वेत स्त्री बैठी थी । उसके क़रीने से सजाए सोने के रंग के केश पर श्वेत रंग का एक टियारा था जिसमें हीरे जड़े थे जो मंच की रोशनी में चमकते थे । वह जब सिर घुमाती तो रोशनी अलग अलग जगह गिरने के कारण उसके टियारा में जड़े हीरे झिलमिल झिलमिल करते ।

यह ज़ार की पत्नी थी । रूस की रानी ।

रानी की बाईं ओर दो बच्चे खड़े थे । उसकी दस बारह साल की बेटी जिसका मासूम मुखड़ा हल्की गुलाबी रोशनी में चमक रहा था । उसने नीले रंग की फ़्रॉक पहन रखी थी, उसके करीने से कटे हुए घने सुनहरे बाल कंधों पर झूलते थे । वह अपनी माँ के दाएँ हाथ में अपना बायाँ हाथ डाले उसके कानों में कुछ कह रही थी । माँ के चेहरे पर वही वात्सल्य का भाव था जो संसार की सब माँओं के चेहरों पर कभी कभी रहता है । ज़ार की पुत्री के बगल में राजकुमार खड़ा था । उसकी उम्र कोई दस बरस की थी । उसकी आँखें दरवाजे की तरफ टिकी थीं । उसने लाल रंग का शाही परिधान पहन रखा था । उसके चमचमाते काले जूते घुटनों तक पहुँचते थे । उसके गोरे चेहरे पर freckles थे । ज़ार अपनी पत्नी की दाईं ओर खड़ा दूर खड़े सेवकों को कुछ आदेश दे रहा था । उसके चेहरे पर सम्राट, पिता और पति के मिले जुले भाव वोदका के नशे की गर्मी में चमकते थे ।

११३

***

ज़ार मंच के एक कोने में अपनी सिंहासन जैसी कुर्सी पर बैठा अपनी मूँछें मरोड़ रहा था । उसका चेहरा रोबीला और शानदार था । ज़ार के बगल में वैसी ही ऊंची कुर्सी पर महारानी बैठी थी । उनके दो बच्चे - कोई दस वर्ष की राजकुमारी और पांच छ वर्ष का राजकुमार पास ही खड़े एक दूसरे से किसी बात पर बहसा बहसी करने में लगे थे ।

मंच की दूसरी तरफ एक दरवाजा था । दरवाजे के इस तरफ लाल वर्दियों में सजे ख़ानसामे टेबुल सजा रहे थे । यह बड़ा डाइनिंग टेबुल था । डाइनिंग टेबुल पर सफेद टेबुल क्लाथ बिछा था । ख़ानसामे टेबुल पर भाँति भाँति के व्यंजनों के थाल सजा रहे थे । चाँदी की सुराहियों में भाँति भाँति की मदिराएँ सजाई गई थीं । यह रही वोदका, उधर स्कॉच, उस तरफ कोन्याक ।

दरवाजे के उस तरफ घोड़ा गाड़ियों से अतिथि उतर रहे थे । कोई अकेले, कोई परिवार के साथ । दरवाजे के बाहर खड़ा ख़ानसामा अतिथि को झुक कर सलाम करता, उनके कोट और स्कार्फ़ अदब के साथ हल्के से उतारता और कोने में लगे स्टैंड पर खूँटियों पर टाँगता । अतिथि वहीं खड़ा रहता या रहती और ख़ानसामा ज़ार के पास जा कर झुक कर घोषणा करता : हुज़ूर, प्रिंस माइकेल पधारे हैं । हुज़ूर, प्रिंसेस कैटरीना तशरीफ लाई हैं । ज़ार हाथ के इशारे से उन्हें अंदर आने का इशारा करता । कभी कभी जब वह किसी विशिष्ट अतिथि को पहचानता, हल्के से मूँछों के नीचे से मुस्कुराता । अतिथि झुक कर सलाम करते, ज़ार का बायाँ हाथ चूमते और आगे बढ़ जाते ।

देखते देखते मंच के एक कोने में बहुत से अतिथि इकट्ठे हो गए । ज़मींदारी परिधान में सफेद बालों वाले बूढ़े काउंट, महँगे वस्त्रों में सजी, हीरे जवाहरातों से लदी उनकी पत्नियाँ, सौंदर्य की बिजलियां बिखेरती भिन्न भिन्न रंगों के परिधानों में सजी, अनावृत्त ग्रीवा, कंध, वक्ष धारी उनकी सुंदर पुत्रियाँ और पुत्रवधुएं, और सजे धजे, हट्टे कट्टे युवा, और हंसते मुस्कुराते, अपनी मांओं से चिपके नन्हें बच्चे । आपस में फ़्रेंच में और नौकरों से रूसी भाषा में बातें करते मॉस्को और पीटर्सबर्ग के सम्भ्रांत लोग ।

सेवक तरह तरह के पेय द्रव्य चाँदी की थालियों में सजा कर लाते और अनुनय कर अतिथियों को थमाते । सम्भ्रांत लोग मॉस्को और पेरिस के मौसमों, लंदन की कला वीथियों और रूसी समाज के गिरते नैतिक स्तर पर बातें करते कभी शैम्पेन पीते, कभी कोन्याक । वे धीमे स्वर में संभ्रांत तरीके से बातें करते । तभी गुलाबी परिधान में सजी एक महिला किसी बात पर जोर से हँसीं और सबकी नज़रें उनकी तरफ उठीं । लोगों ने उन्हें घूर कर देखा । फिर वे हौले हौले बातें करने में मशगूल हो गए । धीरे धीरे धीमी आँच पर उत्सव का वातावरण तैयार हुआ । पहले ड्रिंक, फिर डिनर और फिर डांस ।

११४

***

रात बीतती जाती रंगीन होती जाती । शराब के चश्मे बह रहे थे, लोग कभी फुसफुसाते, कभी रहस्यमयी मुस्कान यूं बिखेरते जैसे दिल में कोई गहरा राज छुपा रखा हो । स्त्रियाँ अपने ज़ेवरात के दामों और

उनकी बारीकियों की विवेचना करती थीं, पुरुष मज़दूरों के मनबढ़ूपन पर, समाज में आती जा रही गिरावट पर, पेरिस और लंदन के कहवाघरों की तुलनाओं पर विचार कर रहे थे । कोई कोई बुद्धिजीवी टाइप लोग रूसी और जर्मन साहित्यों की तुलना में लगे थे । पर पुश्किन के विश्व के सबसे ऊंचे कवि होने की बात पर सबकी सहमति थी । बीच बीच में टूटते और जुड़ते प्रेमप्रसंगों की चर्चा होती । इन चर्चाओं में पुरुष और स्त्री दोनों भाग लेते । कोई कोई स्त्री अचम्भे से मुँह बा देती, मुँह अपने हाँथों से ढंक लेती । मैत्री, सौहार्द्र और मनोरंजन की मिली जुली धाराएँ बह निकली थीं ।
लाल पतलून और सफेद क़मीज़ों में सजे, चमकते ख़ानसामों ने अब खाने का टेबुल लगा दिया था । सबसे पहले ज़ार टेबुल के एक तरफ सबसे ऊँची कुर्सी की तरफ बढ़े । उन्होंने मुस्कुराते हुए अतिथियों को टेबुल पर अपना अपना स्थान लेने के लिए आग्रह किया । शैम्पेन की सही मात्रा के सेवन से जार की तनी हुई भृकुटि अब शिथिल थी, मुख पर मुस्कुराहट की छाया वैसे ही फैल गई थी जैसे घनघोर बरसात के मेघाच्छादित गगन वाले अंधेरे दिनों में अचानक थोड़ी देर के लिए सूरज की मुलायम रोशनी फैल जाती है ।
भोजन के लिए तरह तरह के व्यंजन टेबुल पर सजे थे । पर मैं था तो गवंई गँवार ही, मुझे इन व्यंजनों की पहचान न थी और नाटक के सूत्रधार ने हमें बताया न था । मैंने बगल में बैठे रक्तरंजित सर से पूछना उचित न समझा ।
भोजन का कार्यक्रम देर तक चला । एक बूढ़े काउंट ने पेट पर हाथ रखते हुए डकार ली तो बहुत सारे लोग उसे हैरत की नजर से देखने लगे । काउंट ने डकार पर तुरंत नियंत्रण किया ।
अब भोजन समाप्त हो चुका था । लोग टेबुल से उठ कर एक कोने में चले गए थे । नौकरों ने टेबुल, कुर्सियाँ मंच से हटा दीं ताकि नृत्य के लिए पर्याप्त जगह बन सके ।
११५
***
लोग मंच के एक कोने में एकत्र होते जा रहे थे । वृद्ध, प्रौढ़, युवा, स्त्री, पुरुष, बच्चे । कई मदिरा के नशे में कभी कभी लड़खड़ाते । युवा स्त्रियाँ युवा पुरुषों से घिरी शायद मीठी बातों में उलझी थीं । मदिरा के सुरूर में लाल हुई युवतियां लजाती हुई कनखियों से युवकों की तरफ देखतीं । उनके होठों पर सजीली मुस्कुराहट बिखर बिखर जाती । प्रौढ़ा स्त्रियाँ जलन भरी नज़रों से इन जोड़ों को हँसते खिलखिलाते भौंहें चढ़ा कर देखतीं, कुढ़तीं और समाज में लगातार होती जा रही नैतिक गिरावट पर फुसफुसा कर आपस में बातें करतीं ।
वो देखो नताशा को - कपड़े कायदे से पहनने का शऊर नहीं है, बेशर्म ने कंधे कैसे उघाड़ रखे हैं, अपने पति एंड्र्यू के सामने ही छैल छबीले पीटर से कैसे फ़्लर्ट कर रही है । क्या हो गया है समाज को । सबको मालूम है पीटर कितना बदचलन है । छि: । और वो देखो जॉयस को । कल तक यूँ ही खिलखिलाती इधर उधर भागती थी । एक ब एक कैसी बड़ी हो गई है । हाय, कितनी सुंदर है । उसकी बड़ी बड़ी नीली आँखें तो देखो, चकित हिरणी की तरह हैं । उसका चेहरा कितना कोमल है - वसंत में खिले चेरी ब्लॉसम की

तरह । उसके ऊपर नीले रंग का यह ड्रेस कितना फबता है । और वो अधेड़ उम्र का दुष्ट पीटर इस मासूम किशोरी के पीछे भी पड़ा है । क्या पता फंसा न ले । जॉयस जैसी लड़कियाँ कहाँ दिखती हैं ? कितनी कोमल, कितनी सुंदर । इसका रिश्ता तो ज़ार के परिवार में होना चाहिए । ज़ार का अपना पुत्र तो अभी छोटा है पर उनका भतीजा तो गबरू जवान है । पर क्या है कि जॉयस का बाप शराबी है, क़र्ज़ में डूबा है, न अक़्ल है, न शऊर । अपने अपने भाग । कहाँ तो इतनी सुन्दर लड़की और कहाँ उसका खूसट शराबी बाप । वो देखो, कोने में लहरा रहा है । इतनी शराब पी ली है कि कायदे से खड़ा नहीं हुआ जा रहा है ।
११६

***

तभी अचानक रोशनी बहुत धीमी हुई, करीब करीब बुझ सी गई । फिर हौले हौले मद्धम मद्धम बहुत मुलायम सी हल्की नीली रोशनी मंच के एक कोने से उठी । सुंदर युवतियों के चेहरे भींगती हल्की नीली रोशनी में बला की खूबसूरती बिखेरने लगे । मैं तो बेहोश होते होते बचा । मैंने इतना घनीभूत सौंदर्य पहले कभी न देखा था । मंच पर झूलते पात्रों की तरह मुझ पर भी नशा सा छाने लगा । मुझे लगा स्वर्ग जैसी कोई चीज यदि है तो ऐसी ही होगी ।
फिर एक ब एक हौले से वायलिन का बहुत बारीक कोमल स्वर नेपथ्य से उठा । फिर वह स्वर धीरे धीरे ऊपर चढ़ कर अचानक तेज़ी से गिरने के बाद ऊपर उठा । जोड़े अब नृत्य के लिए तैयार थे । परम्परा के अनुसार पति दूसरों की पत्नियों के साथ और पत्नियां दूसरों के पतियों के संग जोड़े बना रही थीं । इसमें कभी कभी कन्फ्यूजन फैलता । जॉयस के संग नृत्य का प्रस्ताव ले कर चार लोग हाज़िर थे । एक मोटा गंजा फ़ौजी, एक प्रौढ़ काउंट जिसके नक़ली दाँत किसी भी वक्त बाहर निकलने को बेताब थे और दो सजीले फौजी नौजवान । ज़ार के संग किसी काउंट की सुंदर युवा पत्नी का जोड़ा बन गया था और ज़ार की पत्नी के हाथ एक नौजवान और ख़ूबसूरत फ़ौजी के हाथों में उलझे थे । गठे हुए बदन वाला फ़ौजी जिसके सोने के रंग वाले लम्बे बाल कंधों पर झूलते से थे और जिसकी मूँछें रोबीली थीं, जारीना से उसके कानों में फुसफुसा कर कुछ कह रहा था ।
नताशा पीटर के संग थी । पर पीटर कभी कभी दूसरी स्त्रियों की ओर लालच भरी निगाहों से देखता । उधर नताशा का पति एन्ड्रयू जिसकी हल्की सी तोंद निकली थी और जिसके side burns फूहड़ दिख रहे थे, एक मोटी थुलथुल अधेड़ औरत के संग अपना जोड़ा बिठा रहा था ।
११७

***

लोग अब जोड़ों में बँट गए थे । कुछ बूढ़े बच गए थे जो अकेले थे । वे कोने में अपनी बारी का इंतजार करते खड़े थे कि कब कोई जोड़ा टूटे, कोई स्त्री खाली हो तो वे उससे अपना जोड़ा बनाएँ । उनके चेहरे निराशा से बुझे बुझे थे । सब स्त्रियों को जोड़े मिल गए थे । ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि पुरुषों की संख्या स्त्रियों से थोड़ी अधिक थी । बच्चों के कोई जोड़े न थे । वे इधर उधर कूदते तो कोई बूढ़ा उन्हें आँखें तरेर कर देखता और कायदे से रहने के लिए कहता ।

अचानक मंच के दूसरे कोने से विद्युत गति से डांस मास्टर ने प्रवेश किया । डांस मास्टर नृत्य का विशेषज्ञ होता था जो ऐसी पार्टियों के नृत्य में जान फूंकता था । उसके आने से उत्साह की लहर दौड़ जाती थी ।

डांस मास्टर कोई चालीस वर्ष का पुरुष था । दुबला पतला, औसत लम्बाई वाला नृत्य के सतत अभ्यास से सुगठित कसा हुआ शरीर । उसने सफेद कमीज पहनी हुई थी जो उसकी लाल पतलून में खुंसी हुई थी । उसके सिर पर हैट जैसी कोई पीले रंग की तिकोनी चीज थी जिसे पता नहीं कैसे उसने अपने सिर पर स्थिर किया हुआ था । उसके काले लम्बे बाल कंधों पर झूलते थे । उसकी करीने से कटी बारीक मूंछें थीं । उसकी नन्हीं काली गोल आँखें रोशनी में चिमचिमाती थीं । उसके पैरों में सफेद जूते चमकते थे । उसके चेहरे से लगता था कि वह एशियाई है - शायद मंगोल और यूरोपियन रक्त का मिश्रण ।

मास्टर ने एक लहरदार कदम लिया और चकरघिन्नी की तरह घूमता हुआ वहाँ पहुँचा जहां ज़ारीना खड़ी थी । उसने करीब करीब फर्श तक झुकते हुए ज़ारीना को सलाम किया । ऐसा करते हुए उसका बायाँ पैर उसके शरीर के बहुत पीछे जमीन से उठ कर सीधा खड़ा रहा । वह सिर्फ एक पैर पर था और उसका शरीर झुक कर दोहरा हुआ था । वह पहले दाएँ हाथ को जहां तक पीछे ले जा सकता था, ले गया फिर एक कलात्मक गति से हाथ को बिल्कुल एक अर्धवृत्त जैसे गोले में घुमाता हुआ सामने लाकर सलाम किया । ज़ारीना के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई । माहौल में उत्साह और प्रसन्नता का रंग बिखर गया । डांस मास्टर ने ज़ारीना के साथ खड़े व्यक्ति को अलग से सलाम किया, फिर उसने मुस्कुराते हुए अदब से नृत्य के लिए जारीना का हाथ माँगा । ज़ारीना ने आँखों से मुस्कुराते हुए सहमति दी और अपने जोड़े को छोड़ डांस मास्टर के पास आ खड़ी हुई ।

डांस मास्टर ने ज़ारीना की कमर में अपना बायाँ हाथ डाला । ज़ारीना ने अपना दाया हाथ हौले से डांस मास्टर के बाएँ कंधे पर रखा । फिर वे दोनो संग संग गोल गोल घूमने लगे । कभी आहिस्ता आहिस्ता कभी अचानक तेज गति पकड़ते हुए । वे मंच के इस छोर से दूसरे छोर तक तालाब में तैरती मछली की तरह कलात्मक तरीके से फिसलते, फिर अचानक उसी जगह पर पूरी तरह घूम जाते, कभी हवा में छलाँग लगा देते । डांस मास्टर तो खैर विशेषज्ञ था, ज़ारीना को उतना अभ्यास न था । पर डांस मास्टर ने ज़ारीना को जिस तरह संभाला वह देखने की चीज थी । ज़ारीना के पैर कहाँ लड़खड़ाएँगे यह डांस मास्टर को जैसे पहले से पता होता और वह बहुत कलात्मक तरीके से जारीना को संभालता । ज़ारीना के सुंदर गोरे गुलाबी चेहरे पर पसीने की बूँदे चाँदी की तरह झिलमिलातीं और हर ओर एक अलौकिक सौंदर्य की छटा बिखर जाती ।

दूसरे जोड़े भी यूँ ही थिरकते रहे । लोग जब थक जाते तो रुक कर थोड़ी सी शैम्पेन या कोई और मदिरा दो घूँट पी कर फिर तरो ताजा हो जाते और फिर से थिरकने लगते । मंच पर सजीले युवक युवतियाँ थालों में मदिरा लिए घूमते और अतिथियों से थोड़ा सा बस थोड़ा सा लेने की मनुहार करते रहते ।

स्वर्गलोक सा दृश्य उपस्थित था ।

***

स्वर्गलोक का परिदृश्य गति में था, अपने उत्कर्ष पर पहुँच रहा था । लोग नृत्य करते, खिलखिलाते, मदिरा पीते । चारों तरफ एक सुंदर उत्सव का वातावरण था ।

तभी अचानक एक ब एक मंच के एक कोने से दो घुड़सवार और उनके पीछे पाँच छ: पैदल लोग धड़धड़ाते हुए घुसे । उनका नेता कोई चालीस पैंतालीस बरस का एक शख्स था जो एक अरबी घोड़े पर सवार था । देखने में वह तातार सा दिखता था । उसकी आँखें छोटी थीं और उसके बाएँ गाल पर एक लम्बा निशान था । ठिगना और दुबला शख्स । फ़्रेंच कट दाढ़ी । दाएँ हाथ में पिस्तौल । घुसते ही उसने जारशाही मुर्दाबाद, सर्वहारा ज़िंदाबाद, इंक़लाब ज़िंदाबाद के नारे लगाए ।

चारों तरफ अफ़रातफ़री मच गई । स्त्रियाँ डर के मारे चीख़ने लगीं । बच्चे अपनी माओं के स्कर्टों के पीछे दुबकने लगे । पुरुषों के चेहरों पर हवाइयां दौड़ने लगीं । कोई टेबुल के नीचे छिपने के लिए भागा और टेबल पर रखे बर्तन फर्श पर गिर पड़े । शीशे की गिलासें चकनाचूर हो गईं । एक बदहवास महिला के पैर काँच के टुकड़ों पर पड़े और फर्श पर ताजा लाल खून फैल गया । महिला डर के मारे चीख़ने लग गई । उसकी देखा देखी दूसरी औरतें भी चीख़ने लग गईं । थोड़ी देर पहले ही जो स्त्रियाँ अप्सरा की मानिंद दिखती थीं, उनका सौंदर्य काफ़ूर हो चुका था, उनके सुंदर चेहरे भय और आतंक के कारण विकृत हो गए थे । चारों तरफ कोहराम मच गया था ।

तभी अचानक एक दस बरस के बहुत सुंदर बच्चे ने मंच के दूसरे कोने से भागने की कोशिश की । क्रांतिकारियों के नेता की तेज नजर उधर गई । यह ज़ार का पुत्र था । नेता ने हवा में गोली चलाई । लड़का भय के मारे वहीं गिर पड़ा । नेता ने ललकारा : देखते क्या हो, यह साँप का बच्चा है, इसे धर दबोचो । क्रांतिकारियों ने बच्चे को जमीन से उठा कर हवा में उछाल दिया । बच्चा आसमान से धड़ाम से फर्श पर गिरा और रोने लगा । बच्चे को जोर जोर से रोते देख ज़ारीना बच्चे की तरफ भागी । इतनी सुंदर ज़ारीना के चेहरे का मेक अप आँसुओं के कारण बिगड़ गया था, उसके सजे हुए बाल अब बेतरतीब थे और अब वह डरी हुई भूतनी की तरह दिखती थी । ज़ार बेचारा एक कोने में दुबका हुआ सिर झुकाए खड़ा था । एक दो औरतें चीख मारते हुए बेहोश हो कर फर्श पर कटे पेड़ की तरह भहरा कर गिर गई थीं ।

ज़ारीना को देखते ही नेता घोड़े से उतर गया और जारीना की तरफ फुफकारता हुआ दौड़ा । अपने साथियों को डाँटते हुए बोला : देखते क्या हो , दबोच लो । यही है वह बुर्जुआ नागिन जिसने मज़दूरों का खून चूसा था । इसको इसके संपोले के संग बाँधो । इंकलाब ज़िंदाबाद । बोल्शेविक क्रांति ज़िन्दाबाद । पर ध्यान रहे बिना मुक़दमे के इन्हें दंड न दिया जाय । हम क्रांतिकारी लोग हैं, न्याय के सिपाही हैं । चलो, ज़ार ज़ारीना, उसके संपोले बेटी बेटों को एक तरफ करो । जो उनके खास कारिंदे हैं उन्हें भी उनके साथ बाँधो । और अभी तुरंत यहीं इस मेज पर क्रांतिकारी सर्वहारा न्यायालय बिठाओ जहां इन बुर्जुवा शोषकों पर मुक़द्दमा चलाया जाएगा ।

उस ऊँची कुर्सी पर जिसमें पहले ज़ार बैठा हुआ था, अब क्रांतिकारी बैठ गया । दूसरी कुर्सियों पर तुरंत मनोनीत दूसरे जज बैठ गए । एक जज ने उठ कर ज़ार परिवार के अपराधों का वर्णन किया और परिवार को मृत्यु दंड देने की सिफारिश की । इस प्रस्ताव का बाकी जजों ने इंक़लाब ज़िंदाबाद का नारा लगाते हुए अनुमोदन किया । फिर जो उनमें सबसे कम उम्र का जज था जिसके चेहरे पर चेचक के दाग थे और जो लँगड़ा कर चलता था, उसने प्रस्ताव रखा कि क्रांति की इस शुभ बेला के प्रथम मृत्युदंड का उद्घाटन बोल्शेविक नेता के कर कमलों से हो । बाकी सभी जजों ने खड़े हो कर इंक़लाब ज़िंदाबाद, बोल्शेविक क्रांति जिंदाबाद के नारे लगते हुए उत्साहपूर्क्षक अपने नौजवान साथी के प्रस्ताव का समर्थन किया ।
लेनिन अपनी कुर्सी से उठा । उसके चेहरे पर क्रांतिकारी निश्चय की रोशनी थी , दुविधा और द्वंद्व का कोई भाव न था । उधर कोने में माँ बाप से चिपके बच्चे थर थर काँप रहे थे, लड़की का कपड़ा पेशाब से गीला हो गया था । उनके चेहरों पर वही भाव था जो क़ुर्बानी के ठीक पहले बकरों के चेहरों पर होता होगा । तभी अचानक ज़ारीना पछाड़ें मार कर बच्चों के ऊपर गिर पड़ी । बच्चे उसकी देह के नीचे दब गए । हवा में गोलियों की आवाज गूँजी और चीखोपुकार के संग घुल गई । कोने में ढेर सारा ताजा सुर्ख खून फैला और फिर सन्नाटा छा गया ।
पाँच मिनट बाद सन्नाटा बोल्शेविक क्रांति ज़िंदाबाद के नारों से टूटा ।
पर्दा गिरा और हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा ।
११९
***
जब इस क्रांतिकारी दृश्य का मंचन चल रहा था, तब की मेरी भावदशा का वर्णन बहुत कठिन है । आपमें से जो बुद्धिजीवी होंगे, जिनकी आधुनिक प्रगतिशील साहित्य में रुचि होगी, वे शायद अनुमान लगा सकेंगे । मैं क्योंकि स्वयं ही क्रांति के पथ का पथिक था, मुझे इस बात से संतोष हुआ कि सड़े गले शोषण पर आधारित जारशाही राज से मेहनतकश गरीब मज़दूर, सर्वहारा को निजात मिली । मुझे यह भी लगा कि विनाश होगा तभी तो विकास होगा । पतझड़ में पत्ते मर कर झड़ेंगे तभी तो वृक्ष की शाखाओं पर नई कोपलें खिलेंगी, बाग़ों में बहार आएगी । खून ख़राबे के बारे में मैंने सोचा कि बहते हुए खून का रंग इतना सुंदर तो नहीं, पर नई दुनिया के आगमन का, पूरब के आकाश में नए सूरज के उगने का संकेत है - इसलिए शुभ है, हमें इसका स्वागत करना चाहिए । और फिर ज़ार इतना क्रूर था, उसके पापों की सजा उसको मिलनी ही चाहिए थी । मेरे हृदय में यही भावनाएँ उमड़ घुमड़ रही थीं पर मैं पूरी तरह आश्वस्त न था कि मेरी भावनाएँ प्रगतिशील जनवादी व्यवहार से मेल खाती थीं या नहीं । मैंने तस्दीक़ के लिए बगल में बैठे रक्तरंजित सर की ओर कनखियों से देखा । रक्तरंजित सर का ध्यान अब भी मंच पर था हालाँकि परदा गिर चुका था । रक्तरंजित सर ने शायद नोट न किया कि मेरी नजर उनके चेहरे पर थोड़ी देर के लिए गड़ी थीं । रक्तरंजित सर के चेहरे पर संतोष की वही आभा थी जो आपके चेहरे पर किसी कठिन कार्य के सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने पर उतरती होगी । ग़ौर से देखने पर चेहरे पर बहुत बारीक बहुत कोमल मंद स्मिति की झलक दिखती थी ।

पर एक बात कहूँ ? आप मेरी बात का गलत अर्थ न निकालें तो । एक दृश्य था जिसे देख कर कलेजे में हूक सी उठी थी । वही दृश्य जब गोलियाँ चल रही थीं और ज़ारीना ने अपने दोनों बच्चों को अपने शरीर से छोप लिया था और चारों तरफ गर्म लाल रक्त फैल गया था ।
पर मैं इतना कच्चा भी तो न था । मैंने अपनी मध्यवर्गीय बुर्जुआ संस्कारों से जन्मी दुर्बलता को तुरंत पहचाना और उसे झटक दिया । क्रांति की राहें आसान नहीं । उन रास्तों पर ऐसी दुर्बलताओं के लिए जगह नहीं । क्रांतिधर्मी दृढ़ निश्चयी होता है, भावुकता में नहीं बहता । उसकी आँखों में दृढ़ निश्चय की ज्वाला धधकती है, उसके सीने में मरने मारने का समंदर ठाँठें मारता है । मैंने एक गहरी साँस ली और फिर से जोर जोर से तालियाँ बजाने लगा । तब तक हॉल में तालियाँ बजनी बंद हो गई थीं । रक्तरंजित सर ने मुड़ कर चकित नज़रों मुझे देखा ।
१२०

***

मैं उहापोह में डूबा था कि तभी हौले से परदा फिर से उठना प्रारम्भ हुआ । पृष्ठभूमि में वायलिन का कोमल, कुछ कुछ कारुणिक और कुछ कुछ उल्लास से भरा बारीक स्वर उभरा । अब वातावरण बदल रहा था । क्रांति की रात्रि का स्थान नवजागरण की मधुर सुबह लेने वाली थी । पर्दा उठता गया मंच पर हल्का पीला उजास फैलता गया । वायलिन का स्वर ऊँचा उठता गया, धुन धीरे धीरे तेज होती गई । गम्भीर और कुछ उदास विचार में डूबी धुन अब उमंग और उत्सव के रागरंग में बदल रही थी । यही तो जीवन में सदा से होता आया है । रात काले अंधेरों से जूझते बीतती है और सुबह सूरज की प्राणों को पुलकित करने वाली किरणों में स्नान का आनंद प्राप्त होता है । कभी संहार तो कभी नवनिर्माण । जब तक पूँजीवाद नष्ट न होगा समाजवाद कैसे आएगा ? जब तक बुर्जुआ सर्वहारा के हाथों मारा नहीं जाएगा आदर्श समतामूलक समाज की आधारशिला कैसे पड़ेगी ? सीधी सी तो बात है, भावुक होने की तो कोई बात नहीं । हम समाज को जलाएँगे तभी तो नया स्वर्ग जैसा समाज बनाएँगे ।
पर्दा अब पूरी तरह उठ चुका था । हजार जोड़ी आँखें निष्पलक मंच के दृश्य पर पूरी तरह केन्द्रित थीं । एक बच्चा जरा सा रोया तो दर्शकों का ध्यान भंग हुआ । पर बच्चे की माँ समझदार निकली । बच्चे के मुँह को हथेली से दबाए तेज़ी से सभागार से बाहर निकल गई ।
तभी अचानक तीन बालाओं ने मंच के एक कोने से प्रवेश किया । वायलिन का स्वर एक क्षण के लिए बंद हुआ और फिर से हौले हौले उठा । बालाएं रक्तिम लाल परिधान में सजी थीं । उनकी देहगति समुद्र में तैरती नवजात मछलियों की भाँति चपल थी । लगता था जैसे बालाएं कभी धरती पर, कभी आकाश में और कभी किसी अदृश्य समुद्र में तैर रही हों । मैं तो अवाक रह गया । इसके पहले तो मैंने सिनेमा में सिर्फ जयश्री टी के नृत्य देखे थे । वायलिन का स्वर सुंदरियों की देहगति की ताल में ताल मिलाता कभी आरोह में उठता कभी अवरोह में गिरता ।
और बालाएँ ! जैसे इन्द्रलोक की परियाँ । या यदि आपको भारतीय पौराणिकता से अरुचि हो तो फिरदौस की हूरें । कमनीय सुगढ़ देहयष्टि, गौरवर्ण, गोला मुख, होठों पर मंद स्मित, स्वप्निल आँखें । इन तीनों

में से दो तो स्पष्टत: रूसी बालाएं थीं क्योंकि उनकी आँखें नीली और केश सुवर्ण थे पर तीसरी की आँखें काजल की मानिंद काली थीं और केश काले भँवरे की तरह लहरा रहे थे । मैंने अनुमान लगाया हो न हो यह भारतीय बाला है । बालाएं नए आदर्श समाज के उगते सूर्य को प्रणाम करने आई थीं । सूरज की रोशनी में भींगा, नए चमचमाते मानवतावादी समतामूलक समाज के महान आगमन का दृश्य । यही वह द्वार था जिससे निकल कर स्वर्ग का मार्ग दिखता था ।
मैं चकित था उस हिरणी की तरह जिसकी आँखें अचानक कौंधी हेडलाइट की रोशनी में जड़ हो गई हों । मैं सिर्फ मंत्रमुग्ध न था, सिर्फ भावविभोर न था, बल्कि सुधबुध खो बैठा था ।
अचानक मेरे पीछे कोई बूढ़ा खंखारा तो मेरी तंद्रा टूटी और मैंने साँस रोक कर और आँखें फाड़ कर सुन्दरियों पर नजर डाली और अचानक पहचान की रोशनी मेरे दिलोदिमाग़ में काले बादलों से भरे आकाश में चमकती बिजुरी की तरह कौंध गई । अरे यह भारतीय बाला तो अपनी रक्तिमा है ! मैं अभिमान और हर्षातिरेक की पागल हवाओं में जंगली पेड़ की तरह डोल गया । प्रेम के घने बादल आकाश में फटे और मैं घनी मधुर वर्षा में सिर से पाँव तक भींग गया ।
१२१
***
देखिए, मुझे अच्छी तरह पता है यह कहानी बहुत लम्बी हो गई है, बहुत उबाऊ होती जा रही है और ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही है । यह बुरी बात है । पर मेरे साथ एक कठिनाई है । मैं कोई पेशेवर लेखक तो हूँ नहीं । कायदे से झूठ बोलने का प्रशिक्षण मुझे नहीं मिला । मैं अनगढ़ हूँ, खुरदुरा हूँ, भले ही जनेवि तक पहुँचा हूँ पर अंदर से गवंई गवांर हूँ - जैसा दिखता है वैसा लिख देता हूँ । कई बार तो बहुतै अंडबंड लिख मारता हूं । बाद में अपना ही लिखा पढ़ता हूँ तो शर्मिंदा होता हूँ, पछताता हूं, सर धुनता हूं । पर क्या करूँ आदत से लाचार हूँ ।
मुझे पता है, मेरे पाठक सुहृद हैं, संवेदना से सराबोर हैं । आप संयम रखें और हो सके तो मुझे थोड़ी सी दया से भी नवाजें ।
अब आप से मैं क्या कहूँ । आप मेरी बात का विश्वास थोड़े ही न करेंगे । मुँह को रूमाल से ढंक कर हंसेंगे । हंसिए । आप ही सोचिए मैं अपनी दशा का बयान कैसे करूँ ? मेरे पास वह भाषा नहीं जो मेरी दशा को चित्रित कर सके । आपको कल्पना से काम चलाना पड़ेगा ।
हम सभागार से बाहर निकले तो मेरा दिल धड़धड़ धड़धड़ धड़क रहा था और माथे से पसीना चूता चला जा रहा था । मेरा सिर हजार वोदकाओं के नशे में घूम रहा था । मेरे पैर वाकई जमीन पर न थे । मुझे लगता कि जैसे में जमीन को हल्के से एक लात लगाऊँ तो आसमान में उड़ जाऊँ । बादलों से बातें करूँ । वृक्षों पर बैठे पक्षियों संग गीत गाऊँ । गीत गाते गाते थकूँ तो चाँद तारों के संग कोई पोलो टाइप का खेल खेलूँ । उस समय तो मैं लौंडा लपाड़ी था पर अब मैं जब एक प्रतिष्ठित वरिष्ठ अधिकारी की पोस्ट पर इस गंदे से शहर में नियुक्त हुआ हूँ, मॉस्को और न्यूयार्क की गलियों में भटक भटक घूम आया हूँ तब मुझे पता चला है कि यह वह प्रेम का वह नशा था कुछ वैसा जैसा कोकेनधारी को कोकेन के नशे में

होता है । आपमें से जो भारतीय टाइप के लोग हैं, उन्हें यदि मॉस्को और न्यूयार्क की रंगीन मदमस्त शामों की बात न समझ में आए तो कालिदास की बात तो समझ में शायद आ जाए । आपने देखा मेघदूत में प्रेम में बावरा हुआ यक्ष कैसी कैसी बातें कर रहा था । बेचारे ने तो कोकेन का सेवन भी नहीं किया था ।

१२२

***

हमारी कहानी अब उस ढर्रे पर चल पड़ी जिससे आप भली भाँति परिचित हैं । क्यों न होंगे आपका जीवन बॉलीवुड के साये में गुज़रा जो है । अब आप यह समझिए हम हम न थे, दिलीप कुमार और मधुबाला थे । पर एक बारीक फ़र्क़ था । दिलीप तो तकरीबन दिलीप ही थे, पर मधुबाला के चेहरे पर नए जमाने की रोशनी काँपती थी । मँजा हुआ चेहरा, बौद्धिकता और नारीवाद की रोशनी में झिलमिलाता ।

हमारी मुहब्बत परवान चढ़ी । मुहब्बत बहुत कायदे की थी - दोनों पक्षों को सूट करती थी । मेरे कैरियर के आगे बढ़ते जाने की उम्मीद थी और ऊँचे प्रगतिशील समाज की महफ़िल में एडमिशन का वादा था । और रक्तिमा के लिए सीधे साधे रंगरूट की मदद का आकर्षण था । मैं ऐसी बातें लिखते हुए डरता हूं । कहीं अर्थ का अनर्थ न हो जाय । संकुचित दिल वाले लोग कुछ और न समझ लें । आप मेरी बात मानिए - हमारी मुहब्बत सच्ची थी । वैसे ही जैसे किसी जमाने में दिलीप और मधुबाला या फिर बाद के दिनों में ऋषि और डिम्पल की मुहब्बत सच्ची थी ।

हम मुहब्बत के नशे में डूबे जरूर थे पर अपने काम के प्रति, अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह न थे । मैं रक्तरंजित सर का छात्र था, कोताही का सवाल ही नहीं उठता था । मेरे अध्ययन का विषय था :

कबीर की जनवादी चेतना और निराला के नक्सली काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन

जैसे जैसे मैंने कबीर के संसार सरोवर में गोते लगाए मुझे पक्का विश्वास होता चला गया कि कबीर संसार के पहले मार्क्सवादी थे । मुझे पता है कुछ लोगों ने दावा किया है कि आदि शंकर भी स्वभाव से मार्क्सवादी थे पर वे मेरे अध्ययन का विषय नहीं थे । कबीर का सारा जीवन सर्वहारा के हित में पुरातनपंथी साम्प्रदायिकता से युद्ध को समर्पित रहा । उन्होंने ब्राह्मणवादी शक्तियों से सच्चे मार्क्सवादी समाज सुधारक की तरह लोहा लिया । मुझे तो कभी कभी यह भी लगता है कि कहीं मार्क्स ने कबीर से प्रेरणा लेकर मार्क्सवाद की नींव तो नहीं रखी ! कबीर हमेशा पूँजीवादी शक्तियों से संघर्ष करते रहे, अंधविश्वास और कुरीतियों से एक सच्चे समाजवादी की तरह जूझते रहे ।

निराला का भी वही हाल रहा । उनकी तो दाढ़ी भी मार्क्स जैसी रही । कौन भूल सकता है उनकी वह सर्वहारा को समर्पित कविता - वह तोड़ती पत्थर, इलाहाबाद के पथ पर ।

इसमें संदेह की कोई संभावना नहीं कि ऐसी कविता बिना गहरी मार्क्सवादी चेतना के लिखी ही नहीं जा सकती । मेहनतकश मज़दूर के प्रति ऐसी संवेदना, सौंदर्यबोध की ऐसी नई जमीन, शोषण के प्रति ऐसा आक्रोश, नई सुबह के लिए मेहनत करने वाली, हार न मानने वाली इच्छा शक्ति, सुनहरे भविष्य का आँखों में रचा स्वप्न - यह किसी बुर्जुआ लेखक कवि के बस की बात नहीं । बल्कि मैं तो निराला को

प्रथम नक्सल मानता हूँ । पर निराला ब्राह्मण थे, यह बात हमें नहीं भूलनी चाहिए, मनुवादी संस्कारों की जकड़न के कारण उन्होंने कुछ प्रतिक्रियावादी कविताएँ अवश्य लिखीं । जैसे - वर दे वीणा वादिनी वर दे या फिर राम की शक्तिपूजा । ऐसी कविताएँ निराला की लाल नक्सली चादर पर पुरातनपंथी बदनुमा धब्बे हैं । पर मैं उदारमना हूँ । मनुवाद की जलती भट्टी से खुद बाहर निकला हूँ और इसलिए निराला का कन्फ्यूजन समझ सकता हूँ । मुझे लगता है हमें निराला की इन छोटी मोटी ग़लतियों को माफ करना चाहिए और उनकी मूल नक्सली पहचान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए ।

१२३

***

हमारी मुहब्बत वैसे ही परवान चढ़ती जा रही थी जैसा मुहब्बतों के परवान चढ़ने का दस्तूर है । आप शीरीं फ़रहाद को ही देख लीजिए । या फिर लैला मजनूँ, सोहनी महीवाल या अंग्रेज़ी का शौक हो तो रोमियो जूलियट । जमाने बदले पर मुहब्बतों के परवान चढ़ने का मंज़र न बदला । ऊपरी तौर तरीके भले ही बदले हों, कोई अंदरूनी बदलाव न आया । उस जमाने में नायिका बुर्क़े में होती थी अब बिकिनी में है पर है तो नायिका ही । और नायक पहले दर बदर गली गली, जंगल पहाड़ भटकता था अब क्लब दर क्लब भटकता है । ग़ौर से देखिए तो कुछ खास फ़र्क़ नहीं है। । हाँ, हमारे मामले में खतरे कम थे । गर्दन कटने के आसार न थे । हाल में भी आपने देखा ऋषि कपूर के जालिम बाप ने कैसे ऋषि कपूर को पुश्तैनी जायदाद से बेदख़ल किया और बेटे और उसकी गर्ल फ्रेंड के पीछे गुंडे छोड़ दिए ।

पर हमारी मुहब्बत में गुंडों का खतरा नहीं था । क्योंकि हमारी मुहब्बत कायदे से नायिका के माँ बाप की सहमति बल्कि उनके मूक इशारे पर ही पैदा ली थी, पनप रही थी । मेरे मां बाप का कोई ठिकाना न था । वे गवंई गँवार थे, उन्हें पता न था, पता होता तो भी उन्हें पता होने न होने का कोई मतलब न था । वे पीछे छूट गए थे, मैं बहुत आगे चला आया था ।

हमारी मुलाक़ातों के दौरों का कोई हिसाब न था । कभी लाइब्रेरी में, कभी किसी नाटक में, कभी छात्रसंघ की बैठक में, कभी नाटक कम्पनी में, एक दो बार तो एक नए नए उभरे फ़िल्मी सितारे के संग एक फ़ाइव स्टार रेस्टराँ में । आपको तो पता ही है कि रक्तिमा की प्रगतिशील सिनेमा में बहुत रुचि थी ।

कई दफ़ा हम संग संग पितृसत्ता उखाड़ फेंकने की नीयत से की गई नारीवादी गोष्ठियाँ में भी गए । नारीवादी सभा में रक्तिमा की भागीदारी का जलवा देखते ही बनता था । अक्सर वह फर्रीटेदार अंग्रेज़ी में जोशीले तरीके से फ़्रांसीसी क्रांति, ज़्याँ पॉल सार्त्र और सिमोन द बेवुआर की बातें उद्धृत करती और मैं उसका मुँह ताकता रहता । लाल कुरती और नीली जीन्स में माथे पर बड़ी लाल बिंदी लगाए जब वह मंच पर चढ़ती तो लोग अवाक होकर उसे देखते । उसका सुंदर गोरा चेहरा क्रांतिकारी आवेश से लाल हुआ दमकता, माथे पर कभी पसीने की नन्हीं नन्हीं बूंदें तेज रोशनी में चमकतीं और लोग मंत्रमुग्ध हुए तालियाँ बजाने लगते । मुझमें कभी हीनता और कभी गर्व का भाव जगता । धीरे धीरे मैं भी नारीवादी होता जा रहा था और मुझे लग रहा था कि पितृसत्ता भी बुर्जुवा सामंतवाद के शोषणतंत्र का ही एक अंग है और यदि सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित करना है तो हमें पितृसत्ता को उखाड़ने पर भी जोर देना होगा ।

मुझे अपने पिता के बारे में कभी खीज होती तो कभी गुस्सा चढ़ता । मुझे लगता पिता लोग सब सड़ गए हैं ।
मुझे अब विश्वास हो चला था कि हमें पुराने सड़े गले समाज के सारे चिन्ह जला कर राख करने होंगे, परम्पराओं को गहरे कुएं में डुबा देना होगा । इस तरह कि उनकी कोई स्मृति तक न बचे । हमें झाड़ झंखाड़ साफ करने में पूरी ताकत लगानी होगी । मुरव्वत से काम न चलेगा । सारी वर्जनाएं निर्ममता से काट फेंकनी होंगी । फिर जमीन समतल कर उस पर हमें नए सर्वहारावादी समतावादी समाज की चमकती अट्टालिका की बुनियाद रखनी होगी । वैसे ही जैसे हमारे लोग रूस, चीन और क्यूबा में पहले ही करीब करीब रख चुके थे ।
स्टूडेंट्स फेडरेशन की राजनीति में मेरी लोकप्रियता बढ़ती चली जा रही थी । अब पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो लगता है कि मेरी लोकप्रियता के इस तरह लगातार बढ़ते चले जाने में जाने अनजाने रक्तिमा की भूमिका भी रही होगी । रक्तिमा सुंदर थी, स्मार्ट थी, फ़र्राटे से अंग्रेज़ी बोलती थी, प्रगतिशील लोगों में उसका उठना बैठना था और वह नारीवाद के नए युवा आंदोलन की महत्वपूर्ण अगुआ और करीब करीब बुद्धिजीवी भी मानी जाने लगी थी ।
१२४
***
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र समाज में मेरी लोकप्रियता बढ़ती चली जा रही थी, रुकने का नाम न लेती थी । थोड़े दिनों में ही छात्रसंघ के चुनाव होने वाले थे । लोग मेरे और रक्तिमा दोनों के नाम संभावित प्रत्याशियों के तौर पर लेने लग गए थे । मेरा नाम अध्यक्ष के लिए और रक्तिमा का नाम उपाध्यक्ष के लिए । रक्तरंजित सर और रुधिरवर्णा मैडम - दोनों मेरे और रक्तिमा के सम्बंधों को लेकर उत्साहित दिखते थे । वे जुबान से कुछ कहते तो नहीं थे पर उनकी आँखें बोलती थीं । एक अनीश्वरवादी वैज्ञानिक सोच वाले प्रगतिशील व्यक्ति के लिए यह कहना उचित तो नहीं पर यदि आप अन्यथा न लें तो मैं कहूँ कि मेरी और रक्तिमा की जोड़ी शायद ऊपरवाले ने सेट की थी । परफेक्ट सेटिंग रही । हमारी ख़ुशियाँ अंतहीन थीं । हमारे पाँव जमीन पर न थे, हमारे केश हवाओं के संग अठखेलियाँ खेलते थे । रक्तिमा के ही नहीं, मेरे चेहरे पर भी एक अद्भुत कांति छा गई थी । इसीलिए मैं कहता हूँ कि संसार में सिर्फ शोषण ही नहीं है, सौंदर्य भी है । पर ऐसा कहते हुए मैं डरता हूँ कि प्रगतिशील समाज में मैं कहीं बुर्जुआ रूपवादी न ठहरा दिया जाऊँ और मेरे कैरियर का भट्ठा बैठ जाय । मैं वैसे सावधान टाइप का आदमी हूँ, हर जगह ऐसी बातें नहीं कहता । पर आपसे खुल गया हूँ, इसलिए हल्का सा खतरा ले रहा हूँ ।
वे भारतीय राजनीति में भारी उथल पुथल के दिन थे । जयप्रकाश नारायण का आंदोलन चरम सीमा पर था । रक्तरंजित सर का मानना था कि जयप्रकाश सीआइए के एजेंट थे और साम्राज्यवादी ताक़तों के इशारे पर काम कर रहे थे । वैसे तो इंदिरा गांधी भी बुर्जुवा थीं पर समाजवादी रूस से उनका दोस्ताना था, उनकी कुछ नीतियाँ प्रगतिशील थीं । हमारे जैसे बहुत सारे प्रगतिशीलों का मानना था कि समतावादी

प्रगतिशील समाज की स्थापना में इंदिरा गांधी हमारे लिए मददगार सीढ़ी बन सकती थीं । हमारे लिए पूँजीवादी शक्तियों से जूझना सबसे बड़ी प्राथमिकता थी । इसलिए इंदिरा के हाथ मज़बूत करना हमारा समाजवादी दायित्व था । हमने इस दायित्व का लगनपूर्वक पालन किया । कुछ यूँ कि अक्सर तो कांग्रेस के छात्र संगठन में और हमारे स्टूडेंट्स फेडरेशन में कुछ खास फ़र्क़ न दिखता । बल्कि कुछ लोग तो मजाक में कहते कि स्टूडेंट्स फेडरेशन और सीपीआई वाले तो कांग्रेसियों से भी बढ़ कर कांग्रेसी हो गए हैं । भले ही यह बात मजाक में कही जाती रही हो पर पर इसमें कुछ सच्चाई थी । हमारा दोस्ताना जो इतना अटूट हो गया था । हम पवित्र प्रगतिशील प्रेम के बंधन में बंध गए थे ।

१२५

***

इधर हमारी मुहब्बत कुलाँचे मारती जा रही थी और भविष्य में विवाह की संभावनाएँ हौले हौले दस्तक देने लगी थीं, उधर भारत के राजनीतिक पटल पर भूचाल सा आ गया था । बूढ़े जयप्रकाश ने इंदिरा गांधी की लम्बी नाक में दम कर दिया था । इंदिरा जी को लगा कि कहीं सीआइए वाले जयप्रकाश के माध्यम से देश की जनवादी प्रगतिशील राजनीति की गाड़ी पटरी से न उतार दें और फिर देश प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी शक्तियों के चंगुल में न फँस जाय । पर इंदिरा तो इंदिरा थीं । उन्होंने तत्काल सीआइए और उसके षडयंत्र से निपटने की योजना बनाई । रातोंरात आपातकाल लगाया और लाखों प्रतिक्रियावादियों को जेल में ठूँस दिया । देश एक बहुत बड़े षडयंत्र से बच गया ।

कई नासमझ भोले भाले लोग कहते हैं कि बिना मुक़दमे के लाखों राजनीतिक कार्यकर्ताओं को अनिश्चित काल के लिए कारागार में बंद करना, लिखने पढ़ने पर रोक लगाना - ये अलोकतांत्रिक हरकतें हैं । इंदिरा जी का संजय को देश के नए उदीयमान सूरज की तरह आगे करना भी कइयों को नागवार गुज़रा । इस विषय पर मुझमें, रक्तिमा, रक्तरंजित सर और रुधिरवर्णा मैडम में कभी चाय पर और कभी लंच पर अक्सर गर्मागर्म बहस होती थी । हम इस नतीजे पर पहुँचे थे कि इंदिराजी पर अलोकतांत्रिक और वंशवादी होने का आरोप लगाने वालों की राजनीतिक समझ, खास तौर पर जनवादी राजनीति की समझ, कच्ची है । इन्होंने कॉमरेड लेनिन और स्टालिन के जीवन से कुछ नहीं सीखा । यदि कॉमरेड लेनिन ज़ार के बच्चों को देखकर पिघल जाते, भावुकता में बह जाते तो आदर्श समतामूलक समाज की स्थापना कैसे होती ? आदमी की नजर लक्ष्य पर स्थिर होनी चाहिए, खर पतवार पर नहीं । खर पतवार हटेगा तभी तो नया सुंदर समाजवादी महल बन सकेगा ।

जब जनवाद का बिरवा नाजुक हो और उसे पूँजीवादी और साम्राज्यवादी आँधियाँ घेर लें तो बाग के माली का कर्तव्य क्या है ? पौधे को कँटीले तार के ऊँचे घेरे से घेर कर सुरक्षित करना और अपने बेटे बेटी के हाथों उसकी सुरक्षा की जिम्मेवारी सौंपना । वे डंडा लेकर पहरा देते रहें ताकि आँधियाँ उसे उखाड़ न सकें, बकरियाँ उसे चर न सकें । इंदिरा जी यही तो कर रही थीं । इसमें उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न था । वंशवाद में तो खैर उनकी कोई रुचि थी ही नहीं । संजय का इस्तेमाल वे लोकतंत्र के बिरवे की रक्षा करने के लिए कर रही थीं । सजग माताएँ सदा से यही करती आई हैं ।

इसी दौरान एक खबर आई जिसने मुझे थोड़ा विचलित कर दिया । मेरा पुराना दोस्त चंदन जेल चला गया था । हालाँकि चंदन संघी था और उसका जेल जाना उचित ही था पर चंदन मेरा मित्र भी था, इसलिए जनवाद के प्रति मेरी सम्पूर्ण प्रतिबद्धता और पूँजीवादी शक्तियों से सम्पूर्ण घृणा के बावजूद दिल में हल्का सा दर्द उठा । मुझे लगता है मेरे अंदर पुराने सामंतवादी संस्कारों के कुछ अंश शेष रह गए थे जिसके कारण मुझे ऐसा महसूस हुआ होगा । मैंने बहुत विचार किया तो मुझे लगा कि मेरी वैचारिक प्रतिबद्धता में कुछ कमजोरी रह गई थी जिसे मेहनत करके मुझे दुरुस्त करना चाहिए ।
पर चंदन था तो बचपन का साथी । मैंने उसे लम्बा पत्र लिख कर समझाने की कोशिश की । मैंने लिखा कि पूँजीवाद के दिन जाने को हैं और नूतन जनवादी प्रगतिशील समाज का सूर्य पूर्व दिशा में कभी भी उगने वाला है जिसकी उजास भरी ऊष्मा में हम सब सुख और चैन का समतावादी जीवन जीने वाले हैं । ऐसे में हम सबका उत्तरदायित्व है कि हम आँखें खोलें और इस नए उगते सूर्य का स्वागत करें । यही हमारे और हमारे पुरखों के प्रतिक्रियावादियों पापों का सम्यक प्रायश्चित होगा । मैंने उसे कहा कि वह सुधर जाए, अपने किए के लिए सरकार से माफी माँगे और स्टूडेंट्स फेडरेशन की सहायता ले और मेरी तरह अपने कैरियर को तेज रफ्तार से सरपट दौड़ा दे । इसी में भलाई है और यही उचित मार्ग है ।
१२६

***

जनवादी आंदोलन में इंदिराजी की भूमिका के महत्व को हमारे कुछ सरल वामपंथी समझ न पाए । वे शुद्धतावादी थे, भारतीय समाज और राजनीति की जटिलताओं की उनकी समझ कच्ची थी । इस बात में तो कोई मतभेद न था कि इंदिरा बुर्जुवा थीं पर उनकी समझ में यह बात न आई कि यही बुर्जुवा ताक़त समाजवादी समाज के निर्माण में आवश्यक औज़ार की तरह इस्तेमाल की जा सकती थी । साधन और साध्य का आवश्यक भेद न समझने के कारण यह कन्फ्यूजन फैला था । इंदिरा हमारे लिए साधन थीं । उनके ज़रिए हम पूँजीवादी ताक़तों को पछाड़ सकते थे और प्रगतिशील ताक़तों को मज़बूत करने का रास्ता खोल सकते थे । इस काम में इंदिरा हमारी मददगार हो सकती थीं । एक बार हमारा लक्ष्य प्राप्त हो जाता तो हम इंदिरा को किनारे कर सच्चे समाजवाद के प्रशस्त पथ पर प्रयाण कर सकते थे ।
पर वामपंथियों में में कुछ भोले भाले लोग यह बात समझ न सके । हद तो तब हुई जब अपनी मूर्खता में उन्होंने इंदिरा के विरुद्ध साम्राज्यवादी शक्तियों के बने गठबंधन का सहयोग किया । यह आत्मघाती मूर्खता थी । पर इतिहास बताता है कि क्रांति के पथ पर ऐसी मूर्खताएं होती रहती हैं । रूस में भी हुई थीं । सच्चे क्रांतिकारी को ठंढे दिमाग से वैज्ञानिक तरीके से इन ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का अध्ययन वैसे ही करना चाहिए जैसे कोई रसायनशास्त्री परख नली में किसी रसायन का अध्ययन करता है । समाजशास्त्र और रसायनशास्त्र में कोई मूल भेद नहीं , दोनों प्राकृतिक नियमों के तहत चलते हैं । एक अच्छा वैज्ञानिक गणित के फ़ार्मूलों की तरह पहले से बता सकता है कि कि इस प्रक्रिया में कौन कौन से चरण कब और कैसे आएंगे । बस आपके पास वैज्ञानिक आंख होनी चाहिए । वैसी जैसी कार्ल मार्क्स के पास थी । उनकी

आँखों में संसार के भविष्य का नक़्शा वैसे ही स्पष्ट रहा जैसे आज के जमाने में गूगल मैप में आपके गंतव्य का नक़्शा स्पष्ट रहता है ।
१२७
***
जैसा कि मैंने पहले कहा विश्वविद्यालय की छात्र राजनीति में मेरा, और रक्तिमा का भी, रुतबा बढ़ता चला गया था । छात्र संघ के चुनावों में अभी देर थी पर कॉमरेडों ने मुझे स्टूडेंट्स फेडरेशन का सचिव बना दिया था । इस बात से रक्तिमा और उसके माता पिता बहुत खुश थे । उन्हें लगता था कि मेरे उन्नत भविष्य की खिड़कियाँ खुलती चली जा रही हैं । मुझे तमाम धरनों और बैठकों में शामिल होने के लिए बुलावा आता जहां मैं जोशीले भाषण देता । इधर मैंने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं जिनकी बहुत तारीफ हुई थी । रक्तरंजित सर ने कहा था कि मेरे तेवर जनवादी कवि के हैं और यदि मैं ऐसी ही कविताएँ लिखता रहा और मैंने इस दिशा में मेहनत की तो मैं इस क्षेत्र में काफी आगे जा सकता था ।
वे मुझे अपने संग प्रगतिशील लेखक संघ की गोष्ठी में भी ले गए और प्रतिष्ठित साहित्यकारों से मेरा उदीयमान जनवादी कवि के रूप में परिचय कराया । कई लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि जनवादी कविता का भविष्य मेरे जैसे संभावना से भरे कवियों के हाथों में सुरक्षित है । जब मैंने पहली बार यह प्रशंसा सुनी तो मुझ पर नशा सा छा गया । मुझे लगा कि जब मुक्तिबोध मेरी उम्र के रहे होंगे तब शायद उनको भी ऐसी प्रशंसा सुनने को न मिली हो । मेरा सिर अपने भविष्य के बारे में सोच सोच कर नशे में डूबता सा जाता था । मैं कहाँ से कहाँ आ गया था ।
उन दिनों प्रोफेसर नूरुल हसन देश के शिक्षामंत्री थे । एक महान शिक्षाविद के तौर पर देश में उनकी ख्याति थी । हालांकि कहने को तो वे कांग्रेसी थे पर उनका एक पैर कभी कभी कम्युनिस्ट पार्टी में भी रहता था । वैसे भी कांग्रेस और सीपीआई में बहुत प्यार मुहब्बत, भाईचारे का रिश्ता था । कभी कभी तो यह बताना मुश्किल होता था कि कौन कांग्रेसी है और कौन कम्युनिस्ट या फिर कि कौन कितनी मात्रा में कम्युनिस्ट है और कितनी मात्रा में कांग्रेसी ।
उन्हीं दिनों एक दिन अचानक शिक्षा मंत्रालय से मेरे छात्रावास के पते पर वह पत्र आया । मेरी खुशी और आश्चर्य का अंत न था । अपने सुनहरे भविष्य के बारे में मेरा विचार और पुख्ता हुआ । शाम को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में बोलीविया की अंदरूनी राजनीति के बारे में डिनर पर गोष्ठी थी । मैं वहाँ यह पत्र लेकर पहुँचा । रक्तिमा और उसके माता पिता वहां मौजूद थे ।
१२८
***
मॉस्को में अंतर्राष्ट्रीय प्रगतिशील युवा सम्मेलन हो रहा था । भव्य आयोजन की तैयारी थी । उसी के तहत सोवियत संघ की सरकार ने संसार की तमाम सरकारों से प्रतिनिधिमंडल भेजने का आग्रह किया था । और फिर भारत तो मित्र देश था, प्रगतिशील तो खैर था ही । भारत से बीस युवाओं का प्रतिनिधिमंडल जाना था । उसके लिए अनुदान शिक्षा मंत्रालय के सांस्कृतिक आदान प्रदान बजट के मद से आना तय

हुआ था । सांस्कृतिक आदान प्रदान वैश्विक मैत्री के निर्माण की सीढ़ी रही है । जब तक लोग, विशेष कर युवा, एक दूसरे से मिलेंगे नहीं, विचारों का आदान प्रदान नहीं करेंगे, सांस्कृतिक समझ नहीं विकसित करेंगे, विश्व शांति और मैत्री का बिरवा धरती से कैसे फूटेगा ?
इसी अभियान के तहत युवाओं के नाम चुने गए थे । जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय तो था ही, वहाँ के कुलपति ने मुझे मेधावी नवजात प्रगतिशील बुद्धिजीवी की संज्ञा देते हुए मेरे नाम की सिफारिश की थी जो मंज़ूर हो गई थी । सच कहूँ तो मैं आश्चर्यचकित था क्योंकि कुलपति से मेरी कभी मुलाक़ात हुई नहीं थी, वे पता नहीं कैसे मुझे जानते थे । रक्तरंजित सर का उनके यहाँ आना जाना था पर उस बात का इससे क्या वास्ता ?
मुझे भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था । हमारी यात्रा में सिर्फ दो हफ्ते बाकी थे । मुझे “दक्षिण एशिया में सर्वहारा संघर्ष की दिशा और आधुनिक हिंदी साहित्य" विषय पर पर्चा पढ़ने के लिए कहा गया था ।
१२९
***
यदि मैं कहता हूँ कि मेरे पाँव धरती पर न थे तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है । आप एक क्षण के लिए कल्पना करिए कि जिस शख्स ने भभुआ, मुज़फ़्फ़रपुर और दिल्ली के बाहर कभी कदम न रखा हो, जिसने हवाई जहाज की शक्ल न देखी हो, उसे यदि सरकारी ख़र्चे पर मॉस्को यात्रा का निमंत्रण आए तो उसे कैसा लगेगा ? दिल पर हाथ रखकर आप खुद ही बताइए आप मेरी अवस्था में होते तो आपको कैसा लगता ?
अब आप यह समझ लीजिए कि मैं होशो हवास में न था । मैं जब इंडिया इंटरनैशनल सेंटर की तरफ बढ़ा तो मुझे रास्ते में चलते हुए लड़के, लड़कियाँ, बसें और ऑटो न दिखे । उस समय मेरी स्थिति ऐसी थी कि मैं सड़क हादसे का शिकार हो सकता था । मेरे बाल हवा में उड़ते थे और मस्तिष्क धरती छोड़ कर किसी और दुनिया में सैर करने चला गया था । बस यह समझिए कि मैं बदहवास था, एक अजीबोगरीब नशे में था ।
किसी तरह हाँफता हुआ मैं इंडिया इंटरनैशनल सेंटर पहुँचा । मुझे देर हो गई थी । मैं पसीना पोंछते हुए धीरे से बिना आवाज किए पीछे की सीट पर बैठा । मैंने नजर घुमाई तो आगे की पंक्ति में रक्तिमा और उसके माता पिता को बैठे हुए देखा । रक्तिमा ने एक बार पीछे मुड़कर देखा, उसकी आंखों से मेरी आँखें मिलीं । वह हल्के से मुस्कुराई और एक क्षण बाद ही मेरे चेहरे का भाव देख कर हैरान सी दिखी ।
एयरकंडीशन्ड हॉल में मेरे माथे का पसीना चूता ही जा रहा था, रुकने का नाम न ले रहा था । मैं बार बार रूमाल से पसीना पोंछता गया । फिर मैंने हलक में अंटका थूक घोंटा और हल्की सी संभ्रांत खंखार निकाल कर गला साफ किया । मेरे बगल में बैठे एक अधेड़ सज्जन और उनके संग बैठी महिला ने मुड़ कर अजीब सी नजर से मुझे देखा । मंच पर खड़े एक दुबले पतले सज्जन जो सफेद कुर्ते और नीली जीन्स में थे और जिनकी आँखों के नीचे चश्मा लटक गया था, बोलीविया के बारे में कुछ बोल रहे थे ।

पर मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था । अंत में मुझसे रहा नहीं गया । मैं उठ कर गुसलखाने चला गया । वैसे मुझे तलब नहीं लगी थी । वहाँ जा कर मैंने ढेर सारी गहरी सांसें लीं, झूठमूठ में पेशाब किया, ठंढे पानी से चेहरा धोया और वहाँ रखे पेपर टॉवेल से पोंछ लिया । तब जा कर मेरी जान में जान आई, मैं स्थिर हुआ और धीमें क़दमों से वापस हॉल में लौट कर अपनी सीट पर बैठ गया । तब तक कुर्ते और जीन्स वाले सज्जन का व्याख्यान समाप्त हो चुका था और गहरे लाल रंग की साड़ी में थुलथुल सी दिखती एक साँवली प्रौढ़ा ने जिनके माथे पर बड़ी लाल बिंदी चमक रही थी, मंच संभाल लिया था ।

१३०

***

अब आपसे क्या छुपाना कि चे ग्वेवारा का अनुयायी होते हुए भी उस समय मुझे बोलीविया और लैटिन अमेरिका के सर्वहारा संघर्ष की बातें समझ में नहीं आ रही थीं । मैं तो बस गोष्ठी के समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था । कब विदुषी महिला का भाषण समाप्त हो और मैं रक्तिमा तक यह समाचार पहुँचाऊँ । पर दिल में एक हल्की सी कचोट भी थी । काश, रक्तिमा भी मेरे साथ इस यात्रा पर चलती । पर मुझे इस बात का अहसास था कि आदमी जो चाहे वह सब नहीं हो सकता और यह भी कि लालच बुरी बला है और संतोष परम धन है ।

बहरहाल भाषण समाप्त हुआ और लोग बगल के हॉल में डिनर के लिए बढ़े । काफी लोग थे । मैं उन्हें तीर की तरह चीरता हुआ आगे बढ़ा । मैंने झुक कर सर और मैडम का अभिवादन किया और शिक्षा मंत्रालय से मिला पत्र कांपते हाथों से रक्तिमा के हाथों में दिया । रक्तिमा को समझ में नहीं आया कि मैं किस बात के लिए हड़बड़ाया हूँ, मेरा चेहरा अजीब सा क्यों हुआ है । उसकी शक्ल पर हैरानगी का भाव था । वैसे भी मेरी अजीबोग़रीब हरकतों के कारण रक्तिमा मुझे बुद्धू समझती थी और मुझपर हँसती थी । पर उसकी हँसी में दुलार और चोन्हां का भाव रहता था । जब वह वैसे हँसती और अजीब सी नज़रों से मुझे देखती तो मैं शर्मा जाता ।

वे जहां खड़े थे, वहाँ रोशनी कुछ कम थी । रक्तिमा पत्र ले कर किनारे रोशनी के नीचे चली गई । वह लिफ़ाफ़ा खोल रही थी और मैं उसका चेहरा देख रहा था । अचानक उसके चेहरे पर हर्ष और आश्चर्य का मिला जुला भाव उतरा और वह चहकती हुई वहाँ आ गई जहां हम खड़े थे । उसने मुझे बधाई देते हुए अपना हाथ बढ़ाया जिसे मैंने सकुचाते हुए अपने हाथ से मिलाया । फिर रक्तिमा ने वह पत्र अपने पिता की ओर बढ़ा दिया । रक्तरंजित सर ने पत्र सरसरी नजर से पढ़ा । उनके चेहरे के भाव में कोई परिवर्तन नहीं आया । उन्होंने डिनर की टेबुल की तरफ बढ़ने का इशारा किया जहां भाँति भाँति के व्यंजन और पेय हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

१३१

***

रक्तरंजित सर ने पत्र पढ़ने के बाद मैडम की ओर बढ़ाया । मैडम पढ़ कर खुश हुईं और उन्होंने मुझे बधाई दी । खाना बड़ा लज़ीज़ था । पुलाव, नान, कोफ़्ता, मुर्ग़ मुसल्लम, फ्रूट क्रीम और दो तीन तरह की

वाइनें । भोजन के बाद हम लौट गए । रक्तरंजित सर ने अपनी कार में मुझे छात्रावास तक छोड़ दिया । रात मैं ठीक से सोया । सुबह तक ख़ुमार काफी हद तक उतर चुका था और मेरा दिमाग हल्का लग रहा था । नहा धो कर मैं निकला तो हिन्दी विभाग में उधर दूर से आती रक्तिमा दिख गई । नीली जीन्स और सफेद कमीज में काला धूप का चश्मा लगाए किसी फिल्म की हीरोइन से कम नहीं लग रही थी । मैंने हाथ से इशारा कर बुलाया और हम कैंटीन में बैठ गए । मैंने कॉफी ऑर्डर की ।
मैंने उसके भी मेरे संग मॉस्को जाने की बात उठाई । रक्तिमा ने कहा कि कितना अच्छा होता यदि ऐसा हो पाता पर मुश्किल यह आ गई कि मेरी रूस यात्रा के हफ्ते भर बाद ही रक्तिमा को नारीवाद पर हो रहे एक युवा सेमिनार में भाग लेने के लिए क्यूबा जाना था । इसलिए दोनों को एडजस्ट करना मुश्किल होता । फिर उसने बताया कि पिछले साल ही एक युवा सम्मेलन में वह मॉस्को और पीटर्सबर्ग हो आई थी ।
इधर उधर से पता लगा कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से मॉस्को की इस कॉन्फ्रेंस के लिए एक और छात्र का चुनाव हुआ था - मेघनाद तिवारी । रूसी भाषा में कोई दस साल से एम फ़िल का छात्र था । बिहार का रहने वाला था । मेरी उससे कभी मुलाक़ात नहीं हुई थी ।
मैं यात्रा की तैयारियों में लग गया । जल्दी जल्दी तीन सूट सिलवाए । पैसे नहीं थे और इतनी जल्दी घर से आ नहीं सकते थे । दोस्तों से उधार ले कर काम चलाया । पिताजी को तार कर दिया ।
१३२
***
वे दो सप्ताह कैसे बीते हैं मैं बताऊँ तो किस तरह बताऊँ । दोस्तों की बधाइयों का सिलसिला, पर्चा लिखने की तैयारियाँ, मॉस्को शहर के बारे में जानकारियाँ एकत्र करना, कायदे के कपड़े सिलवाना । सबसे बड़ी दिक्कत गर्म कोट की थी । मैंने मॉस्को की हाड़कंपाऊ बर्फ़ीली सर्दियों के बारे में सुन रखा था । लोग भाँति भाँति की सलाह देते । किसी ने कहा यहाँ मॉस्को की सर्दियों के लायक कोट नहीं मिलेगा, वहीं मॉस्को में ख़रीदना । पर उसके लिए पैसे कहाँ से आते ? मेरे पास उधार लेकर कुछ पैसे हो गए थे, पर रुपए तो मॉस्को में चलते नहीं । और विदेशी मुद्रा के नियम बहुत कड़क थे । रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया को दरख्वास्त दो तो दस डॉलर मिलते थे । अब आप बताइए दस डॉलर में कहां और कैसा कोट मिलता !
कहते हैं न कि संसार में कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका समाधान न हो । बस आँख खोलने की देर है । जैसे अब इसी गरीबी, शोषण और असमानता को देखिए । कितना आसान समाधान निकल आया कि नहीं - मार्क्सवाद के रूप में ।
हुआ यह कि जाने के दो दिन पहले ही शिक्षा मंत्रालय से एक रजिस्टर्ड पत्र आया । संयोग से मैं कमरे में ही था वरना बहुत गड़बड़ हो जाती । पत्र के साथ पांच सौ अमरीकी डॉलर का ड्राफ्ट था जो कि शिक्षा मंत्रालय ने रास्ते के जेब खर्च के लिए अनुदान के तौर पर भेजा था । मेरी खुशी का ठिकाना न रहा । मैं अब मालामाल था । कोट वाली समस्या भी हल हो गई । स्टूडेंट्स फेडरेशन की बैठक में बात उठी तो

एक सज्जन ने जो पहले रूस जा चुके थे और जिनके पास कायदे का गरम कोट था, अपना कोट मुझे उधार देने का ऑफ़र किया । बस, अब तो सब बात बन गई । पर्चा भी जाने के एक दिन पहले लिख कर तैयार हो गया । मेरी अंग्रेज़ी थोड़ी ढीली थी । आपको तो पता ही है मैं पास विदाउट इंगलिश होते होते बचा था । पर रक्तिमा तो कॉन्वेंट में पढ़ी थी, फर्राटेदार अंग्रेजी बोलती थी, मैंने उसे दिखाया । बेचारी ने काट कूट कर ठीक किया और पर्चे की दो कायदे से टाइप की हुई प्रतियाँ मुझे ला कर दीं । मेरा हृदय रक्तिमा के प्रति न सिर्फ प्रेम बल्कि आभार से भर उठा । मैं आँखें मल मल कर समाजवाद और नारीवाद के प्रति उसकी लगन, उसकी प्रतिबद्धता को देखता और अचरज से भर उठता । ऊपर से मेरे लिए उसका प्रेम बढ़ता ही चला जा रहा था, कहीं किसी कमी का कोई चिन्ह कम से कम मुझे तो नहीं दिखा । मुझे अक्सर लगा कि अमर प्रेम शायद इसी को कहते होंगे ।

१३३

***

फिर वह दिन आया जब हमें मॉस्को के लिए निकलना था । मेघनाद तिवारी से मेरी मुलाक़ात पहले ही हो चुकी थी । मेघनाद मुझसे उम्र में काफी बड़े थे । उनकी हल्की सी तोंद थी । औसत लम्बाई, आबनूस की तरह गहरा सांवला रंग, गोल चेहरा, घुंघराले बाल, चमकती हुई, सामने वाले को घूरती हुई सी आँखें । मेघनाद भी बिहार के रहने वाले थे । पटना विश्वविद्यालय से पढ़ कर आए थे । रूसी भाषा में शोध कर रहे थे । मेघनाद अक्सर चुस्त पतलून और आधी बाँहों की कमीज पहनते जिनके बटन बहुत टाइट थे और अक्सर जब बटन खिंच जाते तो छाती के काले बाल झलकते । मेघनाद को पसीना बहुत निकलता था और उनके पसीने की गंध आम आदमी के पसीने की गंध जैसी न थी, उसकी तासीर दूसरी थी । शिष्टाचारवश लोग उनके पास खड़े तो होते पर बहुत देर तक टिक न पाते, किसी न किसी बहाने दूर खिसक जाते ।

प्रतिनिधिमंडल में अठारह और लोग थे । उनसे वहीं हवाई अड्डे पर ही मुलाक़ात हुई । इनमें से आठ लड़कियाँ थीं । अधिकांश बंगाल और केरल के थे । हमने एक दूसरे से परिचय कर लिया ।

मेरे पास सामान काफी था । लोगों ने खाने पीने के बारे में डरा दिया था । इसलिए एहतियातन मैंने अचार, मठरी, लिट्टी और चोखा पैकेट्स में भर कर सूटकेस में रख लिया था । परदेस है - पता नहीं वहाँ क्या खाने को मिले न मिले । थोड़ा बहुत देसी सामान रहेगा तो राहत रहेगी । पर लिहाज और संकोच के मारे मैंने यह बात किसी को बताई नहीं थी ।

हमें अफ़ग़ान एयरलाइंस से काबुल होते हुए मॉस्को जाना था । उन दिनों अफगानिस्तान सोवियत खेमे में था और वहाँ समाजवादी शासन था ।

हमारा चेक इन हो गया, सेक्योरिटी वग़ैरह से निकल कर कर हम बीस लोग विमान के गेट बाहर प्रतीक्षा में बैठ गए । थोड़ी देर में ही घोषणा हुई :

"अफ़ग़ान एयरलाइंस से काबुल होते हुए मॉस्को जाने वाले यात्री कृपया विमान की ओर प्रस्थान करें"

मेरा दिल धड़का, मैंने आखिरी बार दिल्ली के शौचालय का इस्तेमाल किया और हल्की सी घबराहट और उत्तेजना के मिले जुले भाव से विमान की ओर प्रस्थान किया ।

१३४

***

मुझे बार बार यह बताना अच्छा नहीं लगता कि इसके पहले हवाई जहाज में बैठने की तो दूर, मैंने नज़दीक से कभी हवाई जहाज देखा तक न था । मैं हक्का बक्का था, आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहा था । मैं कन्धे पर अपना झोला लिए जहाज के दरवाजे में जैसे ही घुसा, उस अफ़ग़ान परिचारिका ने मुगले आज़म फिल्म में मधुबाला या अनारकली के अंदाज में झुक कर मुझे सलाम किया । मेरी तो जान ही निकल गई । मैंने भी उसी अंदाज में झुक कर उसके सलाम का जवाब दिया । पता नहीं वह विमान परिचारिका थी या फ़िरदौस से उतरी कोई हूर ! मैंने कभी स्वप्न तक न देखा था कि एक दिन ऐसा आएगा जब मैं हूरों से मिलूँगा । और यहाँ एक तो क्या एक दर्जन हूरें थीं । हूरों का मेला सा सजा था । अब आप यह समझ लीजिए कि मेरी साँस रुक गई, दिल की धड़कन बंद हो गई, जान निकल गई, होश गुम हो गया ।

फिर एक ब एक होश आया तो मैंने खुद को आगे से पाँचवीं पंक्ति में खिड़की के पास वाली सीट पर बैठा हुआ पाया । मेरा झोला शायद परिचारिका ने ऊपर के खाते में रख दिया था । अच्छा हुआ उसने ऐसा किया वरना मेरी पोल ही खुल जाती । उसका हृदय अवश्य कोमल और प्रेमपूर्ण रहा होगा । मुझसे तो वह खाता खुलता नहीं, बेइज्जती अलग से होती । मेरे बगल में ही मेघनाद तिवारी की सीट थी । अचानक मेघनाद सर ने दायीं तरफ मुँह मोड़ा और उनकी बाईं काँख से बदबुओं का रेला मेरी नाक की तरफ आया । मैं हूरों के देस से जमीन पर आ गया था ।

ऊपर सामने विमान की छत के पास स्क्रीन पर रोशनी में इबारत चमक रही थी : कृपया अपनी सीट बेल्ट बाँध लें । अब मैं चक्कर में पड़ा । मैंने अग़ल बगल आगे पीछे झाँक कर देखने की कोशिश की कि लोग सीट बेल्ट कैसे बाँधते हैं । करते करते मैंने सीट बेल्ट बाँधना सीख लिया । कहते हैं न कि आदमी मेहनत करे तो क्या न सीख ले । अब मैं आराम से बैठ गया । मैंने इधर उधर देख कर बहुत कुछ सीखा । जैसे कि सीट की दाईं तरफ का बटन जोर से दबाओ तो सीट पीछे झुक जाती है, दूसरा बटन दबाओ तो रोशनी होती है और हूर आपकी खबर लेने आती है । पर अभी विमान खड़ा था और लोगबाग अपनी अपनी सीटों पर बैठने का काम कर रहे थे ।

१३५

***

मित्रों, मैं कोई भी बात सच्चाई से बताने में झिझकता हूँ । क्या पता लोगबाग अर्थ का अनर्थ करें, बात का बतंगड़ बनाएं, राई का पहाड़ करें । कोई ठिकाना नहीं है । ठीक है कि मैं गवंई गँवार हूँ, पर इतना सीधा भी नहीं हूँ । मैंने भी शहर देखा है । जैसे अब यही बात देखिए, कुछ पाठकों को ग़लतफ़हमी हो सकती है कि पहले मेरा रूपमती स्त्रियों से पाला नहीं पड़ा होगा । ठीक है मैं भभुआ से मुजफ्फरपुर होता

हुआ यहाँ आया हूँ पर अब तो दिल्ली में भी मैंने काफी अरसा बिताया है । आप जिसे लुटियन्स दिल्ली बोलते हैं, उसकी झाँकी भी देखी है । और जहां तक रूपमती स्त्रियों का प्रश्न है, मैंने भी पर्दे पर ही सही डिम्पल, ज़ीनत और परवीन को देखा था । और फिर दूर क्यों जाऊँ, रक्तिमा और रक्तिमा की मम्मी क्या रूपमती नहीं थीं ?

पर झूठ कैसे बोलूँ । इन अफ़ग़ान हूरों के आगे भारतीय रूपमतियां फीकी पड़ गईं । गेहुआं रंग, चेहरे पर चमकता फ़िरदौसी नूर । भारतीय स्त्रियों की तरह कुपोषण की शिकार नहीं लगती थीं, हृष्ट पुष्ट सलोनी देह । बड़ी बड़ी स्वप्निल आँखें, रेशम की तरह चमकते बाल । ऊपर से उनके परिधान ! कौन न मोहित हो जाय । हल्के क्रीम रंग के स्कर्ट पर गहरे लाल रंग का ब्लाउज और सिर को क़रीने से ढंकता हुआ चाँदी की तरह चमकता सफेद हिजाब । जब वे बोलतीं तो कानों में शहद घुलने लगता । मैं तो जैसे किसी दूसरे लोक में आ गया ।

कठिनाई बस यह आ गई कि मेरे पास सौंदर्य के वर्णन का सलीक़ा नहीं है । यह तो बस किसी कवि या सौंदर्यशास्त्री के वश की बात है । वैसे यह सच है कि मैंने भी कुछ कविताएँ लिखी थीं और मैं कवि बनने की ओर बढ़ता जा रहा था, पर मेरी कविताएँ प्रगतिशील थीं, जनवादी थीं । आपको तो पता ही है जनवादी साहित्य में रूपवाद का निषेध है ।

लब्बोलुबाब यह कि मैं सौंदर्य के सागर में हिलोरें ले रहा था । बस यही मेघनाद तिवारी की दिक्कत बीच में आ गई थी ।

१३६

***

अब सब यात्री अपनी अपनी सीटों पर कायदे से बैठ गए थे । लाउडस्पीकर पर सुरक्षा के बारे में सूचना दी गई - बारी बारी से - पहले पश्तो, फिर हिंदी और अंत में अंग्रेज़ी में । फिर एक परिचारिका ने विमान के बीच में खड़े होकर दुर्घटना की स्थिति में हमें किस दरवाजे से कूदना चाहिए, ऊपर से गिरते ऑक्सीजन मास्क का प्रयोग कैसे करना चाहिए - आदि पर डिमांस्ट्रेशन दिया । मैं पहली बार हवाई जहाज में बैठा था - डर गया ।

फिर हवाई जहाज के सब दरवाजे बंद कर दिए गए, परिचारिकाओं को सीटों आदि को ठीक से जाँचने का निर्देश हुआ और विमान का इंजिन घुड़घुड़ाया । थोड़ी देर तक इंजिन घुड़घुड़ाता रहा । फिर बहुत धीमी गति से, साइकिल से भी धीमी गति से, रनवे पर चलने लगा । धीरे धीरे उसने रफ्तार पकड़ी, पहियों के टार्मैक पर रगड़ने से विमान में थोड़ा हड़हड़ हुआ और मैं अपनी कुर्सी के हत्थों को दोनों हाथों से कस के पकड़ कर बैठा रहा । रफ्तार बढ़ती गई । अब हमारा जहाज करीब करीब रनवे के अंत तक पहुँच ही रहा था कि अचानक जमीन से उठ गया । यह मेरे लिए रोमांचकारी अनुभव था । मेरे मुँह से चीख निकलने ही वाली थी । नहीं निकली वरना कितनी भद्द मचती ।

विमान धीरे धीरे आसमान में उठने लगा । और मेरा भाग्य तो देखिए, मुझे खिड़की के किनारे वाली सीट मिली थी । सुबह के कोई दस बजे थे । आसमान साफ था, सूरज की गर्म रोशनी हर तरफ भरी थी ।

विमान की खिड़की से रोशनी मेरे चेहरे पर गिरती और चमकती । मैंने खिड़की से झाँक कर नीचे देखा । मैंने ऐसा नजारा न देखा था । नीचे हमारा दिल्ली शहर सूरज की रोशनी में नहाया चमचम चमकता मुस्कुरा रहा था । मुझे दिल्ली शहर पहले कभी इतना सुंदर न दिखा था । एक भी गंदी नाली का पता न था । सड़कों पर छोटी छोटी बच्चों के खिलौनों जैसी गाड़ियाँ रेंगती थीं । मकानों और सड़कों के बीच में पेड़ थे । इतने पेड़ हमारी दिल्ली में हैं - मुझे न पता था । कैसा सुहावना मंज़र था । धूप और हवा का खेल चलता तो सारा शहर वैसे झिलमिल करता जैसे बचपन में हाथ से बनाए कैलिडोस्कोप में चूड़ियों के टुकड़े झिलमिलाते थे ।
मैंने दोनों हाथ जोड़कर खिड़की के बाहर दिख रहे अपने शहर को प्रणाम किया । मेघनाद तिवारी ने मुझे गुस्से और अचरज के मिले जुले भावों से भरी आँखों से घूरा ।
१३७
***
देखते देखते हमारा हवाई जहाज ऊँचे, और ऊंचे आसमानों में उड़ता चला गया । ऐसा अद्भुत दृश्य था कि मेरी नजर खिड़की से हटती न थी । मेरा प्यारा शहर दिल्ली लगातार छोटा होते हुए अंत में आँखों से ओझल हुआ । धुनी रुई के फाहों से सफेद मुलायम बादलों ने अचानक जहाज को छोपा । जहाज कभी उन बादलों के ऊपर चला जाता और बादलों पर धूप बरसती, कभी हम बादलों के बीच से गुज़रते और फिर कभी बादलों के नीचे आ जाते । कुछ यूँ कि जैसे गली के छोटे बच्चे आइस पाइस का खेल खेल रहे हों । धूप खिड़की के रास्ते मेरी देह पर कभी तेज झरती और मैं गर्माहट के रोमांच से कांप उठता तो कभी मंद पड़ जाती और मुझे हल्की सी सिहरन होती ।
मैंने खिड़की से नजर हटा कर सामने देखा तो सीट बेल्ट बाँधने का साइन जा चुका था । पर दुबारा बाँधने में दिक्कत हो और भद्द मचे - इस भय से मैं सीट बेल्ट बाँधे रहा । तभी हमारे बगल से गुज़री एक परिचारिका मेरी तरफ देख कर हल्के से मुस्कुराई और मेरा दिल धक से रह गया ।
अब सोचता हूँ तो लगता है दिल्ली शहर से विदा होते हुए खिड़की से भावपूर्ण नज़रों से छूटते हुए दिल्ली शहर को देखना और हाथ जोड़ कर प्रणाम करना एक मूर्खतापूर्ण हरकत थी जिस पर कायदे से मुझे लज्जित होना चाहिए । कामरेड मेघनाद की आँखों में मेरी इस हरकत के लिए जो हिक़ारत का भाव था - गलत न था । सर्वहारा समाज के प्रगतिशील क्रांतिकारी कार्यकर्ता से इस तरह के दक़ियानूसी पुरातनपंथी व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती । प्रगतिशील समाज यथार्थ की नींव पर खड़ा है, उसमें इस तरह की लिजलिजी भावुकता के लिए कोई जगह नहीं । जो लोग ऐसी छोटी बातों पर भावुकता के शिकार होंगे वे बुर्जुआ ताक़तों से क्या ख़ाक लड़ेंगे ?
पर आप सुधी पाठक हैं । मुझे पता है आपका व्यवहार मेरे प्रति संवेदना से भरा होगा, मैत्रीपूर्ण होगा । आप मुझे अवश्य सफाई का मौका देंगे । बात यह थी कि मेरे पुरातनपंथी मनुवादी संस्कार कमजोर तो हो गए थे, पर पूरी तरह गए नहीं थे । प्रगतिशीलता के बाड़ में मैं अभी नन्हा चूज़ा था, फुदकना सीख

रहा था । आपको विश्वास दिलाता हूँ - अब मैं पत्थर की तरह ठोस हूँ, भोगे हुए यथार्थ के मार्ग का पथिक हूं, ओछी भावुकता को मैं अपने पास जल्दी फटकने नहीं देता ।
१३८

***

घोषणा हुई कि हमारा विमान अब तीस हजार फ़ुट की ऊंचाई पर उड़ रहा है । मुझे रोमांच हो आया । मैंने खिड़की के बाहर देखा । बादल का एक टुकड़ा न था । सामने सूरज था । अपने सम्पूर्ण सौंदर्य में हमारे सामने चमकता हुआ । सारा विमान दोपहर की चढ़ती धूप में नहा रहा था । मैंने हिम्मत करके सीट बेल्ट खोल दिया । एक परिचारिका मुस्कुराती हुई आई और उसने सीट के सामने की सीट से चिपके टेबुल को नीचे करने के लिए मुझसे कहा । मैं घबरा सा गया । फिर मेघनाद सर ने मेरी तरफ अजीब सी नज़रों से देखा और मेरे और अपने सामने के नन्हें टेबुल गिरा दिए । अब हम चाय नाश्ते के लिए तैयार थे । परिचारिका ने चाय या कॉफी का ऑप्शन दिया । मैंने चाय चुनी और मेघनाद सर ने कॉफी । एक नन्हें से प्लेट में मेरे सामने के नन्हें टेबल पर परिचारिका ने चाय, चीनी की पुड़िया और प्लास्टिक के कवर में बंद कोई चीज रखी जिसे मुझे बाद में मालूम हुआ लोग बन कहते हैं । हमारा सत्कार दामाद की तरह हो रहा था ।

मैं नाश्ता करता जाता, खिड़की के बाहर झाँकता जाता । अचानक खिड़की के बाहर एक पर्वत श्रृंखला उभरी । ऊँचे नंगे पहाड़ और गहरी घाटियाँ । अद्‌भुत दृश्य । एक ऊँचे पहाड़ से गुज़रो तो फिर एक घाटी से उतरने के तुरंत बाद दूसरे ऊँचे पहाड़ के नुकीले शीर्ष को देखो । यह हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला थी । हम कांधार की ओर बढ़ रहे थे । कांधार - कैकेयी का देश, काबुलीवाला का देश । मुझे बलराज साहनी की याद आई, मंथरा, कैकेयी, शकुनि की याद आई । मैं फिर रोमांचित हुआ ।

देखते देखते ही हम उस ऊँची पर्वत श्रृंखला के पार निकल रहे थे । अब हमारे नीचे छोटी बेतरतीब बिखरी पर्वत श्रृंखलाएं थीं । थोड़ी देर बाद घोषणा हुई - अब हम थोड़ी देर में ही काबुल हवाई अड्डे पर उतरने वाले हैं, यात्रीगण शौचालय का प्रयोग करने से बाज आएँ, सीट बेल्ट ठीक से बाँध लें । मैंने सीट बेल्ट बाँधने की कोशिश की । न बंधी । कॉमरेड मेघनाद ने मेरी दिक्कत समझी, मेरी मदद की । मैंने फिर खिड़की
से झाँक कर देखा । नीचे, बहुत नीचे, पहाड़ियों के बीच बच्चों के खिलौने की तरह एक नन्हीं सी बस्ती धूप में जगमगा रही थी । मैंने अनुमान लगाया - हो न हो यही काबुल है । विमान शहर के ऊपर कुछ देर तक मँडराता रहा । फिर धीरे धीरे नीचे उतरने लगा । कानों में पहले एक अजीब सा खिंचाव महसूस हुआ जो फिर दर्द में बदला । विमान उतरता जाता, नीचे का शहर बड़ा होता जाता । देखते देखते अब तो शहर के मकान दिखने लग गए । धूप में चमकते सफेद मकान । बीच में पहाड़ी खेत । काबुल घाटी में बसा सा दिखता था । अरे, यह क्या, अब तो नन्हीं नन्हीं, रेखाओं की तरह सड़कें दिखने लगीं । फिर उन सड़कों पर ट्रकें और मोटरगाड़ियां दिखीं - खिलौनों जैसीं । फिर काबुल हवाई अड्डे की बिल्डिंगें दिखीं । रूखी सूखी, उजड़ी हुई सी । अचानक विमान में जोर से हलचल हुई, हिचकोले उठे । विमार रनवे पर

उतर रहा था । अचानक कानों में से जैसे हवा सी निकली और खिंचाव चला गया । विमान की गति बहुत तेज थी पर पाइलट ने शायद ब्रेक लगाए । घरघराहट की आवाज बढ़ती गई, विमान की गति कम होती गई और फिर गति धीमी होती हुई रुकी और विमान खड़ा हो गया । यात्रियोँ ने हर्षोन्माद में जोर जोर से तालियाँ बजाईं ।

घोषणा हुई : काबुल में आपका स्वागत है । स्थानीय समय के अनुसार इस समय दोपहर का एक बजा है । बाहर का तापमान पचीस डिग्री सेंटीग्रेड है । मॉस्को जाने वाले यात्री अपनी सीटों पर बैठे रहें । काबुल में उतरने वाले यात्री विमान के दरवाज़ों के खुलने और सीट बेल्ट बांधने के साइन के हटने की प्रतीक्षा करें ।

१३९

***

हवाई जहाज खड़ा हो गया था और यात्रियों में जहाज से जल्दी से जल्दी उतरने की होड़ लग गई थी । विमान के दरवाजे अभी खुले न थे और सीट बेल्ट बाँध कर रखने का साइन अभी हटा न था । लोग अपनी अपनी सीटों पर खड़े हो गए थे । देखा देखी मैं भी खड़ा होने ही वाला था कि अचानक मेरी नजर कॉमरेड मेघनाद पर पड़ी जो मुझे गुस्से से देख रहे थे । उनकी नजर पड़ते ही मैं अपनी सीट पर और धँस गया । मुझे हमेशा इस बात का आभास था कि मेरे हाथों से कुछ ऐसा न हो कि कोई भद्द मचे । तभी एक बच्चे की जोर जोर से रोने की आवाज आई और एक अफ़ग़ान महिला दूसरों को धक्का देती हुई शौचालय की तरफ तेजी से भागी और उसे समझाने के लिए भूरी आँखों वाली परिचारिका उसकी तरफ चल पड़ी । एक बूढ़े सरदार जी ने ऊपर का कैबिनेट खोला तो पटाक से एक बैग नीचे बैठी जवान लड़की के सिर पर गिरा । फिर सरदार जी और उस लड़की में झगड़ा शुरु हुआ और कई लोग बीच बचाव में आ गए ।

एक मोटी सरदारनी ने जिसने नीले रंग की सलवार कमीज पहन रखी थी और जिसके सिर पर पीले रंग का दुपट्टा था, बूढ़े सरदार को झिड़का : दार जी, इतनी उम्र हो गई और हड़बड़ी न गई । अभी तो गेट भी नहीं खुला है और तुमने केबिन खोल दिया, मेरी बच्ची को चोट लग जाती तो ? लोग बूढ़े हो जाते हैं पर उनकी अक़्ल वहीं की वहीं रहती है ।

बूढ़े सरदार ने उस औरत को आँखें तरेर कर देखते हुए कुछ कहा जो समझ में नहीं आया । फिर एक नौजवान अफ़ग़ान लड़का उस मोटी सरदारनी को पश्तो में कुछ समझाने लगा ।

अचानक विमान के दरवाजे खुले और यात्री उनकी तरफ भागे । उनमें कुछ अफ़ग़ान थे, कुछ भारतीय, कुछ रूसी । चारों तरफ अफ़रातफ़री फैली ।

थोड़ी देर में ही विमान आधा खाली हो गया । काफी सारे यात्री वहीं काबुल में उतर गए थे । फिर तीन चार सफाई कर्मचारी विमान में घुसे और कचरा बटोरने लगे । जो औरत शौचालय में घुसी थी, वहीं अंटक गई थी । उससे दरवाजा नहीं खुल रहा था । वह जोर जोर से अंदर से दरवाजा पीट रही थी । काली

आँखों वाली एक परिचारिका ने दरवाजा खोल कर उसे बाहर निकाला और उसे पश्तो में जोर जोर से डाँटने लगी ।
अब विमान में शांति फैल गई थी । विमान के दरवाजे फिर से बंद हो गए थे और अपनी सीट पर लुढ़का जाड़ों की गुनगुनी धूप में मैं ऊंघने लगा था ।
१४०
***
कोई डेढ़ घंटा हवाई जहाज वहीं खड़ा रहा । इस बीच काबुल से मास्को जाने वाले बहुत से यात्री विमान में चढ़े । करीब करीब सारे नये यात्री अफ़ग़ानी या रूसी थे । काफी बड़ी संख्या में अफगान और सोवियत सेना के अफ़सर भी चढ़े । पहले की तरह ही सुरक्षा के इंतज़ाम और दुर्घटना की स्थिति में यात्रियों के कर्तव्यों के बारे में घोषणा हुई । एक परिचारिका ने विमान के बीच में खड़े हो कर हादसे की हालत में निकास वग़ैरह का प्रदर्शन दिया । मैं इस बात से फिर डरा । अब मुझे सीट बेल्ट खोलने और बाँधने की प्रैक्टिस हो गई थी । मैंने बेल्ट ठीक से बांध लिया और कुर्सी भी सीधी कर ली ।
विमान का इंजिन गुस्सैल कुत्ते की तरह घुरघुराया, स्टार्ट हुआ । पश्तो, रूसी और अंग्रेजी भाषाओं में विमान के चल पड़ने, सीट बेल्ट वग़ैरह ठीक से बाँधने के बारे में फिर से घोषणा हुई । परिचारिकाओं ने सब यात्रियों के बेल्ट बांधने और सीट सीधी करने का इत्मीनान कर लिया ।
विमान धीरे धीरे घुरघुराता हुआ आगे बढ़ा । कोई आधा किलोमीटर आगे जाकर बाईं तरफ मुड़ा । सामने नाक की सीध मे बहुत दूर तक रनवे था । विमान ने उस पर चलना शुरु किया । पहले धीरे धीरे चला, फिर रफ्तार तेजी से बढ़ती चली गई और देखते देखते ही धरती छोड़ चला । अब काबुल शहर की खूबसूरत वादियाँ हमारे विमान के नीचे थीं । धूप अब भी चमक रही थी । धीरे धीरे काबुल शहर हमारी आंखों से ओझल हुआ और हम कभी बादलों के ऊपर, कभी उनके संग और कभी नीचे तैरने लग गए । धूप कभी आती कभी जाती । अब हम बहुत ऊँचे आसमानों में थे । घोषणा हुई कि हमारा विमान अब पैंतीस हजार फ़ुट की ऊंचाई पर है । हमारी बाईं तरफ उज़बेकिस्तान की राजधानी ताशकंद है । मुझे स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री की याद आई और मैं भावुक हो उठा ।
काबुल हवाई अड्डे से जब विमान ने उड़ान भरी तो परिचारिकाओं ने अपने परिधान बदल लिए । अब उनके सिर पर हिजाब न था । अब वे क्रीम रंग के बिना बांह वाले ब्लाउज और लाल मिनी स्कर्ट में थीं । उन्होंने तरह तरह के हेयर स्टाइल बना लिए थे । किसी के बाल खुले आगे पीछे लहराते, किसी के जूड़े में बंधे होते । उनके सादे चेहरे अब ताजा ताजा मेक अप में चमचम करने लगे थे । हमारी तरफ की परिचारिका जो पहले हिजाब में भी इतनी खूबसूरत थी, अब तो बला ढाने लगी । अपने रेशमी चमकते बालों में वह जीनत अमान को मात दे रही थी । मैं यह परिवर्तन देख कर सिटपिटा गया ।
एक और बदलाव यह देखने में आया कि काबुल छोड़ने के बाद यात्रियों को वोदका और वैसे ही दूसरे पेय पदार्थ उपलब्ध हुए ।

थोड़ी देर बाद ही परिचारिकाएं हमारे लिए लंच ले आईं । अब मुझे सामने का टेबुल नीचे गिराने का अभ्यास हो चुका था । प्लेट में तरह तरह के व्यंजन थे । मेरा इस तरह का भोजन करने का अभ्यास नहीं था । मैंने सिर्फ पावरोटी और मक्खन उठाया । हमारी परिचारिका गौरांग, दुबली पतली, बड़ी बड़ी भूरी आँखों वाली नवयौवना थी । उसका सिर अब हिजाब से न ढँका था । उसने जब मुस्कुराते हुए मुझसे पेय की बाबत पूछा तो मेरा दिल धड़का । मैंने थोड़ी सी लाल वाइन ली और कॉमरेड मेघनाद ने वोदका । मेरा सिर अब सुरूर में डूबा मॉस्को की सुनहरी गलियों के सपने देखने लगा ।
थोड़ी देर बाद मुझे शौचालय की तलब लगने लगी । हिचकिचाहट के मारे मैं बहुत देर तक तलब रोक कर बैठा रहा ।
१४१
***
मैंने आकाश में पहले कभी शौच न किया था । मेरे लिए यह नया अनुभव था । इसलिए मेरा हिचकिचाना स्वाभाविक था । पता नहीं क्या हो आकाशीय शौचालय का नियम कानून ? मुझसे कोई गलत हरकत हो जाय और भद्द मचे तो ! पर दिक्कत यह थी कि बहुत जोर से पेशाब बहुत देर से लगी थी और बात क़ाबू से बाहर जा रही थी । अब मेरे पास कोई चारा न बचा था ।
मैंने सीट बेल्ट खोला, डरते डरते सीट से उठा, बगल में बैठे कॉमरेड मेघनाद को इशारा किया और उनसे उन्हें डिस्टर्ब्ड करने के लिए माफी माँगी । कॉमरेड उस समय दास कैपिटल पढ़ने में डूबे थे । वोदका और कैपिटल के हल्के सुरूर में मगन थे । उन्होंने कोई कठोरता न दिखाई, प्यार से उठ कर खड़े हुए, मुझे बाहर निकलने का रास्ता दिया और सामने बने शौचालय की ओर इशारा किया । वहाँ अग़ल बगल दो शौचालय थे। दोनों के दरवाजे बंद थे । लाइन में सबसे आगे एक अधेड़ मोटी थुलथुल पंजाबी औरत थी जिसके बदन से मिर्च के अचार और किसी सस्ते इत्र की मिली जुली ख़ुशबू निकल रही थी ।
उसके पीछे एक नीली जीन्स और पीले टॉप में पतली दुबली स्मार्ट सी यूरोपियन लड़की खड़ी थी । यूरोपियन लड़की के पीछे दो छोटे हिन्दुस्तानी बच्चे कभी लाइन में रहते, कभी लाइन से बाहर चले जाते । भाई बहन थे शायद । भाई छोटा था और बार बार बहन की चुटिया खींच कर भागता और बहन उसे दौड़ा कर धौल जमाती । उनकी माँ सलवार कमीज पहने एक भारतीय स्त्री थी जो कभी बच्ची को डाँटती तो कभी बच्चे को । उनके पीछे एक पग्गड़ वाला लम्बा और दुबला अधेड़ अफगान खड़ा था जिसके चेहरे पर कम उम्र में ही काफी पतली और गहरी लकीरें उग आयी थीं, उसके होंठों से एक अधजली सिगरेट लटकी थी और सिगरेट का तीखा धुँआ मेरी नाक तक पहुँच रहा था और मुझे मितली सी आ रही थी । मुझे लगता है सिगरेट के उस धुएँ में उस अफ़ग़ान के पसीने की गंध भी मिली रही होगी वरना सिर्फ सिगरेट के धुएं से मुझे मितली कैसे आती ? ठंढे मुल्कों में लोगबाग बहुत नहाते नहीं और उनके कपड़े कई दिनों के पसीनों की ख़ुशबू से तर रहते हैं ।
तभी एक शौचालय से फ़्लश की आवाज आई और सबसे सामने खड़ी मोटी महिला ने दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा की परवाह किए बिना दरवाजे को जोर से धक्का दिया । अंदर से एक मोटा रूसी भुनभुनाता और

उस मोटी पंजाबी औरत को हिक़ारत की नजर से देखता, अपनी कमीज पतलून के अंदर खोंसता हुआ बाहर आया । औरत अंदर घुसी और दरवाजा बंद हुआ ।
विमान में लोगबाग अब खड़े होकर टहल रहे थे, पैर सीधे कर रहे थे । पीछे थोड़ी जगह थी वहां तीन हिन्दुस्तानी नौजवान खड़े थे और अफगान परिचारिकाओं से हंस हंस कर बातें कर रहे थे । परिचारिकाएं उन्हें प्लास्टिक की गिलासों में व्हिस्की लाकर देतीं, वे पीते जाते । उनमें से एक नशे में धुत हो कर किसी पंजाबी फिल्म का गीत गाने लग गया था । परिचारिका ने टोका तो उसने आवाज धीमी कर ली ।
१४२

***

मैंने धैर्य न खोया । लाइन में लगा रहा और अंत में मेरा नम्बर आ ही गया । वह शौचालय तो दो इंच का था, खड़े होने की जगह न थी । फर्श गीला था । शायद पानी से, पर पक्का नहीं कह सकता, जाँच करने का कोई तरीक़ा न था । कमोड में सफेद काग़ज़ों के पुलिंदे गिरे थे । बेसिन पर चिपचिपे साबुन और काग़ज़ों की लुगदी फैली थी । हल्की सी चिर-परिचित गंध भी थी जैसी मुज़फ़्फ़रपुर के शिवम सिनेमाघर के मूत्रालय में होती थी । पर आदमी को जोर से पेशाब लगी हो और उसे पेशाब करने का सुभीता मिल जाय - इससे बड़ी नियामत खुदा की इस दुनिया में कम हैं । मुझे इसका कई बार अनुभव हुआ है । आपको न हुआ हो तो आप अभागे हैं । खैर, मैं फ़ारिग़ हुआ और मेरे चेहरे पर संतोष और राहत की लहर दौड़ गई - मैंने खुद आइने में यह देखा ।
मेरे तनबदन में ताजगी की लहर भी दौड़ी । मैं अपनी सीट पर लौट गया । अब मुझे परिचारिकाओं को बुलाने वाले बटन को चलाना आ गया था । मैंने बटन दबाया और वही भूरी आँखों वाली सुंदरी फिर मुस्कुराती हुई आई । मैंने धीमे प्रेमपूर्ण स्वर में उससे कहा : पिछली बार आपने लाल वाइन देने का काम किया था, बहुत उम्दा वाइन थी । सोचता हूँ - अब थोड़ी सफेद वाइन का स्वाद लेने का काम करूं । सुंदरी ने आँखें मटकाईं और वापस लौट गई । थोड़ी देर में ही मेरे सामने सफेद वाइन की गिलास थी, मूँगफली के पैकेट के साथ । कॉमरेड मेघनाद ने मुड़ कर मुझे हैरान निगाहों से देखा । मेरा धड़का खुल गया था ।
मैंने चुस्कियाँ लेते हुए सफेद मदिरा का सेवन किया और मीठे सपनों में तैरने लगा । तभी घोषणा हुई : काबुल से मास्को की दूरी सात घंटों में तय की जाएगी । हम मास्को शाम के चार बजे पहुँचेंगे । मास्को में धूप निकली हुई है और इस समय वहाँ बाहर का तापमान शून्य से दस डिग्री नीचे है । आशा है मास्को में आपका समय खुशगवार गुज़रेगा ।
हमें काबुल छोड़े एक घंटा बीता था । मॉस्को पहुँचने में कोई छ घंटे बाकी थे । मैं मॉस्को के मधुर सपनों मे खोया था । मुझ पर सफेद मदिरा का और कॉमरेड मेघनाद पर वोदका का नशा छाया था ।
तभी एक अजीब सी बात हुई जो समझ में नहीं आई । अफगान परिचारिकाएं जो अभी तक चुस्त बिना बाँह की क़मीज़ों और मिनी स्कर्टों में थीं, फिर से वापस अपने पुराने रूप में लौट गईं । उनके चेहरों पर

अब चमकता मेक अप न था । वे अब सिर से पाँव तक लम्बे परिधान में आ गईं थी । उनके सिर अब एकबार फिर सफेद हिजाब से ढंक गए थे ।

१४३

***

मॉस्को पहुँचने में अभी छ घंटों का समय था । मैंने धीरे धीरे सफेद वाइन का सेवन किया और सीट पीछे खिसका कर आराम से पसर गया । खिड़की से चमकती सफेद गरम धूप बरस रही थी । मैं ऊँघने लगा । थोड़ी देर ही मैं ऊँघा था कि घोषणा हुई : कृपया सीट बेल्ट बाँध लें, कुर्सी सीधी कर लें, शौचालय का सेवन न करें । मुझे कुछ समझ में न आया पर मैंने आदेश का पालन किया ।

हिजाब ओढ़ी हुई परिचारिकाओं ने जल्दी जल्दी सब यात्रियों के सीट बेल्ट बाँधने की निगरानी की ।

हवाई जहाज अब नीचे उतर रहा था । अचानक कानों में दर्द उठा और आवाज कम सुनाई देने लग गई । खिड़की से झाँका तो एक नन्हीं सी बस्ती पहाड़ों के बीच वादी में धीरे धीरे उभर रही थी ।

मुझे समझ में नहीं आया कि हम मॉस्को इतनी जल्दी कैसे पहुँच गए !

१४४

***

यह मॉस्को नहीं था, काबुल था । हम विमान में ईंधन की कमी हो जाने के कारण आगे मॉस्को जाने की बजाय पीछे काबुल लौट आए थे ।

१४५

***

यह कहानी फैलती जा रही है । यह अच्छी बात नहीं । ज्यादा फैलने से मधुमेह और रक्तचाप जैसी बीमारियों के खतरे पैदा होते हैं । सोचता हूँ, इसे दौड़ा दूँ । दौड़ने से चुस्त होगी, बदन गठेगा, फुर्ती आएगी, और दूसरी कहानियों के लिए जगह बन सकेगी ।

बहरहाल हम काबुल लौट आए थे । बाद में पता चला यह पहली बार नहीं हुआ था । उन दिनों ईंधन की तंगी थी । ईंधन अमरीकी डॉलर में मिलता था और अमरीकी डॉलर संभाल कर खर्च करने होते थे । अंदाज से ईंधन भरते थे । इतना हो कि किसी तरह गंतव्य तक पहुँच जाय, ज्यादा नहीं भरवाते थे । यही काम मैं भारत में अपने स्कूटर के संग करता था । एक तो पूरा टैंक भरवाने के पैसे नहीं होते थे, दूसरे इसकी भी संभावना रहती थी कि कहीं दूसरी जगह पेट्रोल का दाम कुछ कम हो, फालतू में ज्यादा पैसे क्यों दूं ! इसलिए अपने काम भर भरवा कर काम चलाता था । इसमें कई बार धोखा हो गया, रास्ते में पेट्रोल खतम हुआ और स्कूटर किसी तरह घसीट कर ले जाना पड़ा । उन्हीं दिनों मितव्ययिता मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा बनी । साम्यवाद में फ़िज़ूलख़र्ची की यूं भी इजाज़त नहीं । सर्वहारा फ़िज़ूलख़र्ची नहीं करता ।

वैसे अक्सर तो विमान काबुल से मॉस्को की यात्रा पूरी कर ही लेता था । कभी कभार जब पाइलट को लगता था कि ईंधन मास्को तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं है तो खतरा नहीं लेता था, आधे रास्ते से

ही काबुल लौट आता था । पायलटों की सूझबूझ के कारण अभी तक दुर्घटना का कोई केस सामने नहीं आया था । मॉस्को में यह परम्परा थी या नहीं - इसका पता नहीं चला ।

बहरहाल हम काबुल पहुँच गए । छोटा सा हवाई अड्डा था । गरीब गुरबा का हवाई अड्डा, उजड़ा हुआ हवाई अड्डा । बाद के दिनों में दुनिया के तमाम समाजवादियों को ऐसे हवाई अड्डों से ही प्रेरणा प्राप्त हुई होगी ।

दोपहर के तीन बजे थे । मौसम खुशगवार था । कोई दिक्कत नहीं थी । पर कुछ स्थानीय लोग बता रहे थे कि रात को तापमान शून्य या शून्य के नीचे पहुँचता था । सुन कर मेरे शरीर में झुरझुरी छूटी । यह अच्छी बात थी कि मेरे पास गरम ओवरकोट था ।

हम बीस लोग हवाई अड्डे के एक कोने में फर्श पर बैठ कर हँसी मजाक करने लगे । कुछ लोग अंताक्षरी खेलने का प्रस्ताव भी ले आए । एक लड़की ढेर सारा भूंजा ले कर आई थी, हमने उसके मज़े लिए । मठरी वग़ैरह मेरे पास भी थी पर मैं इतनी जल्दी ऐवें खत्म करने के पक्ष में न था । क्या पता कब जरूरत पड़ जाय । हवाई अड्डे के दूसरे कोने में कुछ अफ़्रीकी लोगों की बस्ती थी । वे कोई स्वाहिली गीत गा रहे थे । मुझे उस गीत का स्वर मधुर लगा ।

१४६

***

हम फर्श पर बिछी ईरानी टाइप की कहीं कहीं से फटी पर बला की खूबसूरत कालीन पर कभी बैठते, कभी उकड़ूं होते, कभी लेटते । ऐसा हम बारी बारी से करते । हमारे अंदर भाईचारा था, सामुदायिक भावना थी । आखिर हम सबलोग एक ही विचारधारा के प्रतिबद्ध लोग थे और हमारी रगों में जवाँ खून बहता था । धीरे धीरे दिन गुज़रा, धूप फीकी हुई । फिर सूरज पहाड़ों के पीछे डूबने लगा । आसमान में लाली कुछ यूँ फैली जैसे कि किसी बच्चे ने अपनी कॉपी के सफेद पन्ने पर लाल स्याही उँडेल दी हो । पर रंग यकसां लाल न रहा । पहले तेज फिर लगातार कोमल और मुलायम और कोमल और मुलायम होता चला गया । फिर यह खेल खेलता खेलता सूरज थक गया, पहाड़ों के पीछे अपने घर लौट गया ।

इधर सूरज डूबा, उधर ठंढ ने पैर पसारने की कवायद शुरू की । अब रात थी और रात की संगिनी ठंढ थी । वे शरारती सखियाँ मालूम होती थीं, वे अपने खेल में वैसे मशगूल हुईं जैसे गाँवों में जमीन पर लकीरें खींच कर लड़कियाँ चुपचाप एक पाँव से कूदने का खेल खेलती हैं ।

ठंढ थी, बढ़ रही थी । पर कोई गम नहीं । दुनिया का पता नहीं, मेरे पास तो गरम ओवरकोट था ।

हवाई अड्डे के दूसरे कोने में जो अफ़्रीकी लोग पहले समवेत स्वर में वह स्वाहिली गीत गा रहे थे, जिसे सुन कर मैं भावविह्वल हुआ था, अब आपस में गप शप कर रहे थे । मुझे लगता है वे भी सर्वहारा वर्ग के लोग ही रहे होंगे । मेरा अनुमान है कि हमें देख कर उनमें सद्भावना, मैत्री और सहानुभूति के मिले जुले भाव जगे । एक बेहद ख़ूबसूरत दुबली पतली चमकते आबनूसी रंग की युवा लड़की मुस्कुराती हुई हमारे लिए एक केतली में चाय ले आई । वह लड़की खांटी जनवादी सोंदर्य के प्रतीक की तरह थी ।

अफ़्रीकी लोगों के पास स्टोव था जिस पर चाय खौल रही थी । मैंने अनुमान लगाया अफ़्रीकी साथी अनुभवी थे, इस तरफ से शायद पहले गुज़रे थे, मेरी तरह नौसिखिए न थे ।
बहरहाल सुंदरी ने शीशों की गिलासों में खौलती हुई चाय ढारी । हमने ईश्वर और मार्क्स का शुक्रिया अदा किया और चाय सुड़कने लगे । हमारी आत्माएँ अब तृप्त होने के मार्ग पर चल पड़ी थीं । अब न चाहते हुए भी अपने बैग से मुझे मठरी निकालनी पड़ी । मैं चाहते हुए भी मठरी छुपाने की कमीनगी न कर सका ।
हममें से किसी के पास ताश की गड्डी थी और किसी के पास लूडो । हम कभी अंतराक्षरी खेलते तो कभी लूडो और कभी ताश । तभी किसी ने दाँत किटकिटाए और सबकी नजर उस तरफ चली गई । ठीक है, ठंढ है पर इसमें दाँत किटकिटाने की क्या बात है, कायदे से सहन करो ।
रात ठंढी भले ही थी पर एडवेंचर के रंगों मे रंगी थी । मेरा सदा से यह मानना रहा है कि जरूरत से ज्यादा आरामतलबी बुर्जुवा संस्कारों को जन्म देती है, आदमी को कायर और निकम्मा बनाती है । मेहनतकश आदमी मेहनत करता है,आरामतलबी नहीं करता । मुझे प्यारे रूस के ग्रामीण इलाक़ों में साइबेरियाई ठंढ के दिनों में बिना पैरों में जूते पहने खेतों में काम करते बहादुर मज़दूर भाइयों की याद आई और मैं गर्व से रोमांचित हो उठा ।
मेरा गला रुँध गया । मैंने खुद को डाँट लगाई - कैसे समाजवादी हो, ठंढ से डरते हो ! एक तरफ तुम्हारे साथी साइबेरियाई ठंढ में खेत जोतते हैं और तुम एक रात की मामूली सी ठंढ से परेशान होते हो ! जबकि असलियत तो यह है कि तुम गरम ओवरकोट पहन कर चाय पी रहे हो, लूडो खेल रहे हो । तुम क्या ख़ाक क्रांति करोगे । धिक्कार है, धिक्कार है ।
१४७
***
रातों की फितरत ही कुछ ऐसी है कि जैसी भी हों, गुजर जाती हैं । वह रात भी गुजरी । कैसे गुजरी - यह जान कर आप क्या करेंगे ? कल्पना से काम चलाइए । सुबह सूरज का बच्चा ऊँघता हुआ पहाड़ों के पीछे से बाहर आया, आसमानों में चढ़ने लगा । नींद की ख़ुमारी अभी गई न थी, अंगड़ाई ली, मुस्कुराया और पहाड़ों पर ढेर सारा सिंदूरी रंग बिखर गया । एक काबुली वाला जैसा दिखता अधेड़ शख्स जिसके सिर पर बड़ा सा पग्गड़ था, हमारे पास आकर गप शप करने लगा । एक जमाने में वह बनारस और कलकत्ता हो आया था, उसे हिन्दी आती थी, बम्बइया फ़िल्मों का शौक़ीन था, मधुबाला उसे अच्छी लगती थी । उसने हमें दिलासा दिया कि चंद घंटों की बात है - कोई न कोई जहाज मास्को की तरफ जरूर उड़ेगा । उम्मीद तो है कि आज ही उड़ेगा । उसने हमें धैर्य रखने की नेक सलाह दी ।
फिर वह समय वाकई आ गया - आप चाहे विश्वास करें न करें । धूप चढ़ आई थी, रात की ठंढ का कोई नामलेवा न बचा था । मैंने गरम कोट उतार दिया था । उधर हवाई अड्डे पर लगी दीवार घड़ी ने दोपहर के बारह का घंटा बजाया, इधर घोषणा हुई पश्तो और फिर अंग्रेज़ी में :

मॉस्को जाने वाला विमान तैयार है, गेट नम्बर तीन पर खड़ा है, यात्रीगण गेट की ओर प्रस्थान करें । हमारे चेहरे खिल आए, हमने एक दूसरे को बधाई दी, जोर जोर से तालियाँ बजाईं और गेट की ओर बढ़ चले । अब हमें मॉस्को पहुँचने से कौन रोक सकता था !

अब मैं विमान में चढ़ने का अनुभव प्राप्त कर चुका था । मैंने अपनी सीट खोज ली, खिड़की वाली सीट थी, कॉमरेड मेघनाद की सीट फिर मेरी बगल में थी । फिर भूरी आँखों वाली उस अफ़ग़ान बाला ने झुक कर मुझे सलाम किया, फिर मेरा नाजुक दिल धक से हुआ ।

हमने सीट बेल्ट बाँधे, सुरक्षा सम्बंधित घोषणाओं को ध्यान से सुना, जहाज घरघराता हुआ रनवे पर सीधा चला, फिर उसने रफ्तार पकड़ी और देखते ही देखते हम आसमान में थे । हमारे नीचे प्यारा काबुल शहर दोपहर की धूप में चारों तरफ पहाड़ों से घिरा किसी अफ़ग़ान सुंदरी के गले के नगीने की तरह चमक रहा था । धूप की नरम गर्मी, चारों तरफ उजास, अफ़ग़ान सुंदरियों का दिलकश हुस्न और मॉस्को के दिलफरेब सपने - मेरे ऊपर वोदका का नशा सा चढ़ आया । मैं सीट पर निढाल सा पसरा अर्धचेतना में डूबता उतराता था । खिड़की के बाहर सूरज की किरणों और अभी अभी धुनी रूई के फाहों से मुलायम सफेद बादलों ने फिर अपना खेल खेलना शुरु कर दिया था ।

१४८

***

परिचारिकाओं ने फिर पिछली बार की तरह अपने परिधान बदल लिए थे । हिजाब उतर गए थे, पूरी बाँह और टखनों तक लटकते वस्त्रों की जगह बिना बाँहों वाले ब्लाउजों और मिनी स्कर्टों ने ले ली थी । ताजा ताजा पुते मेक अप से चेहरों पर रौनक़ खिल उठी थी । हम एशिया से यूरोप की ओर बढ़ चले थे । थोड़ी देर में भोजन की घोषणा हुई । मैंने लाल वाइन और मेघनाद सर ने वोदका के साथ भोजन का सेवन किया । खिड़कियों से धूप बरस रही थी । मैं ऊंघने लगा । पता नहीं कितना समय बीता कि तभी घोषणा हुई :

यात्रीगण सीटबेल्ट बाँध लें, कुर्सी सीधी कर लें, शौचालय का प्रयोग न करें । हम थोड़ी देर में ही मॉस्को हवाई अड्डे पर उतरने की शुरुआत करने वाले हैं । इस समय मॉस्को में दोपहर के चार बजे हैं । धूप खिली हुई है । बाहर का तापमान शून्य से चार डिग्री नीचे है ।

मैं हड़बड़ा कर उठा । खिड़की से बाहर देखा तो सूरज और इक्का दुक्का बादल के सिवा कुछ न दिखा । थोड़ी देर बाद ही हमारा विमान नीचे उतरने लगा । धीरे धीरे हमारे नीचे मॉस्को नगर का फीका सा आकार उभरा । फिर हम और नज़दीक आए । शहर की ऊँची इमारतें, घुमावदार सड़कें, सड़कों पर चलती गाड़ियाँ, और फिर हमारे सामने थे धूप में सोने चाँदी की तरह चमकते गुम्बद और कंगूरे । हम पता नहीं किस लोक की ओर बढ़ रहे थे । मुझे रोमांच हो आया । फिर वह समय भी आया जब घरघरा कर विमान रनवे पर उतरा ।

जैसे ही विमान ने टार्मक को छुआ विमान यात्रियों की तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा । हम चमत्कृत थे, भावविभोर थे । आ गए, आ गए, हम लेनिन और स्टालिन के देश आ गए । हमारे सपनों की धरती हमारे सामने थी, संसार की मुक्ति का द्वार हमारे सामने खुलने वाला था ।
फिर विमान के द्वार खुले और हम अपने अपने सामान कंधों पर लिए नीचे उतरने के लिए क़तार में लगे । मैंने मेघनाद सर पर नजर डाली । उनके मुख पर संतोष और गर्व की आभा थी । क्यों न होती, वे अपनी विचारधारा के शीर्ष तीर्थ स्थल के सामने थे । मेरे चेहरे पर भी हर्षोन्माद की लहर जरूर फैली रही होगी ।
भावातिरेक मे मैंने झुक कर मॉस्को की धरती को अपने हाथों से छुआ । लोग मेरा मुंह ताकने लगे ।
१४९
***
आपसे विनती है कि आप भरोसा रखें, मैं मॉस्को के अपने अनुभव आपसे अवश्य साझा करूँगा । पर इसके पहले कि मैं ऐसा करूँ यह आवश्यक है कि थोड़ी मेहनत करके आप मेरी स्थिति समझने का प्रयास करें ।
पहली बात तो यह कि यह शख्स जो यह सब लिख रहा है गवंई गँवार पृष्ठभूमि का है । इसके पहले भभुआ, मुजफ्फरपुर और दिल्ली के अतिरिक्त और कोई जगह इसने देखी नहीं है । हवाई जहाज पर चढ़ना तो दूर, हवाई जहाज इसके पहले देखा तक नहीं है । मॉस्को चमचमाता बर्फ़ीला शहर है और इस शख्स की आँखें इस शहर की चमकीली रोशनी में चुंधिआई हैं । इसने पहले बर्फ न देखी, न सौंदर्य से लबालब भरी श्वेतांगना बालाएँ देखीं जिनकी आंखें प्रशान्त महासागर के जल की मानिंद पारदर्शी, नीली और अनंत गहराइयों वाली हैं और जिनकी केशराशि सोने की मछलियों की तरह उनके कांधों पर बल खाती हैं और जिनके दर्शन मात्र से प्राणी कई बोतल वोदका के नशे में डूब जाता है ।
यह शख्स कहाँ तक वर्णन कर पाएगा ? और फिर यह शख्स लौंडा लपाड़ी है, कोई कवि, दार्शनिक, चित्रकार नहीं है । यह तो मदहोश है, बदहवास है , किसी और लोक में विचर रहा है ।
एक बात और ध्यान में रहे । ठीक है यह शख्स नौसिखिया है, जंगली लौंडा लपाड़ी है, इसकी आंखें कुवांरी हैं, पर समाजवाद के प्रति इसकी प्रतिबद्धता सम्पूर्ण है । आप यह उम्मीद न करें कि समाजवादी स्वर्ग मॉस्को जो समाजवादियों की पितृभूमि है, समाजवाद के धर्म का कैलाश मान सरोवर है, उसके बारे में यह कुछ अंड बंड लिख सकेगा । सवाल ही नहीं उठता, सारी ऐसी बातें सीने में ज़ब्त करेगा । बाप पियक्कड़ है, जुआरी है, गंजेड़ी है, बेहूदा है, पर बाप फिर भी बाप है, एक अच्छा पुत्र बाप की बुराई न कर सकता है, न सुन सकता है ।
यह शख्स कोई सैलानी नहीं, वैश्विक सर्वहारा क्रांति का कारकुन है । वह ऐसी कोई बात कभी नहीं कह सकता जिससे क्रांति की डोर कमजोर पड़े ।
इन बातों को आप ठीक से समझ लें, गाँठ में बाँध लें तो फिर आगे की बात चले । जो भी हो समाजवाद का अपमान न हो, समाजवाद का उपहास न हो ।

मैं लेखक का कर्तव्य निभाऊं, आप पाठक का कर्तव्य निभाएं । हम सच्चे समाजवादियों की तरह हाथों में हाथ डाले संग संग चलें ।

१५०

***

हम हवाई अड्डे से बाहर आए । आपको पता ही है, हमारे प्रतिनिधिमंडल में बीस युवा थे । अधिकांश के चेहरे उस ठंढ में भी कुतूहल, जिज्ञासा और रोमांच की उष्मा की लाली में चमक रहे थे । हमारे स्वागत में हमारे रूसी मेज़बानों का दल खड़ा था । एक रूसी युवा स्त्री जो हमारे लिए अनुवादक का काम भी करती, एक सादे वेश में के जी बी का अधिकारी - इसलिए कि हमारी रक्षा पूँजीवादी, साम्राज्यवादी विदेशी शक्तियों और उनके जासूसी तंत्र से हो सके, एक बस ड्राइवर और दो दूसरे लोग । सबके चेहरों पर धीर गम्भीर भाव थे । ध्यान रहे ये क्रांति के कारकुन थे, समाज को बदल डालो अभियान के प्रति समर्पित समाजवादी थे, उन्हें हर वक्त यह एहसास था कि बुर्जुवा ताक़तें क्रांति का खेल बिगाड़ने और सर्वाहारा के शोषणतंत्र को स्थापित करने के लिए सदा तत्पर हैं । इसलिए वे सजग थे, इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि उनके चेहरे इस तरह गम्भीर थे, बल्कि आप यदि कठोर भाषा का प्रयोग करना चाहें तो मातमी थे । पर उनके चेहरों पर यह भाव किसी दुर्भावनापूर्वक नहीं, क्रांति के सिपाही की स्वाभाविक सजगता और उससे जन्मी चिंता से जन्मा था । सोच कर देखिए जब आप इम्तिहान देने जाते हैं और आपके हृदय में भय छाया रहता है कि कमीना परीक्षक पता नहीं कैसे कठिन सवाल उछाले तो आपके चेहरे का क्या हाल हुआ रहता है । क्रांति गम्भीर कृत्य है, इसमें कदम कदम पर शत्रुओं का सामना है, क्रांति कोई हँसी खेल नहीं ।

हवाई अड्डे के बाहर धूप अब भी थी, पर वह अब अपना बोरिया बिस्तर समेट रही थी । मॉस्को नगर पर शाम का पर्दा उतर रहा था ।

सड़क के किनारे बर्फ के ढूहे जमा थे जिन पर जर्द पड़ी धूप चमकती और पलट कर आँखों को लगती । मैंने धूप के चश्मे पहन लिए । गरम कोट तो था ही, हल्की सी कंपकंपी थी पर उस कंपकंपी में रोमांच का भाव था । हमारे मेज़बानों ने क्रांतिकारी सैल्यूट दे कर सलाम किया । अनुवादक महिला ने अपनी डायरी में हमारे नाम नोट किए । फिर शायद माहौल में फैली गम्भीरता को हल्का करने के लिए राजकपूर और राजकपूर की मेरा नाम जोकर फिल्म का ज़िक्र किया । बताया कि राजकपूर की फ़िल्में मॉस्को ही नहीं सारे सोवियत संघ में कितनी लोकप्रिय हैं । हमारी अनुवादक का नाम नताशा था । नताशा हट्टे कट्ठे शरीर की स्वामिनी युवा स्त्री थी, लम्बी चौड़ी डीलडौल और गम्भीरता के बावजूद चेहरे पर कमनीयता का बहुत सूक्ष्म रंग उसके चेहरे पर कभी कभी उतरता । गोल गौरवर्ण मुख पर दो बड़ी बड़ी नीली आँखें, कन्धों पर झूलते पर ओवरकोट से ढँके घने, भूरे बाल, बाएँ हाथ में एक नन्हां सा हैंडबैग, पाँवों में घुटनों तक चढ़े बूट । नताशा गम्भीर होते हुए भी कोमल थी । हम मिनी बस में बैठे । नताशा ने फिल्म आवारा के चिर-परिचित गीत - आवारा हूँ - का मुखड़ा गया । रूसी लहजे और स्त्री मुख से निकला यह भारतीय

गीत मुझे रोमांचित कर गया । सोवियत संघ के प्रति मेरा सम्मान और बढ़ा, मैत्री और सहभागिता के भावों में मैं डूबा । माहौल में गम्भीरता की मात्रा कुछ कम हुई, चेहरों की माँसपेशियों का तनाव ढ़ीला पड़ गया । कॉमरेड मेघनाद के चेहरे पर ग़ौर से देखने पर मंद स्मित की रेखा दिखी ।
मिनी बस में हम अपने गंतव्य की ओर बढ़े ।
१५१
***
नताशा का पूरा नाम लम्बा था जो उसने संकोच के मारे हमें बताया न था । जब धड़का खुला तो उसने बताया : नताशा मिखाइलोवा सोकोलोवा । प्यार से लोग उसे नताशा कहते थे । मैंने अनुमान लगाया कि उसके पिता का नाम मिखाइल रहा होगा । नताशा ने दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से भारत रूस भाषाई सम्बंधों पर एम फिल किया था और अब वह मॉस्को के विदेश विभाग में भारत सेक्शन में काम करती थी । भारत में उसने कई वर्ष बिताए थे । दिल्ली के अतिरिक्त बम्बई, बनारस, हैदराबाद जैसी जगहों की यात्राएँ भी उसने की थीं । छोला भठूरा उसे बहुत प्रिय था । बम्बइया फ़िल्में वह बहुत चाव से देखती थी । राज कपूर, राजेश खन्ना, आशा पारेख और डिम्पल कपाड़िया उसके पसंदीदा सितारे थे । वह हिन्दी, रूसी और अंग्रेज़ी अच्छी तरह जानती थी, पंजाबी और बंगला भी बोल समझ लेती थी । नताशा मेरी बगल की सीट में बैठी थी । बीच बीच में वह बस के बीच में खड़ी हो जाती और हिंदी या अंग्रेज़ी में हमें मॉस्को शहर के इतिहास, वहाँ की परम्परा, स्थापत्य और प्रमुख स्थानों के बारे में बताती जाती । थोड़ा समय साथ बीता तो नताशा के बाहर से कठोर दिखते चेहरे पर मानवीय उष्मा की दबी हुई रेखाएँ बाहर उभर आईं । वह बीच बीच में केजीबी वाले शख्स की तरफ नजर डाल कर चेक करती रहती कि उसके मुँह से ऐसी कोई बात तो नहीं निकली जो सर्वहारा क्रांति के मूल सिद्धांतों से मेल न खाती हो । जब वह चुप होती तो अनजाने में उसके चेहरे पर कोमलता और यहाँ तक कि मुस्कुराहट की छाया भी दिख जाती ।
यहाँ यह बताना गैर वाजिब न होगा कि कोमलता और मंद स्मित की ये रेखाएँ बहुत सूक्ष्म थीं और ग़ौर से बहुत देर तक अवलोकन करने से ही उनकी झलक मिलती थी । बस के उस सफ़र में थोड़ी देर में ही नताशा ने मेरे हृदय में जगह बनानी शुरु की । मुझे लगा कि बाहर से यह नवयौवना भले ही जनवादी क्रांतिकारिता के सिद्धान्तों के आवश्यकतानुसार कठोर दिखती हो पर वह सिर्फ ऊपरी आवरण है, वास्तव में उसके हृदय में वही कोमल लहर उठती है जो मेरे हृदय में उठ रही है । हमारे रंग रूप शक्लो सूरत भले ही भिन्न हों, पर हमारी आत्माएं एक ही हैं । मानवता के प्रति उभरे इस उदार भाव से मैं भींग उठा ।
शाम का झुटपुटा था, सूरज डूब रहा था । आकाश में बादल न थे । अट्टालिकाओं के पीछे आकाश गहरे लाल रंग में रंग गया था । नताशा ने खिड़की के बाहर एक नजर डाली और रात में भारी बर्फबारी की भविष्यवाणी की । मेरे अंदर कुतूहल और रोमांच की मिली जुली सुरसुरी छूटी । क्या है कि इसके पहले मैंने बर्फ देखी न थी ।

अंधेरा धीरे धीरे उतरने लगा था । सड़कों के किनारे खम्भों पर लगी बत्तियाँ अब जलने लगी थीं । उनका पीला आलोक डूबते सूरज के आलोक से मिल कर इन्द्रलोक के आलोक की रचना कर रहा था । हमारे बाएँ दाएँ ऊँची अट्टालिकाएं थीं । अधिकांश अट्टालिकाएं बिल्कुल एक जैसी थीं । नताशा ने हमें बताया कि इन अट्टालिकाओं में रिहायशी फ्लैट थे । एक औसत फ्लैट दो कमरों का होता । सब फ़्लैटों के डिज़ाइन, उनके साजो सामान, फ़र्नीचर एक जैसे होते । किसको कौन सा फ्लैट आवंटित होगा - यह कम्युनिस्ट पार्टी की स्थानीय समिति तय करती थी । नताशा ने गर्व से बताया कि विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर और चपरासी को एक जैसे ही फ्लैट मिलते थे । समाजवादी समाज में गैरबराबरी के लिए कोई स्थान न था । सोवियत संघ में एक ही धर्म था - मानव धर्म । और किसी धर्म की गंदी छाया सोवियत समाजवादी समाज पर पड़े और प्रतिगामी बुर्जुवा ताक़तें फिर से सिर उठाएँ - इसके बारे में प्रगतिशील शक्तियाँ सदा जागरूक थीं और केजीबी वग़ैरह के ज़रिए उन पर कड़ी निगाह रखती थीं ।
मैं इस उदात्त समतावादी समाज के ऐश्वर्य की कल्पना कर रोमांचित हो उठा ।
१५२
***
हमारी बस चलती रही । नताशा मिखाइलोवा सोकोलोवा बोलती रही । साँझ डूबती रही । अब अंधेरा हो आया था और शहर पीली रोशनी में झिलमिला रहा था । मेरे साथ दिक्कत यह आ गई है कि मैं चाहे कितना भी प्रयास करूँ, अपनी मनोदशा का बयान न कर सकूँगा । हालांकि कविता लिखने की कोशिश मैंने की तो थी पर मैं अभी नौसिखिया था । कविता वग़ैरह में मेरी कायदे की ट्रेनिंग रहती तो शायद बात कुछ बनती । मैं किसी और लोक में आ गया था । मैं भाग्यवादी नहीं हूँ, मेरी बात का गलत अर्थ न निकले पर किसके जीवन में कौन सी घटना कौन सा मोड़ ला दे - कौन जान सकता है ? अब यही कॉमरेड स्टालिन को ही देख लीजिए । चले थे पादरी बनने, बाक़ायदा प्रशिक्षण ले रहे थे, और बन गए मार्क्सवाद के मज़बूत स्तम्भ । जिस धर्म का अग्रदूत बनने जा रहे थे उसी की जड़ उखाड़ने लग गए । या फिर रक्तिमा से मेरे प्रेम सम्बंध को ही देखिए । मैं रक्तिमा के प्रेम में डूबा तो हूँ पर नताशा भी तो मुझे अपनी ओर खींचे जा रही है ।
बस कोई एक घंटा चली और हम मॉस्को की शान के नज़ारे देखते रहे । फिर बस एक ऊँची सी इमारत के सामने रुकी । नताशा ने बताया कि यह मॉस्को विश्वविद्यालय के भाषा विभाग का छात्रावास है जहां अक्सर विदेशी मेहमानों के ठहरने की व्यवस्था की जाती है । हमें दस कमरे मिले थे । हर कमरे में दो अतिथि । कॉमरेड मेघनाद और मैं एक ही कमरे में थे । हमारा कमरा आठवीं मंज़िल पर था । हमने सामान बस से उतारा, रिसेप्शन पर रजिस्टर में अपने नाम और पासपोर्ट नंबर दर्ज किए और हम लिफ्ट में घुसे । नताशा भी हमारे संग संग थी । लिफ्ट का बटन दबाया, कई बार दबाया पर लिफ्ट न चली । नताशा ने समझाया कि बिजली की गड़बड़ी से ऐसा हुआ होगा । उस समय रात को लिफ्ट ठीक करने के लिए मिस्त्री का आना मुश्किल है । बेहतर हो कि हम सीढ़ियों से ऊपर चलें ।

हमारे पास सामान भी काफी था । नताशा और मैं तो फटाफट ऊपर चढ़ गए पर कॉमरेड मेघनाद को दिक्कत हुई । समाजवाद की मुहिम में बीड़ी ज्यादा फूंकने से उनके फेफड़े ठोस से हो गए थे, उनका लचीलापन कम हो गया था, वे हवा से ज्यादा फूलते नहीं थे । मेघनाद हाँफ रहे थे, इस ठंढ में उनके चेहरे से पसीना चू रहा था । उन्होने फटती हुई बाहों का दर्द कम करने के लिए दायां हाथ सर के ऊपर कर जो अंगड़ाई ली तो कांख से निकल कर पसीने की महक सीढ़ियों पर फैल गई । मुझे हल्की सी उबकाई जो आई नताशा मेरा मुंह ताकने लगी । हम दोनों ने मेघनाद सर को थोड़ा सुस्ता लेने के लिए कहा । खैर काँख कूंख कर हमलोग आठवीं मंज़िल तक पहुँचे । नताशा ने चाबी से हमारे कमरे का दरवाजा खोला । साफ सुथरा सा सादा कमरा था । सामुदायिक शौचालय की व्यवस्था बाहर थी । कमरे में दो बिस्तर लगे थे जिन पर गहरे लाल रंग की चादरें बिछी थीं पर तकियों के गिलाफ सफेद थे । कमरे में एक हीटर लगा था जो तेल से चलता था । सामने की खिड़की से कोई फ़ैक्ट्री दिखती थी जिसकी चिमनी से धुआं निकलता था । बिस्तर पर कुछ कागज रखे थे । नताशा ने कहा हम उन काग़ज़ों को ध्यान से पढ़ें और याद कर लें । नताशा ने फिर मिलने का वादा करते हुए हमसे विदा ली ।
हमने काग़ज़ों का पुलिंदा उत्सुकता से खोला । ढेर सारे कागज अंग्रेज़ी और हिन्दी में थे । सबसे पहले कागज पर लिखा था : सोवियत भारत मैत्री की जय हो । समाजवादी सोवियत संघ में भारतीय मित्रों का स्वागत है । दूसरे काग़ज़ों में हमारे प्रवास के बारे में ढेर सारी हिदायतें थीं ।
जैसे कि रूस के प्रवास में हम किसी अनजान व्यक्ति से बात करने या किसी अनजान जगह जाने का प्रयास न करें । हमारी सुरक्षा के लिए सोवियत समाजवादी पुलिस का एक व्यक्ति हम पर नजर रखेगा ताकि समाजवाद की शत्रु पूँजीवादी शक्तियां हमें और भारत सोवियत मैत्री को संकट में न डाल सकें । हम वहाँ जायं जहां हमारे निरीक्षक ले जाएँ । उस फ़ोल्डर में कुछ वाउचर रखे थे जिनसे हम नीचे की कैंटीन से खाने पीने का सामान ले सकते थे । हमें भूख तो लग ही आई थी । हम दोनों ने तय किया कि हम वाउचर लेकर नीचे कैंटीन चलते हैं ।
१५३
***
हम दोनों भूखे प्यासे थे । हम जल्दी जल्दी निचली मंज़िल पहुँचे जहां कैन्टीन थी । कैन्टीन उस समय तकरीबन खाली थी । बड़ा सा हॉल था जिसमें बुझी बुझी सी पीली बत्तियाँ जल रही थीं । दीवारों पर कुछ सूचना पट्टियाँ लगी थीं जिन पर नोटिस वाले कागज चिपके थे । दीवार पर एक घड़ी लगी थी जो पाँच का समय दिखा रही थी । पर इस समय तो हमारी घड़ियों में रात के साढ़े आठ हो चुके थे । हमने अनुमान लगाया कि दीवार घड़ी शायद बंद हो । क्रांतिकारी समाजों में भी दीवार घड़ियाँ बिना बैटरी के तो नहीं चल सकतीं ।
कैन्टीन में कई गोल पीले रंग के टेबुल रखे थे जो तीन तीन लाल कुर्सियों से घिरे थे । एक टेबुल के पास दो रूसी लड़के बैठे थे जो छात्र प्रतीत होते थे । वे सिगरेट फूँकते हुए चुपचाप वोदका पी रहे थे । कैंटीन में दो कर्मचारी महिलाएँ थीं । दोनों अधेड़ उम्र की अच्छी लम्बी चौड़ी कदकाठी की शायद देहाती स्त्रियाँ

थीं जो शहर में काम करने आई थीं । उनके चेहरे सादे और कठोर थे, बहुत शारीरिक मेहनत करते रहने से जो रुक्षता आ जाती है वह उनकी सारी उपस्थिति में विद्यमान थी । उन्होंने खाकी परिधान पहन रखे थे और उनके सिर पर लाल रंग की टोपी सी चीज थी जो शायद कैंटीन की यूनिफ़ॉर्म रही हो । उनमें से एक कैंटीन के काउंटर पर खड़ी थी और दूसरी पीछे बनी रसोई में आ जा रही थी ।
महिलाएँ चुप थीं । उन्होंने हम पर ध्यान न दिया हालाँकि उस कैंटीन में उस समय उन दो पियक्कड़ रूसी लड़कों और हमारे सिवा कोई न था । हम थोड़ी देर प्रतीक्षा करते रहे पर फिर भी जब उन्होंने ध्यान न दिया तो अंत में मेघनाद सर आगे बढ़े और भोजन की उपलब्धि के बारे में पूछताछ की । चौड़े कंधों वाली बलशाली महिला जो उस काउंटर पर खड़ी थी, उसने नोटिस लिया और उंगली से दीवार घड़ी की ओर इशारा किया । पर घड़ी तो बंद थी । महिला ने इशारे से समझाया कि वह घड़ी साढ़े तीन घंटे पीछे चल रही है और इस समय साढ़े आठ बजे हैं और पौने नौ बजे कैंटीन बंद हो जाती है । मतलब कैंटीन के बंद होने में बमुश्किल दस मिनट बाकी थे जो बंद करने के पहले कैंटीन को सुव्यवस्थित करने के लिए नाकाफ़ी थे । कॉमरेड मेघनाद को टूटी फूटी रूसी आती थी जिसने हमारी जान बचाई । पहली बार वह रूसी महिला बोली तो उसके गले से वैसी आवाज निकली जैसी पीतल के लोटे को पत्थर पर घिसने से निकलती है ।
मेघनाद सर ने राज कपूर और जवाहरलाल नेहरू का हवाला देते हुए उस महिला को समझाया कि हम भारत से अभी अभी यहाँ पहुँचे हैं और भूखे प्यासे हैं । राजकपूर और जवाहरलाल के नाम सुन कर उस महिला के मर्दाने चेहरे की मांसपेशियों का तनाव कुछ ढीला पड़ा । उसने कहा कि हम खुशकिस्मत हैं कि कैंटीन बंद होने के ठीक पहले आ पहुँचे हैं और राशन अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है । इसलिए कुछ न कुछ भोजन मिल सकने की संभावना मौजूद है ।
वह अंदर किचेन में गई । लौट कर आई तो उसके हाथों में एक प्लेट थी जिसमें ब्रेड के दो रौल, चीज़ का एक टुकड़ा, मुर्ग़े की दो टाँगें और वोदका की दो छोटी बोतलें रखी थीं । उसने हमसे उस दिन के वाउचर लिए और समझाया कि दीवार पर लगी नोटिस हम ठीक से पढ़ें । ब्रेड तो तकरीबन रोज ही मिल जाती है । पर चीज, मक्खन, मांस, अंडे, आलू, गोभी - इन व्यंजनों के दिन तय हैं । रविवार के दिन स्पेशल भोजन बनता था । हम ख़ुशक़िस्मत थे कि वह इतवार का दिन था और हमें मुर्गे की दो दो टाँगें मिली थीं । हमने अपनी ख़ुशक़िस्मती को सराहा और वहीं पियक्कड़ों के बगल में बैठने चले । उस महिला ने टोका कि कैंटीन बंद होने वाली है और अब वहाँ बैठ कर खाना नियम के खिलाफ है ।
हम अपने कमरे की ओर लौट चले । हमें पहले से ही पता था कि लिफ्ट बंद है, इसलिए हमने सीढ़ियों का सहारा लिया । इस बार चूंकि सामान कम था, इसलिए मेघनाद सर की तबियत बहुत नहीं बिगड़ी और हम सुरक्षित अपने कमरे में दाखिल हुए ।
१५४

***

हमारा कमरा छोटा, तंग और सादा पर सुंदर था । खिड़की में शीशा लगा था जिससे बाहर का नजारा दिखता था । बर्फ का चूरा गिरना शुरु हुआ था - बारिश की नरम फुहार की तरह । कभी हल्की सी हवा चलती तो सफेद फुहार बिखर बिखर कर इधर उधर गिरती- दीवाली की फुलझड़ियों, होली की पिचकारियों की तरह । मैंने ऐसा दृश्य पहले कभी न देखा था । बर्फ का धुआँ सा छाया था और उस धुएँ में लिपटे मकान, पेड़ और बिजली की बत्तियाँ किसी इन्द्रजाल जैसे स्वप्निल लोक का निर्माण करते थे । मैं तकरीबन भावविभोर था । आपको तो पता है कि मैं भले ही अभी कायदे का कवि न बन सका था पर मेरे हृदय में कविसुलभ कोमलता के बीज मौजूद थे जो सही समय पर फूट कर पौधा बनने को बेताब थे ।
इस ऐंद्रजालिक वातावरण में एक ही व्यावहारिक समस्या थी : हाड़कंपाऊ ठंढ । हलांकि मैं बाहर न था, घर के अंदर था फिर भी ओवरकोट, दस्ताने और बंदरटोप निकाल कर बाहर खूँटी पर टाँगने का मेरा साहस न था । मैंने देखा मेघनाद सर भी हल्के से काँप तो रहे थे पर सच्चे सिपाही की तरह उन्होंने खुद पर जज़्ब रखा हुआ था ।
पर ठंढ से जूझने का इंतज़ाम मौजूद था । हमारे कमरे में ऑयल हीटर लगा था । दिक्कत लेकिन यह थी कि वह सिक्का डालने से चलता था । उसमें सिक्का डालने की एक जगह बनी थी । एक रूबल डालने से हीटर दो घंटे चलता था । हम दोनों ने अपने झोले टटोले और संयोग देखिए कि हमारे झोलों में कई रूबल निकल आए । इसे कहते हैं मनुष्य का भाग्य । हमने मशीन में एक रूबल का सिक्का डाला और हीटर एकदम से भकभका उठा । कुछ यूँ कि जैसे देर से मरा कोई मुर्दा अचानक जाग उठे । हमने एक दूसरे को देखा और हमारे चेहरों पर मुस्कान फैल गई ।
हम अपने अपने बिस्तरों पर पाल्थी मार कर डिनर करने बैठ गए ।
पावरोटी ठंढ में कड़क तो हो गई थी पर उसमें फफूँद का कोई चिन्ह न था । चीज़ के दो टुकड़े हमें मिले थे । दोनों ही ठंढ में पत्थर के टुकड़ो जैसे हो गए थे । चीज़ के टुकड़ों को पावरोटी पर रखना तो दूर उन्हें दाँतों से तोड़ना भी नामुमकिन था, दाँत टूटने का डर था । पर उसका भी उपाय था । कमरे में दो प्लेटें रखी थीं । हमने उन पर चीज के टुकड़े रखे और हीटर के पास ले जा कर रख दिए । यही हाल वोदका की बोतलों का था । वोदका भी जम कर बर्फ बन गई थी । हमने उन्हें भी हीटर के पास रखा और हसरत से उनके पिघलने या गरम होने का इंतज़ार करते रहे । मेघनाद सर ने अपने झोले से दास कैपिटल निकाली और बिस्तरे पर बाईं करवट लेट कर कमरे की मरियल जर्द रोशनी में पढ़ने में मशगूल हो गए । मैं चुपचाप टकटकी लगा कर हीटर को देखता रहा ।
१५५
***
धीरे धीरे हमारे उस नन्हें कमरे में नरम नरम सी गर्मी फैलने लगी । मेघनाद सर दास कैपिटल पढ़ते पढ़ते ऊंघने लगे थे । चीज़ के टुकड़े अब पसीजने की ओर बढ़ रहे थे । वोदका की बोतलों में जमी बर्फ पिघलने लगी थी । मैंने हल्के से कॉमरेड मेघनाद को झिंझोड़ा ते वे भड़भड़ा कर उठे । वे शायद क्रांति के रंगीन सपने देख रहे थे । हम दोनों ने पावरोटी पर चीज़ फैलाई और वोदका के संग खाते रहे, पीते

रहे । हमें बहुत भूख लगी थी । भोजन का स्वाद तभी है जब आप भूखे हों । दुर्भाग्य से आज के जमाने में सर्वहारा के अतिरिक्त न तो किसी को भूख का स्वाद पता है न भोजन का । सच कहता हूँ जैसा स्वाद भोजन का उस रात मिला, फिर कभी न मिला । हमारी आत्मा तृप्त हुई । हम वोदका की खुमारी में डूबे । मुझ पर नींद के झोंके आए पर मैंने जज़्ब किया । सोचा कि नया देश है, यहाँ के बारे में जानकारी प्राप्त कर लूँ तो कल सुविधा रहे ।

कैंटीन में भोजन की सुविधा के बारे में एक पुस्तिका में विवरण था । मंगलवार को चावल और गोभी का प्रावधान था । बुधवार को गेहूँ का दलिया और उबले आलू । चीज़ इतवार और वृहस्पतिवार को । अंडा और दूध हर तीसरे दिन । मक्खन सप्ताह में एक बार । ब्रेड रोल करीब करीब हर रोज । इतवार को मांस मिलता था । साबुन और तेल की सप्लाई हफ्ते में एक दिन । मुझे लगा कि देखो हर चीज यहाँ कितनी व्यवस्थित है, कायदे से है, भारत की तरह बेतरतीब और भभ्भड़ नहीं । फिर मेरे दिल में ख्याल आया कि शायद भारत में भी कभी ऐसी ही क्रांति होगी और ऐसे ही सुनहरे दिन आएंगे - "कभी कभी मेरे दिल में ख्याल आता है, ... मैं जानता हूं कि तू गैर है मगर यूं ही" की तर्ज़ पर ।

गैस हीटर के बारे में लिखा था कि गैस हीटर एक बार में अधिक से अधिक छ घंटे ही चल सकता है । ज्यादा चला तो कमरे में ज़हरीली गैस फैलने का खतरा है ।

हमने वैसे नोटिस किया कि कमरे में एक अजीब सी गंध जरूर फैली थी पर बर्दाश्त करने लायक थी । हम बत्तियाँ बुझा कर सो गए । रात अचानक मेरी नींद खुली । खिड़कियां बर्फ़ीले तूफान में घड़घड़ा रही थीं, हीटर बंद हो गया था और ठंढ में कॉमरेड मेघनाद दाँत किटकिटा रहे थे । शायद दो घंटे बीत चुके थे और हीटर रूबल के अभाव में बंद हो गया था । तभी बाहर कहीं दूर अर्धरात्रि का घंटा बजा । मैंने एक रूबल फिर से हीटर में डाला और हीटर भभक उठा । हल्की सी गंध फिर फैली । इस बार गंध थोड़ी तगड़ी थी पर खिड़की खोलने की हिम्मत न थी । हम अपने सारे कपड़े, दस्ताने, मोजे पहने वैसे ही बिस्तरों में अपनी रज़ाइयों में दुबके । पर मुझे ठीक से नींद न आई क्योंकि मेरे ध्यान में था कि हीटर दो घंटे बाद फिर बंद हो जाएगा और हम ठंढ में जम जाएंगे । मैंने एहतियातन झोले में से एक रूबल का सिक्का निकाल कर तकिए के नीचे रख लिया था ।

खिड़की पर बर्फ की मोटी चादर बिछ गई थी और उसके बाहर अब कुछ न दिखता था । वे मकान, वे बिजली की बत्तियाँ - सब आंखों से ओझल थे ।

बिस्तरे पर लेटे मेघनाद सर खर्राटे भरने लगे ।

१५६

***

अभी रात शायद बीती न थी कि अचानक मेरी आंख खुली । बाहर जब गजर बजा तो पता चला कि भोर के तीन बजे थे । मुड़ कर देखा तो बगल के बिस्तर में कॉमरेड मेघनाद अब भी खर्राटे भर रहे थे । दास कैपिटल फर्श पर उल्टी गिरी पड़ी थी ।

असल में मुझे लगा कमरे में कोई चीज जल रही है । अजीब सी जलती हुई कोई तीखी गंध मेरी नाक में घुसी थी और मेरा दिल बेचैन हो गया था । असल में बचपन से ही मेरी नाक औरों से तेज रही है । मैं वह सूंघ लेता हूँ जिसका औरों पर असर नहीं होता । मेरी मां कहा करती थी - इस लड़के की नाक कुत्ते की तरह तेज है । इसके कारण मुझे बहुत कठिनाई झेलनी पड़ी है । जाड़ों की ठंढी रातों में गंध से बचाव के लिए मैं खिड़की खोल देता और ठंढ से ठिठुर रहे घर वाले मुझे डंडा लेकर दौड़ा लेते ।
पर गलती पूरी तरह मेरी न थी । गंध ऑयल हीटर से निकल रही थी और दम मेरा घुट रहा था । मैंने खिड़की खोलने की कोशिश की । पर खिड़की न खुली । पता नहीं क्या दिक्कत थी । मुझे खोलना न आया या कि खिड़की बर्फ की ठोस परत के इस्पाती चंगुल में फँसी जाम हो गई थी ।
बाहर बर्फीला तूफान जोरों पर था । लगता कोई पेड़ जड़ से उखड़ने वाला है, कोई इमारत हड़हड़ा कर टूट गिरने वाली है । लगता था जैसे कोई प्रेत खिड़की की आत्मा में प्रवेश कर गया है और खिड़की हरसू ब्रह्म के मेले में आई देहाती औरतों की तरह प्रेत के प्रभाव में आविष्ट अपना झोंटा हिला हिला कर झूम रही है ।
बहरहाल मेरी नींद तो खुल ही गई थी । मैंने फिर कॉमरेड मेघनाद पर नजर डाली । वे बेख़बर मुझसे उल्टी तरफ दीवार की तरफ करवट लेटे अभी भी खर्राटे ले रहे थे । मैं निश्चिंत हुआ । मैंने अपने झोले को टटोला और धीरे से हनुमान चालीसा निकाल कर मन ही मन जाप करने लगा :
जय हनुमान ज्ञान गुण सागर ।
१५७
***
मेरे हनुमान चालीसा का पाठ करने से कोई यह अर्थ न निकाले कि समाजवाद में मेरी आस्था में कमी आ गई । ऐसा निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी । नहीं, समाजवाद में मेरी निष्ठा सम्पूर्ण थी, उसके डिगने का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था । बात सिर्फ इतनी थी कि आदमी जब संकट में हो तो वह बहस नहीं करता, अपनी सुरक्षा के सारे उपाय जुटाता है । मैं समाजवाद के पथ से भटका न था, बस संकट की घड़ी में हनुमान चालीसा का सहारा लिया था । मैं अब भी मानता था कि धर्म जनता को नशेड़ी बनाने वाली अफीम है पर आप ही बताइए जब छाती में असह्य दर्द उठे तो मार्फिया की सुई देना क्या समाजवाद के सिद्धांतों के विपरीत है ? मान लीजिए आप डॉक्टर हैं और आपके सामने ही किसी मरीज की हृदय गति बंद हो जाती है तो उस समय आप पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक बुलाएँगे या जो भी गलत सही समझ में आए उससे मरीज की जान बचाने की कोशिश करेंगे ? विवेचना हो, बहस मुबाहसा हो, विस्तार से हो पर तात्कालिक संकट टलने के बाद हो ।
चमत्कार देखिए कि संकट अपने आप टल गया । मैं नहीं जानता कि ऐसा समाजवादी व्यवस्था के कारण हुआ या हनुमान चालीसा के जाप से । जान बच जाए तो आदमी साँस ले कि ऐसी बहसों में पड़े ?

हुआ यह कि अचानक ऑयल हीटर बंद हो गया और धीरे धीरे हवा में गंध की मात्रा में कमी आने लगी । साँस लेने में आसानी साफ साफ महसूस हो रही थी । इसके पहले कि कॉमरेड मेघनाद की आंख खुले, मैंने धीरे से हनुमान चालीसा अपने बैग में वापस रख दिया ।
थोड़ी देर में दिक्कत यह आन पड़ी कि गंध तो जरूर कम हो गई पर ठंढ बढ़ने लगी । जब ठंढ सहनशक्ति की सीमा के आस पास पहुँची तो प्रश्न यह खड़ा हुआ कि धुआँ और गंध और साँस लेने की तकलीफ एक तरफ और ठंढ में ठिठुरना दूसरी तरफ - इसमें किसका पलड़ा भारी माना जाय ? मैं कभी सोचता हल्की सी ही गंध है, अभी तक तो कुछ नुक़सान नहीं हुआ, एक रूबल बचा है, हीटिंग फिर से चलाओ, सुबह होने में देर नहीं है, बाद में बाहर जाकर थोड़ी सी ताज़ी हवा फेफड़ों में भर लेना ।
फिर लगता कि ठंढ बहुत है, हम कोई साइबेरियाई तो हैं नहीं कि हमें बर्फीली ठंढ का पुख्ता अभ्यास हो, हम तो गरम देश के वासी हैं, देह को इतनी ठंढ की आदत नहीं है, कहीं न्यूमोनिया हुआ तो लेने के देने पड़ जाएंगे । फिर अख़बारों में पढ़ी ख़बरों का खयाल आता कि फ़लाँ आदमी नींद मेँ कार्बन मॉनाक्साइड की ज़हरीली गैस के कारण मर गया । हमें ठंढ और गैस में चुनाव करना था ।
मैं इसी उधेड़बुन में रहा, कुछ तय नहीं कर पाया । उधर मेघनाद सर दोनों पाँवों को मोड़ कर छाती से लगाए सोए जा रहे थे ।
देखते देखते ही जैसे सदा से होता आया है, दिन निकल आया । आकाश साफ था । सूरज चमकने लगा और आहिस्ता आहिस्ता खिड़की पर जमी बर्फ पिघलने लगी । चाय की तलब हुई । नहाने का मन हुआ ।
१५८
***
सुबह उठते ही नहाने की लत मुझे बचपन से रही । बाद में जब मैंने गम्भीरता से इसके बारे में आत्मावलोकन किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि ऐसा मेरे बुर्जुवा संस्कारों के कारण हुआ होगा । मेरी माँ धार्मिक प्रवृत्ति की थी और उसका मानना था कि व्यक्ति को सुबह बिस्तर से उठते ही शौचादि से निपटने के तुरंत बाद सबसे पहले स्नान करना चाहिए । बिना स्नान किए मुँह में कुछ भी डालना मेरे परिवार में असभ्य हरकत मानी जाती थी । मेरे पिताजी हालाँकि प्रगतिशील और समाजवादी थे, फिर भी परिवार में फालतू झमेला होने के डर से वे भी इस नियम का पालन करते रहे । बाद में जब समाजवाद में मेरी पैठ गहरी हुई तो सोची समझी योजना के तहत मैंने पुराने बुर्जुआ संस्कारों से मुक्त होने का प्रयास प्रारम्भ किया । यह काम कठिन था और कड़े अनुशासन की मांग करता था ।
पर यदि आप मनोविज्ञान के विद्यार्थी रहे हों तो आपको बताने की आवश्कता नहीं कि आदमी आदतों का गुलाम है । और ऊपर से बचपन में पड़ी आदतों की मुहर आदमी पर बहुत गहरी लगी होती है, उनसे छुटकारा दुष्कर है ।
सच कहूँ तो ऐसी आदतें जो प्रगतिशीलता से मेल नहीं खाती थीं, मेरे अंदर कुंठा, हीन भावना और अपराधबोध का कारण थीं । पर वस्तुगत तरीके से देखें तो मेरा रिकार्ड इतना बुरा भी नहीं था । ठीक है

मैंने इनसे छुटकारा पाने में शत प्रतिशत सफलता तो नहीं पाई पर कम से कम सत्तर प्रतिशत तो पाई । और अभी मेरी उम्र ही क्या थी । आम फूहड़ भाषा में कहूँ तो भले ही मेरा प्रवेश विश्वविद्यालय के उदीयमान बुद्धिजीवी वर्ग में हो गया था और कुछ लोग तो मेरे अंदर कालजयी कवि होने की संभावना तक देखने लग गए थे, पर था तो मैं लौंडा लपाड़ी ही जो पता नहीं कैसे इतने ऊँचे प्रगतिशील समाज में गेटक्रैश कर गया था ।

मेघनाद सर ऐसी कुंठाओं से मुक्त थे । जहां तक मुझे पता है मेघनाद सर को आज तक नहाते हुए नहीं देखा गया था । हाँ, वे कपड़े और मोजे कभी कभी बदलते हुए अवश्य देखे गए थे । जो समय समाज को बदलने में लगाना था, उसे मोजे बदलने में लगाना कॉमरेड मेघनाद बुर्जुआ हरकत मानते थे ।

१५९

***

मुझे चाय की तलब लगी थी - इस बात में संदेह का कोई कारण नहीं । पर ज़रूरी तो नहीं कि जिस किसी बात या चीज की आपको तलब हो वह आपको तुरंत मिल ही जाय ? धैर्य बड़ा गुण है । आदिकाल से संसार की सारी सभ्यताओं ने धैर्य के महात्म्य के गुण गाए । आधुनिक काल में भी क्रांतिकारी विचारकों ने हहुआने के ख़तरों से आगाह किया, धैर्य की महिमा पर बल दिया । उदाहरण के तौर पर कोई भी विचारवान समाजवादी देख सकता है कि फिलहाल भारत में सर्वहारा के अधिनायकत्व की तैयारी पूरी नहीं है, जमीन पोली है, कच्ची है । ऐसे में हहुआ कर क्रांति का युद्ध छेड़ना जल्दबाज़ी होगी, उससे क्रांति की नाजुक बेल के मुरझाने का खतरा है । अभी समझदारी इस बात में है कि समाजवाद की इस बेल को इंदिरा गांधी के बुर्जुवा पर थोड़े से प्रगतिशील वृक्ष पर चढ़ा दिया जाय । यह बेल उस वृक्ष से पोषण ग्रहण करे, अंधड़ तूफान से बचे, मज़बूत होती चली जाय । फिर एक दिन सही मौसम में यह बेल उस वृक्ष के शीर्ष पर चढ़े और फिर वहाँ से समाजवादी गंध वाले फूल या काँटे हर तरफ बिखेरे । इसी काम को कॉमरेड नूरुल हसन, कुमारमंगलम जैसे विचारवान साथी कुशलता से अंजाम देते रहे ।

ठीक यही बात उस समय चाय की तलब पर लागू थी । धैर्य । जज़्ब । सही अवसर की प्रतीक्षा । इसके अतिरिक्त बचपन से सुबह सुबह ही नहाने की आदत वाली बात भी थी ।

मैंने झोले में से डाबर का लाल दंतमंजन और टूथब्रश, दाढ़ी छीलने का सामान, लाइफब्वाय साबुन और तौलिया निकाला और धीरे से कमरे का दरवाजा खोल कर कॉरीडोर में निकल गया ।

मैं नहीं चाहता था कि मेघनाद सर की नींद में ख़लल पड़े - इसीलिए मैं धीरे से निकला और मैंने दरवाजा हल्के से बंद किया । निकलते ही सर्द हवा को जो झोंका आया है कि मैं वहीं बर्फ की सिल्ली की तरह जमते जमते बचा । पर मैं हारने वाला नहीं था । मैंने हिम्मत जुटाई, अपनी कायरता को गालियाँ सुनाईं और कॉरीडोर में आगे बढ़ चला । सामने ही गुसलखाने को रूसी भाषा में इंगित करता हुआ एक बोर्ड लगा था । मुझे रूसी तो नहीं आती थी, पर मैंने अंदाज लगा लिया था । थोड़ी दूर पर बगल में ही वह गुसलखाना था । शौच और स्नान की अलग अलग जगहें बनी थीं । शौच मैंने किसी तरह काँख कूंख कर कर लिया । पानी बर्फ़ीला था पर अब धीरे धीरे बर्फ़ीली हवा और पानी की आदत पड़ती जा रही थी ।

मैंने साथ लाए लाइफ़ ब्वाय साबुन से हाथ धोया और मंजन कर लेने के बाद दाढ़ी बनाई और तौलिया लिए दिए स्नानगृह में दाखिल हुआ ।

१६०

***

आप यह न भूलें कि यह मेरी पहली विदेश यात्रा थी । मैंने पहले न कोई विदेशी स्नानगृह देखा था और न ही इस विषय का अध्ययन किया था । हालाँकि अब ऐसा लगता है कि ऐसा न करना मेरी भूल रही । पहली बात तो यह कि यहाँ स्त्री पुरुष के स्नानागार पृथक पृथक नहीं थे । ऐसी समतावादी व्यवस्था तो जनेवि के छात्रावासों में भी न थी । लड़कियाँ चाहें तो देर रात तक लड़कों के छात्रावास में हुल्लड़ मचाएँ या गाँजा पीएँ पर उनके शौचालय का प्रयोग नहीं कर सकती थीं । मुझे लगता है ऐसी व्यवस्था पुराने बुर्जुवा संस्कारों की residue थी । काफी कुछ तो कायदे से बुहार दिया गया था, कुछ चीज़ें छूट गई थीं । मुझे पक्का विश्वास है एक दिन उनका नम्बर भी आएगा और वे बुहार कर कचरेदानी के हवाले की जाएँगी ।

यह काम समाजवादी मॉस्को में पहले ही हो चुका था । पर मैं अपने संस्कारों से लाचार था । मैंने पहले तो दाएँ बाएँ आगे पीछे देखा, जब कोई स्त्री पुरुष नहीं दिखा तो हिचकिचाते हुए हिम्मत कर स्नानागार में घुसा ।

वहाँ प्लास्टिक का एक बड़ा सा टब था । मैंने उसके टैप खोलने की कोशिश की पर वे जाम थे । दो टैप थे । एक ठंढे पानी का, दूसरा गरम पानी का । ऊपर एक बड़ा सा गीज़र लगा था जिसमें शायद पानी खौलता था । नहाने के लिए गरम पानी की उपलब्धि की संभावना से मेरे हृदय में रोमांच का उछाल हुआ । वैसे भारत में सर्दियों में भी सदा मैं ठंढे पानी से ही नहाता था । मेरी माँ ने सदा कहा कि चाहे जितनी भी सर्दी हो, हाड़कंपाऊ ठंढ हो, हिम्मत करके ठंढे पानी से नहाने से शरीर में जो ताजगी आती है वह गरम पानी से नहाने में कैसे आ सकती है ? पर रूसी सर्दियों की तासीर हिन्दुस्तानी सर्दियों से जुदा थी । वैसे मुझे पता था कि बर्फ़ीली सर्दियों के मौसम में साइबेरिया में लोग ठंढे पानी वाली झीलों में तैरते हैं, अपनी इम्युनिटी बढ़ाते हैं । पर अभी मैं नया नया आया था, साइबेरियाई अनुभव और अभ्यास में अभी समय लगना था ।

टब के टैप तो नहीं खुलते थे पर सामने ही एक फ़व्वारा लगा था जिससे आपके सिर पर पानी गिरने का सिस्टम था । दोनों तरफ दो अलग अलग कंट्रोल थे । एक को घुमाओ तो ठंढा पानी निकलता था, दूसरे को घुमाओ तो गरम पानी । मैं यह व्यवस्था देख कर खुश हुआ । मैंने ठंढे पानी वाला कंट्रोल डरते डरते धीरे से घुमाया तो एकदम से बर्फीले पानी का एक झोंका मेरे सिर पर गिरा, मैं डर गया, गिरते गिरते बचा । मैंने गहरी साँस ली और गरम पानी वाले कंट्रोल को हल्का सा घुमाया । इस बार एक ब एक खौलता हुआ पानी मेरे सिर पर दिरा और मेरे गले से चीखने की आवाज निकलते निकलते रह गई । मैं जला नहीं था ।

लब्बोलुबाब यह कि स्नानगृह में ठंढे और गरम पानी - दोनों की पर्याप्त और समुचित व्यवस्था थी पर दोनों तरह के पानियों के मिलाने का सिस्टम नहीं बन पाया था । मेरी समझ में नहीं आ रहा था मैं क्या करूँ । तभी अचानक मेरी नजर एक टूटे हुए लाल मग्गे पर पड़ी जो कि गुसलखाने के एक कोने में औंधा गिरा पड़ा था । मैंने उसे उठा कर ध्यान से देखा । उसकी पेंदी में एक छोटा सा छेद था, जिसका अर्थ यह कि मग्गे में पानी बहुत देर तक टिक नहीं सकता था । गंदा भी बहुत था । खैर गंदगी से मुझे डर न था । मेरे पास लाइफब्वाय साबुन तो था ही । मैंने साबुन से रगड़ रगड़ कर मग्गे को साफ किया और सावधानी से गरम पानी से धो दिया ।
अब मग्गा तैयार था । मैंने डरते डरते टोंटी खोल कर उसमें पहले ठंढा पानी डाला और इसके पहले कि वह पानी छेद में से निकल कर बह जाय, तुरंत थोड़ा सा खौलता हुआ गरम पानी उसमें मिलाया । दोनों जब मिले तो फिर मैंने उस पानी को सिर पर डाला । इस काम में फुर्ती, कौशल्य और निश्चय की आवश्यकता थी । और ये तीनों चीज़ें मुझमें पहले से ही प्रचुर मात्रा में उपस्थित थीं ।
प्रारम्भ में जब मैं नौसिखिया था तो कभी पानी बहुत ठंढा या गरम रहता और मेरे गले में दबी हुई चीख फँस जाती । पर अभ्यास के साथ मेरी कुशलता बढ़ती चली गई । मैंने स्नान का भरपूर आनंद लिया । संयोग देखिए कि स्नानाघर में उतने समय में कोई और न घुसा और मेरी किरकिरी न हुई ।
मैं तरोताज़ा हो कर राज कपूर का गीत - आवारा हूँ - गुनगुनाता हुआ अपने कमरे में लौट गया ।
१६१

***

चाहे वे मुज़फ़्फ़रपुर की गर्मियाँ हों या मॉस्को की सर्दियाँ, इस बारे में संदेह की संभावना कम है कि आदमी नहा धो कर नए ताज़े कपड़े पहन ले तो उसका शरीर ही नहीं, उसकी आत्मा भी धरती सो दो इंच ऊपर उठ जाती है । कई बार तो आदमी को तो जैसे पंख से लग जाते हैं । यह बात कोई मजाक नहीं है । हालाँकि मैं पुरातनपंथ का विरोधी हूँ फिर भी न चाहते हुए भी यह बात माननी पड़ रही है कि पुराने जमाने में भारतीयों ने ब्रहम मुहूर्त में उठने और शीतल जल से स्नान कर स्वच्छ परिधान पहनने पर जो बल दिया वह अकारण नहीं था ।
जनेवि की प्रगतिशील शक्तियाँ ऐसी बातें न सिर्फ नहीं मानती थीं, बल्कि उन्हें बुर्जुवा प्रतिगामी समाज का निंदाजनक प्रतीक मान कर उनको हिक़ारत की नजर से देखती थीं । जनेवि में तो बहुतेरे छात्र यदि सुबह क्लास जाने का चक्कर न हो तो दोपहर के बाद ही बिस्तर छोड़ते । वैसे क्लास जाने के पहले नहाने के चक्कर में तो प्रगतिशील युवा कम ही पड़ते थे ।
मैं जब कमरे मे लौटा तो मैंने देखा कि मेघनाद सर ने अपनी रज़ाई के ऊपर मेरी रज़ाई भी डाल रखी थी और फिर भी उनके बदन में समय समय पर झुरझुरी छूट रही थी । मैंने अपने अनुभव का हवाला देते हुए उनसे स्नान कर लेने का प्रस्ताव रखा तो मेघनाद सर ने मुझे झिड़क दिया । अपनी आंखों का कीचड़ मेरी रज़ाई में पोंछते हुए मेघनाद सर बोले :

इतनी ठंढ में तो कोई पागल ही नहाएगा । मैं तो दिल्ली की गर्मियों में भी नहाने का झंझट नहीं पालता । तुम्हारे साथ समस्या यह है कि जनेवि का छात्र बन जाने के बावजूद तुम्हारा अपने मध्यवर्गीय संस्कारों के प्रति मोह छूटा नहीं है । मैं तुम्हारी कठिनाई समझता हूँ पर मेरी सलाह मानो, उन्हें मेहनत कर वैसे ही झाड़ दो जैसे सिगरेट पी कर मैं ऐश ट्रे की राख झाड़ देता हूँ । ऐसा कहते हुए उन्होंने छाती में जमा बलगम निकाल कर घोंटा और सिगरेट का डिब्बा ढूंँढ़ने लगे ।

१६२

***

मेघनाद सर सिगरेट का इंतज़ाम करके चले थे । गोल्ड फ्लेक सिगरेट । लाइटर भी था । एक गहरा कश लेकर जो धुआँ उन्होंने छोड़ा तो कमरे में सिगरेट के धुएँ की नरम और हल्की सी गर्म और भीनी ख़ुशबू फैल गई । मेघनाद सर नहाने के चक्कर में तो नहीं पड़े पर मंजन कर आए । ऊपर से पालिका बाजार से खरीदे नेपाली डिओडरेंट का छिड़काव भी कर लिया ।

तभी इंटरकॉम की घंटी बजी । रिसेप्शन से कोई महिला अभी अभी सो कर उठी भारी आवाज में कुछ बोल रही थी । मुझे रूसी नहीं आती थी । मैंने कॉमरेड मेघनाद को रिसीवर पकड़ाया । खबर यह थी कि नताशा नीचे रिसेप्शन पर हमारी प्रतीक्षा कर रही थी ।

मैं तो पहले से ही तैयार था । मैंने अपना ओवरकोट और बंदरटोप धारण किया, बटुआ जेब में रखा । मेघनाद सर ने मंजन कर ही लिया था । उनके लिए तैयार क्या बेतैयार क्या - वे तो सदा समभाव में वास करने वाले जीव थे । वे तो सदा तैयार थे ।

हम सीढ़ियों से नीचे उतरे । रिसेप्शन हॉल में लगे सोफे पर बैठी नताशा हमारी प्रतीक्षा कर रही थी । नताशा की बगल में एक हट्ठा कट्ठा रूसी बैठा था । हमने अनुमान लगाया - वह हमारा केजीबी माइंडर होगा । उसकी लम्बाई छ फ़ुट से ऊपर थी । कसरत से बनी देह । बाउंसर या बॉडी बिल्डर । आँखों पर काला चश्मा । गर्दन को कॉलर से ढंकता ओवरकोट । गले में स्कार्फ़ और सिर पर रूसी ऊनी टोपी । चेहरे पर शायद माता के दाग । लम्बी नीचे को झूलती मूँछें । आप कभी किसी सुनसान गली में उससे मिलें तो बहस न करें, धीरे से बगल से निकल लें ।

नताशा आज कुछ बदली बदली सी लग रही थी - बदले बदले मेरे सरकार नजर आते हैं - की तर्ज़ पर । उसके चेहरे से मातम की धूल झड़ गई थी । चेहरे की मांसपेशियों का तनाव नहीं दिख रहा था । उसका चेहरा शायद वैसा हो गया था जैसा विधाता (या मार्क्स) ने उसे दिया था । चेहरे पर यौवनसुलभ चमक थी, हल्की सी मुस्कुराहट भी । आज उसने पूरी बाँह का सफेद ब्लाउज पहन रखा था जिस पर बड़े बड़े गुलाबी रंगों के फूलों का डिज़ाइन था । ब्लाउज उसने लाल रंग की लम्बी स्कर्ट में खोंस रखा था । ऊपर से उसने सफेद ओवरकोट पहन रखा था, गले में लाल और पीले मिले जुले रंग का स्कार्फ़ और सिर पर काले रंग का फरों वाला ऊँचा हैट । चेहरे पर हल्का सा मेक अप । उसकी झील सी गहरी आँखों में आज कुछ नई चमक थी जो कल शाम न दिखी थी । यह ताजा ताजा खिली चमकीली धूप का असर था या

उसके हृदय ने आँखों को कोई विशेष संदेसा भेजा था - यह मैं तय नहीं कर पाया । बस मैं इतना जानता हूँ कि मुझ पर बेख़ुदी का हल्का सा सुरूर चढ़ा और चीज़ें आड़ी तिरछी दिखने लगीं ।
ऐसा मेरा अनुमान है कि हमारे प्रतिनिधिमंडल के प्रति और विशेष कर मेरे प्रति नताशा के हृदय में सहानुभूति, दया और अनुराग का नाजुक सा बिरवा जन्मा था । इस धारणा को सिद्ध करने या ख़ारिज करने का कोई उपकरण मेरे पास न था ।
नताशा हमें देख कर उठ खड़ी हुई, खुल कर मुस्कुराई और अपना हाथ हमारे हाथों से मिलाने के लिए आगे बढ़ाया । केजीबी वाला शख्स वैसे ही सोफे पर बैठा रहा । अब उसने जेब से सिगार निकाल लिया । हालाँकि उसका ध्यान हर वक्त हमारी गतिविधियों पर था पर वह रिसेप्शन के बाहर सड़क की तरफ देखने का स्वाँग भर रहा था ।
तभी देखते देखते प्रतिनिधिमंडल के दूसरे सदस्य भी हॉल में पहुँचे ।
१६३
***
मैंने बगल में बैठी नताशा के कान में सहमते सहमते धीरे से चाय की बाबत पूछा । बात यह थी कि बचपन से मेरी सुबह सुबह चाय पीने की आदत थी । सुबह चाय न मिले तो मैं बावला सा हो जाता था । चाय के बिना क्या तो समाजवाद और क्या ही पूँजीवाद । मेरी बात सुन कर नताशा की आँखें मेरी तरफ मुड़ीं । उन आँखों में चुहल थी, शरारत की आभा थी, शायद हल्की सी दया भी थी । उसके होंठों पर ऐसी मुस्कुराहट छाई जैसी अभी तक के मॉस्को प्रवास में मैंने किसी चेहरे पर देखी न थी । मैं हल्का सा सशंकित हुआ । अचानक मेरी नजर माइंडर पर पड़ी । मेरा अनुमान है कि उसे नताशा का इस तरह मुस्कुराना रास न आया । कहीं यह किसी कोड का प्रतीक तो नहीं ? माइंडर हर वक्त सतर्क था, वह नहीं चाहता था कि उससे कोई संकेत समझने में भूल हो और सर्वहारा समाजवाद पर खतरा मँडराए ।
मुझे नहीं लगता नताशा की मुस्कुराहट के पीछे कोई षडयंत्र रहा होगा । नताशा किसी भी और युवा स्त्री की तरह भोली भाली थी । मुस्कुराने की उसकी आदत भले ही न रही हो, पर थी तो वह भी मनुष्य ही । मुस्कुराहट पर पूरी पाबंदी कैसे लग सकती है ?
नताशा अपनी जगह से उठी और उसने कैंटीन की तरफ चलने का इशारा किया । हम कैंटीन पहुँचे । वहाँ वही दो परिचारिकाएं मौजूद थीं जिन्हें हमने पिछली रात देखा था । मोटी तगड़ी, हृष्ट पुष्ट, अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित । उनके चेहरे कल की तरह ही धीर गम्भीर थे । कभी कभी लगता जैसे उनके रूसी गोरे चेहरों पर समाजवादी मेक अप की हल्की सी परत चढ़ी हो । उन्होंने काउंटर पर रखे बर्तनों की ओर इशारा किया जिनमें खौलती चाय रखी थी । बगल में ही एक बर्तन में चीनी रखी थी । मैंने राहत की सांस ली । मेरी बचपन से चाय में कम से कम दो चम्मच चीनी डालने की आदत थी, मुझे पनछोछर चाय से नफरत थी । फिर हिम्मत करते हुए मैंने दूध की बाबत पूछा ।
नताशा ने दीवार पर लगे सूचनापट्ट की ओर इशारा किया । बात दर असल यह थी कि कैंटीन में दूध की व्यवस्था सप्ताह में दो दिन ही थी और आज का दिन उन दो दिनों में से नहीं था । मेरा मुँह एक

छोटे बच्चे की तरह लटक गया जिससे उसका खिलौना छीन लिया गया हो । नताशा ने मेरा उतरा हुआ चेहरा देखा और उसे शायद इस भावुक भारतीय युवा पर दया आई । वह काउंटर के पीछे गई और उस परिचारिका के कान में कुछ फुसफुसाई । थोड़ी देर बाद हमारे सामने एक छोटे से बर्तन में दूध आ गया । नताशा, कॉमरेड मेघनाद और मैंने अपने प्यालों में ख़ूब दूध मिलाया और हम एक टेबुल पर अपनी कुर्सियाँ लगा कर बैठ गए । माइंडर हमारे बगल वाले टेबुल पर बैठा । प्रतिनिधिमंडल के दूसरे सदस्यों ने इधर उधर बैठ कर काली चाय का स्वाद लिया ।
इस एक बात से न सिर्फ नताशा के प्रति बल्कि समाजवादी रूस के प्रति मेरे प्रेम में वृद्धि हुई ।
१६४

***

आपको तो अबतक पता चल ही गया होगा कि मैं वैज्ञानिक सोच का मार्क्सवादी हूँ, बल्कि आप चाहें तो मुझे छोटा मोटा बुद्धिजीवी भी मान सकते हैं । बुद्धिजीवी होने के नाते मैं धार्मिक अंधविश्वास और पुरातन बुर्जुवा परम्पराओं जैसी चीजों से संघर्ष करने के लिए सदा तत्पर रहा । भाग्यवाद को मैंने सदा मनुष्य जाति का शत्रु माना, धर्म से सदा अफ़ीम की तरह व्यवहार किया, पर फिर भी अब आप इसे क्या कहेंगे कि उस कैंटीन में मॉस्को की उस सुबह न सिर्फ हमें दूध और चीनी वाली चाय पीने को मिली, बल्कि वह बलिष्ठ भावशून्य रुक्ष और हृदयहीन सी दिखती परिचारिका हमारे लिए टोस्ट और चीज़ लाई । हो सकता है यह मेरा भ्रम रहा हो या फिर नताशा के साथ का प्रभाव हो पर मुझे लगा कि एक क्षण के लिए उस परिचारिका के मुख पर मुस्कान की बहुत बारीक रेखा कौंध गई, वैसी जैसे कभी कभी जब आकाश में घने बादल छाए हों और अचानक इसके पहले कि आप नोटिस कर पाएं ध्वनिविहीन बहुत बारीक बिजुरी चमके और फिर पता नहीं कहां डूब जाए । आपको तो पता ही है प्रकृति के इस खेल पर संसार के तमाम पागल कवियों ने कैसी कैसी कविताएं लिख मारी हैं । यह एक तरह का भाग्य ही तो हुआ न । शायद वैज्ञानिक क़िस्म का भाग्य ।
और आप यह भी तो देखिए कि यह सौभाग्य हम तीनों और माइंडर को ही मिला । हो सकता है हमारे भाग्य के उदय में नताशा मिखाइलोवा सोकोलोवा का हाथ भी रहा हो ।
हमारा सम्मेलन अगले दिन था । आज का दिन पूरी तरह खाली था । अब बस हम थे, नताशा थी, मास्को शहर की बर्फ़ीली धूप और चमकती सुबह थी ।
हम छात्रावास से बाहर निकले । हमारे पास वाउचर थे जिनसे हम बस, मेट्रो पर कहीं भी जा सकते थे । और पैदल पर तो कोई रोकटोक न थी । जब हम मेट्रो में घुसे तो मेरे तो होश ही उड़ गए । कहाँ तो भभुआ, मुजफ्फरपुर और दरियागंज और कहाँ तो मॉस्को की मेट्रो । मेरे लिए उस अद्भुत दृश्य का वर्णन करना संभव नहीं है । बस यह समझ लीजिए, हम अब किसी और लोक में थे । चमचमाती रेल जैसे ताजा ताजा ही गरम पानी और साबुन से धोकर, सुखा कर पेंट की गई हुई हो, अपने आप खुलते बंद होते रेल के दरवाजे, स्टेशन की भित्तियों और छत पर उकारे अद्भुत चित्र । जिधर नजर जाए उधर जगमगाती रोशनी । लगा कि यह स्टेशन न हो, कोई आर्ट गैलरी हो ।

कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि समाजवादी स्वर्ग के प्रति मेरी श्रद्धा और प्रतिबद्धता - दोनों और सुदृढ़ हुईं । मेरे हृदय के किसी कोने में, अवचेतन के किसी अंधेरे बंद कमरे में, यदि कोई शंका कहीं रही होगी तो वह एक क्षण में मिट गई और मेरा अंत:स्तल समाजवाद की दूधिया फ्लड लाइट में नहा कर जगमगा उठा । अब किसी शंका, किसी संदेह का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था । मैंने स्वयं से बुदबुदाते हुए कहा : देख लो, आँखों में भर लो, यही है मनुष्य जाति की मुक्ति का मार्ग, उसके अंतिम उत्कर्ष का ब्लूप्रिंट । मुझे बुदबुदाते देख नताशा चौंकी । उसने अपनी आवाज में सामान्य से अधिक मिठास घोलते हुए कहा : तुम ठीक तो हो न , तुम तो मेरा नाम जोकर के राज कपूर की तरह भावुक हो गए हो ।
१६५

***

हम मेट्रो से बाहर आए । हमारे सामने एक बड़ा स्क्वायर था । वृद्ध, युवा स्त्री पुरुष और बच्चों से भरा स्क्वायर । हर तरफ बर्फ की मोटी चादर बिछी थी जो अब जम गई थी और फिसलने का खतरा था । जगह जगह मशीनों से बर्फ काट कर रास्ते बना दिए गए थे । लोग भारी भरकम ऊनी कपड़ों, ओवरकोटों, दस्तानों, घुटनों तक चढ़े जूतों और फर वाले हैटों से ठंढ से अपनी रक्षा कर रहे थे । लोग बहुत गंभीर दिखते, किसी चिंता में खोए से । बच्चे जरूर इधर उधर कूदते, शरारतें करते, बड़ों से डाँट खाते । स्क्वायर दुकानों से घिरा था । कुछ कैफ़े, कुछ वोदका की दुकानें, कुछ कपड़े लत्तों की दुकानें । हमारा प्रतिनिधिमंडल एक बड़ी सी दुकान में घुसा ।

मैंने सोचा जैसा कि रिवाज है मैं मॉस्को से कुछ सौग़ात लेता चलूँ, वहाँ दिल्ली में बाँटूँगा । बड़ी दुकान थी । तरह तरह के सामानों से सजी । स्त्रियों और पुरुषों के परिधान, स्त्रियों के मेक अप के सामान । तरह तरह के टोप और जूते; छाते, हैंडबैग और अटैचियां; चाकलेटों के डब्बे । मैं देर तक दुकान में घूमता रहा । मुझे एक हैंडबैग बड़ा पसंद आया । नन्हां सा प्यारा सा लाल हैंडबैग । मैंने सोचा कि रक्तिमा को भेंट करूँगा तो उसका चेहरा किस तरह खिल उठेगा । मैं कल्पना करके ही रोमांचित हुआ । सारे दाम रूबल में थे और मेरे पास बस थोड़े से अमरीकी डॉलर थे जो निकलने के समय रक्तरंजित सर ने रास्ते के खर्च के लिए दिए थे । हैंडबैग पर एक हजार रूबल का स्टिकर लगा था । मुझे पता था दिल्ली में एक डॉलर एक सौ रूबल के बराबर माना जाता था । मैंने सोचा दस डॉलर में तो यह बैग बहुत सुन्दर और सस्ता है । मैंने काउंटर पर खड़ी महिला का, जो मेरी तरफ देख भी नहीं रही थी, बड़ी मुश्किल से अपनी तरफ ध्यान आकर्षित किया और उस हैंडबैग को ख़रीदने में रुचि का प्रदर्शन किया । मैंने बल्कि दस डॉलर का नोट भी आगे बढ़ा दिया । दस डॉलर का नोट देख कर महिला के चेहरे पर विषण्ण हिक़ारत का भाव उभरा । उसने इशारे से मुझे याद दिलाया कि उस हैंडबैग की कीमत एक हजार रूबल है और अपने बगल में दीवार पर लगे बोर्ड की ओर इशारा किया जहां मुद्रा एक्सचेंज की दर कई भाषाओं में लिखी थी : 1 रूबल = 1 डॉलर । मतलब दिल्ली के गणित से जिस हैंडबैग का दाम मैंने दस डॉलर लगाया था, उसकी कीमत इस दुकान में एक हजार डॉलर थी ।

यह कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं कि थोड़ी देर के लिए मेरा माथा जरूर चकराया । एक जमाने में मैं गणित का विद्यार्थी रहा था, स्कूल में गणित में मेरे नम्बर हमेशा अच्छे आते थे । पर यह एक नए क़िस्म का गणित था जो मेरी समझ में न आया । फिर एक ब एक मेरे दिमाग की खिड़की खुली : अब मैं दिल्ली में नहीं हूँ, समतावादी समाज में हूँ । यहाँ हर चीज बराबर है । यहां भेदभाव कैसे हो सकता है ? और फिर समाजवादी सोवियत रूबल के पूँजीवादी अमरीकी डॉलर से कमजोर होने की बात कोई सच्चा क्रांतिकारी सोच भी कैसे सकता है ? समाजवाद की समतावादी गरिमा के गर्व से मैं फूल उठा ।

बाहर ठंढ बहुत थी, दुकान में हीटिंग थी और हमें कोई विशेष काम न था - इसलिए मैं कोई घंटा भर उस दुकान में इधर उधर चक्कर लगाता, तरह तरह की वस्तुओं की छानबीन करता रहा ।

ग़ौर करने की बात यह थी कि उस एक घंटे के दौरान मैंने एक भी रूसी को उस दुकान में घुसते न देखा । कुछ मेरी तरह के हिन्दुस्तानी, कुछ अरब, कुछ अमेरिकन और ब्रिटिश सैलानी ही दिखे । और उस दौरान दुकान के अंदर घुसने वाले सैलानी सामानों का मुआयना ही करते रहे, ख़रीदने के चक्कर में न पड़े ।

मुझे लगता है यह सोवियत संघ का बाज़ारवाद को उसकी हैसियत समझाने का तरीक़ा रहा ।

१६६

***

हम सारा दिन मॉस्को नगर की बसों, सड़कों, ट्रामों, विशाल चौराहों और इमारतों के चक्कर लगाते रहे । मैं आह्लादित था, रोमांचित था । हवा स्थिर थी, कभी हल्की सी चलती और हम सिहर सिहर जाते । आकाश निरभ्र था और धूप चाँदी की तरह हम सब पर, सड़कों और इमारतों पर बरस रही थी । गुम्बदों पर बर्फ अब भी थी । धूप उन पर बरसती और कंगूरे जगमग करते । स्वर्गलोक का दृश्य हमारे सम्मुख था । पर चौराहों पर घूम रहे रूसी नागरिकों के चेहरों पर चमक कुछ कम थी । उन्हें देख कर मुझे टॉल्स्टॉय के उपन्यासों के पात्रों का स्मरण हो आया ।

मुझे यह भी ध्यान आया कि इतने सुंदर देश की ऐसी आदर्श व्यवस्था के बारे में सोल्जेनित्सिन जैसे संशोधनवादी प्रतिक्रियावादी लेखकों ने दुनिया भर में कैसा दुष्प्रचार किया । सोल्जेनित्सिन की याद आते ही मुझमें क्रोध और क्षोभ का भाव जगा । ऐसे महान समाज के बारे में ऐसी गिरी हुई बातें, ऐसी अफ़वाहें फैलाना, बुर्जुवा क्रांतिविरोधी ताकतों के हाथ मज़बूत करना ! छि: । अमेरिकी पूँजीवादी साम्राज्यवादी ताक़तों के समुद्र की लहरों से जूझता हमारे समाजवादी सोवियत संघ के द्वीप के बारे में ऐसी बातें !

ठीक है कभी हीटिंग, पानी, दूध या मक्खन की तकलीफ भी हो, तुम्हारे बोलने, आने जाने पर रोकटोक भी हो तो तुम्हें ऐसी क्रांतिविरोधी बातें तो नहीं करनी चाहिए । मक्खन, दूध, चीनी में क्या रखा है जब तुम्हारे सामने उदात्त समतावादी समाज की स्थापना का इतना बड़ा लक्ष्य है ।

मेरे सामने उस तरफ से एक अधेड़ मुच्छड़ अपनी पत्नी के संग हाथ में झोला लिए चला आ रहा था । मैंने सोचा मेघनाद सर और नताशा की मदद से समाजवादी क्रांति के बारे में एक सामान्य नागरिक की

राय ले लूँ । मैं उसकी तरफ झिझकते हुए बढ़ा । तभी केजीबी के माइंडर ने मेरा गट्टा पकड़ कर मुझे खींच लिया । वह रूसी में कुछ बोला जिसका अनुवाद नताशा ने हिंदी में किया जिसका अर्थ यह था : ऐसे व्यर्थ के लोगों से सड़क पर बात करने से समाजवाद के नियमों का उल्लंघन होता है । आपको किसी से बात करने के पहले हमसे अनुमति लेनी चाहिए । आप धैर्य रखें, मैं आपकी बातचीत रूसी नागरिकों से करवा दूँगा ।

मुझे लगा मैंने नादानी में नियम तोड़ने की भूल की, समाजवाद की मेरी समझ अभी कच्ची है ।

फिर हम उस चौराहे पर गए जहां कॉमरेड स्टालिन की विशाल मूर्ति लगी थी । सोवियत संघ की संरचना में कॉमरेड के योगदान से मैं परिचित था । मैं भाव विभोर हो गया । मैंने झुक कर प्रणाम किया और मूर्ति को बहुत देर तक ग़ौर से देखता रहा । कॉमरेड की घनी मूँछें, चेहरे पर हल्की सी मुस्कान और क्रांति के आह्वान को उठा उनका दायाँ हाथ । मेरी आँखें उस छवि से हट नहीं पा रही थीं । मैं मंत्रमुग्ध सा देर तक खड़ा रहा । नताशा ने धीरे से मेरी बाईं कोहनी छुई तो मेरी तंद्रा टूटी ।

फिर हम चले लाल चौक के उस म्यूज़ोलियम की तरफ जहां कॉमरेड लेनिन का शरीर शीशे के पारदर्शी संदूक में रखा था ताकि रूस की भावी पीढ़ियां कॉमरेड लेनिन का शरीर देखें और क्रांति की प्रेरणा प्राप्त करें । क्रांति का कभी न बुझने वाला दीप अहर्निश जलता रहे । बाहर श्रद्धालुओं की लम्बी क़तारें लगी थीं । गम्भीर, सोच में डूबे, प्रार्थना के भाव से सिक्त भक्तों के चेहरों का सैलाब ।

कोई एक घंटे बाद हमारा नंबर आया । बहुत बड़े हॉल के केन्द्र में लेनिन का शरीर बहुत बड़े संदूक में रखा था । संदूक शीशे का था और आप चारों तरफ से हर कोण से दर्शन कर सकते थे । कॉमरेड लेनिन का गोल चमकता हुआ चेहरा, उनकी हल्की सी मूँछें, उनका क्रांतिकारी परिधान - मैं १९१७ की बोल्शेविक क्रांति की स्मृति में खो गया । लगता था लेनिन किसी भी वक्त उठ कर खड़े हो जाएंगे और सर्वहारा क्रांति का आह्वान करेंगे । लेनिन सिर्फ सोवियत संघ के नहीं, सारी मनुष्य जाति के समानता और स्वतंत्रता के संग्राम के मसीहा थे । मेरी आँखों में आँसू आ गए और मैं वहीं जमीन पर साष्टांग लेट गया । अग़ल बगल के लोग पीछे हट गए, उन्होंने मेरे लिए जगह बना दी ।

१६७

***

जब मैं लेनिन के शरीर के समक्ष साष्टांग दंडवत् करके उठा तो मेरे दिमाग में अचानक एक सवाल उठा :

कॉमेरेड लेनिन का शरीर तो इतने प्रेम से यहाँ सजा कर रखा गया है ताकि भविष्य कॉमरेड लेनिन के सामने श्रद्धापूर्वक झुके, उनके आदर्श जीवन से प्रेरणा ग्रहण करे ताकि मनुष्यमात्र की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो । पर कॉमरेड लेनिन तो कम उम्र में ही चल बसे, उनके बाद इस नई नवेली और नाजुक क्रांति की बागडोर युवा कॉमरेड स्टालिन ने सँभाली, लेनिन के सपनों को साकार करने के लिए क्या नहीं किया, फासीवाद को परास्त किया, महान कृषि सुधारों को जन्म दिया, सहकारिता आंदोलन की नींव रखी - ऐसे महान क्रांतिदूत युगपुरुष जोसेफ़ स्टालिन का शरीर अपने नेता और द्रष्टा और महानायक लेनिन के बगल

में मानवमात्र को सर्वहारा क्रांति की प्रेरणा देने के लिए क्यों नहीं रखा गया ? सिर्फ एक मूर्ति से क्यों काम चलाया गया ? ठीक है, मूर्ति भव्य है, प्रेरणादायी है पर साक्षात शरीर की तो बात ही कुछ और होती ।

ऐसा क्यों कर हुआ ?

१६८

***

मुझ जैसे युवा और उत्साही समाजवादी के लिए यह महत्वपूर्ण प्रश्न था । मैंने पहले कॉमरेड मेघनाद की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखा । मैंने सोचा कि मेघनाद सर का समाजवाद का अनुभव मुझसे कहीं अधिक गहरा और लम्बा है, सर्वहारा क्रांति के इतिहास की उनकी मजबूत समझ है, बड़े बड़े नामी-गिरामी वामपंथी बुद्धिजीवियों के साथ उनका उठना बैठना है, शायद मेघनाद सर मेरी जिज्ञासा शांत करें । मैंने डरते डरते जब उनसे दबी जुबान में यह प्रश्न किया तो उनका मुख विषण्ण हो उठा । उन्होंने हिकारत की नजर से मुझे देखा । मुझे लगा मुझसे भूल हुई और सदा की तरह मैंने फिर कोई मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ दिया । मैं भूल गया था कि क्रांति करने की चीज है, आलतू फालतू सवाल पूछने की नहीं । मैं चुप हो गया । पर मेरा चेहरा लटक गया । मैंने गले में अंटका थूक निगला ।

इस बात को नताशा ने नोटिस किया । उसने हिन्दी में मुझसे कहा कि मेरा चेहरा अब गुरुदत्त की तरह लटक गया है । सवाल अच्छा है और वह उसका जवाब चाय के समय विस्तार से देगी ।

नताशा ने हमारी रात कैसे बीती - इसके बारे में भी पूछा । मैंने सहमते हुए और मेघनाद सर के चेहरे को देखते हुए रात की ठंढ और ऑयल हीटर से निकलती जहरीली गैस की चर्चा करीब करीब फुसफुसाते हुए की । साथ में यह भी कहा कि ऐसी बातें कहते हुए मैं हिचकता हूं, मुझे ऐसा लगता है कि जब हम क्रांति के सेनानी होने के नाते अपना जीवन समाजवाद को समर्पित कर चुके हैं तो ऐसी छोटी छोटी बातों का जिक्र करना ओछापन भी है और विषयांतर भी ।

नताशा मेरी तरफ देखकर मुस्कुराई ।

१६९

***

दिन भर के मॉस्को दर्शन के उपरांत प्रतिनिधि मंडल आवास को लौट गया । हमें चाय की तलब लगी थी । हम कैंटीन की तरफ बढ़े । हम तीन फिर साथ साथ बैठे । माइंडर हमारे बगल वाले टेबुल पर और बाकी सारे लोग दूसरे टेबुलों के इर्दगिर्द । इस बार हमें या नताशा को कुछ कहना न पड़ा । परिचारिका खुद ब खुद हमारे सामने बढ़िया दूध चीनी मिली खौलती चाय रख गई । हमारी जान में जान आई ।

नताशा ने रहस्य भरी नजरों से मेरी ओर देखा और हिन्दी में बोली : तुम पूछ रहे थे न कि कॉमरेड स्टालिन का शरीर कॉमरेड लेनिन की तरह म्यूजोलियम में सुरक्षित क्यों नहीं रखा गया ? यह लम्बा किस्सा है, धैर्य से सुनने की माँग करता है । तुम थक गए हो । एक दो कप चाय पी कर पहले तरोताज़ा

हो लो । तुम समाजवाद के गम्भीर अध्येता हो, तुम्हें नहीं बताऊँगी तो फिर किसे बताऊँगी ? उसकी आँखों में मेरे लिए छोह की छाया थी ।
हम गरम गरम चाय सुड़कने लगे ।

१७०

***

नताशा बोलती गई :

देखो, मेरी बात ध्यान से सुनना । सिलसिलेवार बाताऊंगी । आराम से । हहुआना मत नहीं तो गलत निष्कर्ष पर पहुँचोगे ।

ऐसा कहते हुए वह पहले खाँसी और लगातार बोलती चली गई :

कॉमरेड लेनिन का देहांत कम उम्र में ही हो गया । वे अपनी मेहनत, अपनी जद्दोजहद, अपने बलिदान के फल की बस एक झलक ही देख पाए थे । लेनिन की मृत्यु के बाद सारे देश में पर विशेष तौर पर मॉस्को में कोहराम मच गया । उनके शरीर के अंतिम दर्शनों के लिए भारी भीड़ जुटती । अच्छे खासे बाल बच्चेदार लोग भोंकर भोंकर कर रोते, पछाड़ मार कर गिरते । खास तौर पर स्त्रियों का तो रो रो कर बुरा हाल था । लगता था जैसे उनकी जिंदगी के अंधेरे बंद कमरे की अकेली लालटेन बुझ गई हो । बच्चे अपनी माँओं का आँसुओं से गीला चेहरा देखते और देखा देखी वे भी रोने लगते । यह सिलसिला कई दिनों तक चला । कहते हैं कि मॉस्को की बर्फ़ीली सर्दियों के बावजूद जब शरीर की स्थिति बिगड़ी तब युवा जोसेफ स्टालिन ने जिनके कंधों पर अब इतने बड़े देश और इतनी महान क्रांति की यात्रा जारी रखने का भार था, कॉमरेड लेनिन के शरीर को embalm कर इस म्यूजोलियम में रखवाने का निर्णय लिया । कॉमरेड स्टालिन निर्णय लेने में संकोच नहीं करते थे । तब से लेनिन वहाँ वैसे ही लेटे हैं जैसे तुम उन्हें अभी देख कर आए हो । तुम खुद ही जोड़ लो, पचास बरस से तो ऊपर हो गए होंगे, कहीं कोई परिवर्तन न हुआ । श्रद्धालु रोज हजारों की संख्या में दर्शन करते हैं, शीश नवाते हैं, प्रेरणा ग्रहण करते हैं । पर्यटक भी यही करते हैं ।

नताशा ने चाय की एक चुस्की ली ।

१७१

***

नताशा बोलती गई :

कहते हैं कि कॉमरेड व्लादिमीर लेनिन की पत्नी नेडेजाडा क्रुपसकाया ने लेनिन के शरीर को embalm किए जाने का बहुत विरोध किया । उनका कहना था कि लेनिन के शरीर को परम्परागत तरीके से दफनाया जाय । पर उनकी बात मानने में कॉमरेड स्टालिन असमर्थ रहे । उनका मानना था कि लेनिन का शरीर उनके जीवन की ही भांति किसी परिवार का नहीं, समूचे सोवियत संघ और समाजवादी सर्वहारा समाज बल्कि समूची मानवजाति की धरोहर है । दफना दिए जाने से मानव-समाज को एक महान प्रेरणा स्त्रोत

से सीखने और अपने जीवन को सजाने संवारने का अवसर छिन जाएगा । कॉमरेड स्टालिन अपने नायक की स्मृति का अनादर कैसे कर सकते थे ?

१७२

***

लेनिन के निधन के बाद लम्बे अरसे तक कॉमरेड स्टालिन ने समाजवाद के इस बिरवे को साम्राज्यवादी शक्तियों के षड्यंत्रों से बचा कर निकाला, उसे खाद पानी दिया, झंझावातों से बचाया, मज़बूत किया । द्वितीय युद्ध में स्टालिन की सूझबूझ के कारण ही नाज़ी जर्मनी की हार हुई और सारी मनुष्य जाति विनाश के कगार से बच कर लौट आई । समूचा विश्व - यहाँ तक कि पूँजीवादी देश भी - कृतज्ञतापूर्वक मानवजाति को दिशा देने के लिए, भयानक संकट के समय सक्षम और कुशल नेतृत्व देने के लिए स्टालिन को याद करता है, उनकी सराहना करता है । कॉमरेड ने बहादुरी से सोवियत संघ में सहकारी खेती का अभियान चलाया । वही अभियान जिसकी तर्ज़ पर तुम्हारे देश में महानायक जवाहरलाल नेहरू ने भी सहकारिता आंदोलन की अलख जगाई । कुछ लोग कहते हैं, सोवियत संघ में इस आंदोलन के दौरान दो तीन करोड़ किसानों का जीवन बलिदान हुआ । मेरा अपना मानना है कि यह संख्या अतिरंजित है, द्वेष की भावना से बढ़ा चढ़ा कर बताई गई है । और इसके अतिरिक्त तुम्हें तो पता है हर क्रांति अपनी कीमत माँगती है । बलिदान की नींव पर ही भविष्य के आदर्श ख़ुशहाल समाज की इमारत की नींव पड़ सकती है ।

कॉमरेड स्टालिन के ऐसे निर्णयों का ही फल है कि सोवियत संघ दुनिया के शीर्ष देशों में अपना स्थान बना सका, हमने वैज्ञानिक प्रगति की मिसाल क़ायम की, मनुष्य को अंतरिक्ष में भेजा । हम एशिया, अफ़्रीका, लैटिन अमेरिका के दबे कुचले देशों के लिए हौसला और ढाढ़स का सवब बने, हमारे कारण वे उपनिवेशवाद साम्राज्यवादी ताक़तों से जूझ सके ।

१७३

***

समाजवादी संसार को लम्बे समय तक सक्षम नेतृत्व प्रदान करने के बाद जब कॉमरेड स्टालिन की मृत्यु १९५३ में हुई तो जनता में हाहाकार मचा । पता नहीं तुम्हें पता है या नहीं उनके शरीर के अंतिम दर्शन के लिए मॉस्को की सड़कों पर भगदड़ मची और दर्जनों नागरिकों ने शहादत दे दी । इस बात से पता चलता है कि जनता के हृदय में कॉमरेड स्टालिन के लिए न सिर्फ आदर बल्कि गहरा प्रेम था ।

जिस म्यूज़ोलियम में लेनिन का शरीर embalm कर रखा गया था, उसी म्यूज़ोलियम में लेनिन के ठीक बगल में स्टालिन का शव भी उसी शानो शौक़त से सजा कर रखा गया । बल्कि लोग तो कहते हैं कि कॉमरेड स्टालिन का लम्बा चौड़ा शरीर मिलिटरी लिबास और तमाम मिलिटरी पदकों आदि की सजावट के साथ कॉमरेड लेनिन के शरीर से कहीं अधिक प्रभावपूर्ण रहा । जहां कॉमरेड स्टालिन का शरीर इतना भव्य था वहीं लेनिन क़द काठी में साधारण, नागरिक वेश भूषा में बिना किसी अलंकरण के बहुत सादे दिखते थे ।

म्यूज़ोलियम के बाहर एक शिलापट्ट था जिस पर बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था :
L E N I N
स्टालिन के शरीर के यहाँ लिटाए जाने के बाद उसके ऊपर पेंट कर दिया गया और उसके नीचे बड़े बड़े अक्षरों में लिखा गया :
S T A L I N
पर मौसम की मार से समय के साथ यह पेंट धुल गया और पहले लिखा L E N I N अंदर से उभर कर S T A L I N के ऊपर दिखने लगा । यह बहुत भद्दा लगता था, इसलिए उसे हटा कर दूसरा शिलालेख लगाया गया जिसमें दोनों नाम लिखे हुए थे ।
एक दिलचस्प बात यह हुई कि जब नया शिलालेख लगाया गया तब एक बहादुर और दूरदृष्टि वाले अधिकारी ने अपनी जान जोखिम में डाल कर पुराना शिलालेख कहीं छुपा कर रख दिया । उस समय पता चल गया होता तो सम्भवत: उसे राजद्रोह के अपराध में मृत्युदंड मिला होता पर विधि का विधान देखो कि इसी कृत्य के लिए बाद के वर्षों में सारे देश में उसकी महान नायक की तरह प्रतिष्ठा हुई, मान सम्मान मिला ।
तुम शायद विश्वास न करो, स्टालिन का वैभवशाली शरीर लेनिन के बहुत सामान्य शरीर के बगल में उस म्यूज़ोलियम में वर्ष १९५३ से १९६१ तक आठ वर्षों तक रहा । पर तब तक ख्रुश्चेव का शासन आ चुका था । ख्रुश्चेव किन्हीं कारणों से स्टालिन को पसंद नहीं करते थे । स्टालिन के बारे में बहुत सारी बातें उस समय कही गईं जिनका ब्योरा देकर मैं अपना और तुम्हारा दिल छोटा नहीं करना चाहती ।
मतलब संक्षेप में इतना समझ लो कि यह सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का दुर्भाग्यपूर्ण काल था । उसी दौरान यह बात उठी कि फालतू में दो दो शरीरों की देखभाल में सर्वहारा की मेहनत का पैसा अनावश्यक खर्च हो रहा है । वैसे वे आर्थिक कठिनाई के दिन भी थे । और शायद ख्रुश्चेव स्टालिन की स्मृति को लेनिन की गरिमामयी स्मृति से अलग करना चाहते थे । सोवियत समाज में स्टालिन के बारे में तमाम तरह की बातें फैलीं । कई लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि स्टालिन लेनिन के सच्चे शिष्य नहीं थे ।
उन्हीं दिनों डोरा अब्रामोव्ना लाज़ुरकिना नाम की एक प्रसिद्ध अस्सी वर्षीय महिला ने, जो स्वयं ख्यातिनाम बोल्शेविक क्रांतिकारी और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की वरिष्ठ अधिकारी थी और एक समय में लेनिन की सहयोगी रही थी, यह सार्वजनिक घोषणा की :
कॉमरेडों, मैंने अपना जीवन लेनिन की मृत्यु के बाद भी सदा उनकी संगति में बिताया है । कॉमरेड सदा मेरे हृदय में बसते हैं । जब भी मेरे जीवन में कोई कठिन क्षण आया मैंने कॉमरेड की सलाह माँगी । मैं उनसे तकरीबन रोज गुफ्तगू करती हूँ । कल रात जब मैंने उनसे मंत्रणा की तो वे बिल्कुल मेरी बगल में आकर खड़े हो गए जैसे कि वे जीवित हों, कभी मरे ही न हों और उन्होंने आर्त स्वर में अपना दुख मुझसे साझा किया । बोले :
"स्टालिन की बगल में लेटना मेरे लिए बहुत दुखदायी है । स्टालिन बहुत कमीना था । उसने कम्युनिस्ट पार्टी का बहुत नुक़सान किया ।"

इस रहस्योद्घाटन के बाद स्टालिन का शरीर धीरे से उस म्यूज़ोलियम से निकाल कर क्रेमलिन में ही म्यूज़ोलियम से सिर्फ ३०० मीटर दूर पेड़ों के छुरमुट के पीछे बिना किसी चर्चा या समारोह के दफ़ना दिया गया ।

इस तरह नताशा ने यह बहुत दिलचस्प और करीब करीब भुतहा टाइप का वृत्तांत समाप्त किया । मेरे शरीर में झुरझुरी तो छूटी पर समाजवादी समाज के बारे में मेरी समझ भी बढ़ी ।

अब हम अपने कमरों में लौटने वाले ही थे कि नताशा उठ कर काउंटर के पीछे गई और दो रबर के हॉट वाटर बॉटल ले आई जिनमें खौलता हुआ पानी भरा था । उसने कहा : तुम लोग एक एक बॉटल अपनी रजाई के अंदर रख लेना । तुम्हें रात भर ठंढ नहीं लगेगी ।

सच कहूँ तो मुझे विश्वास न हुआ । इस हाड़कंपाऊ बर्फीली ठंढ में इस मामूली सी बोतल से क्या होगा ! पर हम नताशा का अपमान नहीं करना चाहते थे खास तौर पर जब वह हमारा इतना ख्याल रख रही थी । हमने आदर सहित दोनों बोतलें सहेज कर रखीं, नताशा को शुभ रात्रि कहा । थोड़ी देर बाद हमने आलू और उबले अंडों का भोजन किया और डकारते हुए अपने कमरे में लौट गए । लिफ्ट अब चल तो रही थी पर हमारी उसमें घुसने की हिम्मत न पड़ी । हमने सीढ़ियों का रास्ता पकड़ा । किसी तरह कुल्ला वगैरह करके हम अपने अपने बिस्तरों में घुसे । हमने रजाई के अंदर गरम पानी वाली बोतल रख ली । आप विश्वास न करेंगे कि उस एक मामूली सी बोतल से न सिर्फ हमारा बिस्तर रात भर गर्म रहा बल्कि हल्का सा पसीना भी छूटा और हीटर की जरूरत न पड़ी ।

१७४

***

उस दिन सुबह बाहर कोहरा छाया था । इमारतें धुंध में लिपटी कभी दिखतीं, कभी आँखों से ओझल होतीं जैसे कि कोई आंख मिचौली का खेल चल रहा हो । मॉस्को शहर जैसे किसी दूसरे लोक में प्रवेश कर गया था । दूर किसी चिमनी से निकलता सफेद धुआँ जैसे कि बर्फ की लकीर आकाश में खींच गया था । सड़कों पर लोग कम थे । कोई इक्का दुक्का गाड़ी किसी तरह धुंध में धीरे धीरे सरकती । सड़कों के किनारे बने बस अड्डों पर मांएं अपने छोटे बच्चों की उँगली पकड़े स्कूल बस की प्रतीक्षा कर रही थीं । अजीब बात यह थी कि मॉस्को के बच्चों के चेहरे मुज़फ़्फ़रपुर के स्कूल जाते बच्चों के चेहरों से बहुत अलग न थे । उनका रंग गोरा जरूर था, बाल भूरे जरूर थे पर वे अपनी माँओं की उँगलियाँ वैसे ही पकड़ते थे, दूसरे बच्चों के संग शरारतें भी वैसे ही करते थे । यह देख कर मुझे अचंभा हुआ ।

एक अच्छी बात यह हुई थी कि उस सुबह हमें कैंटीन में मक्खन लगा सफेद टोस्ट और कॉफी पीने को मिल गई थी । हम तरोताज़ा थे । सुबह मैंने पिछले दिन की तरह स्नान कर लिया था और जिलेट ब्लेड से दाढ़ी भी छील ली थी । मेरा चेहरा अब चिकना और तरतीब से था । आज युवा सम्मेलन था जिसमें मेरा भी पर्चा पढ़ा जाना था । मैं इस विशेष अवसर के लिए दिल्ली से सूट सिलवा कर लाया था । सफेद सूती कमीज, भूरे रंग का सूट और कत्थई टाई । भूरे रंग के जूते और भूरे ही मोज़े । टाई बाँधना रक्तिमा ने सिखा दिया था । ऊपर से मैंने काला ओवरकोट और सिर पर लाल रंग का कनटोप पहन लिया था ।

आवास से निकलते समय मैंने लॉबी में लगे शीशे में अपनी शक्ल देखी थी और मुग्ध हो गया था । मेघनाद सर ने भी आज धुले हुए कपड़े पहन लिए थे । बहुत नज़दीक जाने पर ही तम्बाकू और पसीने की हल्की सी गंध मिलती थी ।
सभागार हमारे आवास से बहुत दूर न था । इसलिए सुबह सुबह धुंध में हम पैदल ही निकल चले थे । नताशा ने सभागार के द्वार पर हमसे मिलने का वादा किया था । आज मुझे अपना पर्चा भी पढ़ना था । इसके पहले इतने बड़े सम्मेलन में तो क्या छोटी मोटी सभाओं में भी मैंने ऐसे अकादमिक पर्चे नहीं पढ़े थे । कुछ कविताएँ ज ने वि में अवश्य पढ़ी थीं । कहने की आवश्कता नहीं होनी चाहिए कि एक तरफ तो इतने बड़े सम्मेलन में भाग लेने का रोमांच और अभिमान था, पर दूसरी तरफ नर्वसनेस भी थी । कभी कभी मेरे होंठ सूखते तो मैं उन्हें जीभ से गीला कर लेता । पाँव भी कभी कभी इधर उधर पड़ जाते थे । दिल कभी एक ब एक तेज धड़कता । मैं गहरी साँस ले ले कर दिल की धड़कन धीमी करने का प्रयास करता । पेपर तो ठीक से लिखा था, रक्तिमा के सामने पढ़ कर रिहर्सल भी कर लिया था फिर भी कहीं कोई गलती न हो, भद्द न मचे, इसका भय तो दिल में था । मैंने हृदय की शांति के लिए मुँह में एक च्यूंइंग गम भी रख लिया जो मैं दिल्ली से लाया था ।
देखते देखते ही उस धुंध में हमारे सामने उस विशाल सभागार की आकृति उभरी । बाहर खंभों से पीली रोशनी झरती और धुंध के संग मिल कर एक अजीब रहस्यमय वातावारण बनाती । बाहर सैकड़ों रंग बिरंगे झंडे ऊँचे खंभों पर लटके थे । हर प्रतिनिधि देश का झंडा । अचानक कोने में हमें अपना तिरंगा दिखा और मेरे हृदय में देशभक्ति का भाव जागृत हुआ । द्वार के बाहर काफी लोग खड़े थे । अचानक उस भीड़ में से नताशा का चेहरा दिखा । नताशा का मासूम ताजा फूल की तरह खिला चेहरा । वह हमें देख मुस्कुराते हुए हमारी तरफ बढ़ी और बारी बारी प्रतिनिमंडल के सब सदस्यों से हाथ मिलाया । उसका हाथ
बहुत ठंढा पर ताजा और बहुत मुलायम था ।
१७५
***
अब आपको यदि यह बताते हुए मैं हिचकिचाता हूँ कि भारत से गए बीस युवाओं के प्रतिनिधिमंडल में पर्चा सिर्फ मुझे ही पढ़ना था तो आपको इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए । आपने मेरे संग धैर्यपूर्वक इतनी लम्बी यात्रा की है, मैं यह कैसे मान लूँ कि अभी तक आप मेरे शर्मीले, लाज लिहाज और हीनता के भाव से भरे स्वभाव से परिचित नहीं हुए होंगे । पुराने लोग कह गए हैं कि कठिन से कठिन बात मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति को ठीक से और धैर्य से समझाई जाय तो कोई कारण नहीं कि उसे वह बात समझ न आए । और आप मूर्ख थोड़े ही न हैं, आप तो सम्मानित और सुधी पाठक हैं ।
विशाल सभागार था । पचासों देशों से आए युवाओं का सम्मेलन । रोमानिया से, अफगानिस्तान से, युगांडा से, क्यूबा, बोलीविया और पता नहीं कहां कहां से, दुनिया के किस किस कोने से । वहां मानवता का सागर ठाठें मारता हुआ मालूम पड़ता था । रंग रंग के चेहरे - गोरे, काले, भूरे, पीत चेहरे । भाँति भाँति

की पोशाकों में सजे । अफ़्रीकी प्रतिनिधिमंडल की कई स्त्रियों ने रंगबिरंगे हेडगियर धारण किए हुए थे, उनके पुरुषों ने लम्बे रंगीन चोगदे पहने हुए थे । आखिर यह दुनिया के सर्वहारा युवाओं का सम्मेलन था । सारी दुनिया वहाँ हिलोरें मार रही थी ।

मैंने इधर उधर नजर दौड़ाई तो मेरे अतिरिक्त उस सभागार में इक्का दुक्का लोग ही औपचारिक सूट और टाई में थे । मुझे चिंता हुई कि कहीं मुझसे कोई क्रांतिविरोधी फूहड़ काम तो नहीं हो गया । मैं संकोच से गड़ गया । मैंने बगल में बैठे कॉमरेड मेघनाद की ओर सांत्वना के लिए देखा, पर मेघनाद सर ने ध्यान न दिया, वे अपने बगल में बैठी रोमानिया की सुंदरी से वार्तालाप में व्यस्त थे । फिर मैंने दाईं तरफ बैठी नताशा की ओर नर्वस निगाहों से देखा तो वह मुस्कुराई और मेरी जान में जान आई । माइंडर हमारे पीछे वाली कतार में बैठा था ।

सुसज्जित मंच के बीचों बीच अध्यक्ष के बैठने का स्थान था और दाईं तरफ वक्ता के बोलने के लिए स्टैंड और माइक्रोफ़ोन ।

मंच की पृष्ठभूमि में तीन विशालकाय और भव्य चित्र लगे थे । बाईं ओर कॉमरेड लेनिन, बीच में कॉमरेड ब्रेजनेव और बिल्कुल दाईं ओर कॉमरेड स्टालिन ।

लेनिन का चेहरा गंभीर और विचार में डूबा मालूम होता था । ब्रेजनेव के बलशाली चेहरे पर घनी भौंहें किसी वनैले रीछ का आभास देती थीं । स्टालिन भव्य सैनिक पोशाक में थे, उनकी मूँछें क़रीने से कटी और घनी थीं, उनके होंठों पर बहुत हल्की मुस्कुराहट का झीना स्पर्श था । मैंने मन ही मन तीनों महापुरुषों को प्रणाम किया । उन तीनों विशाल चित्रों के पीछे बीच में करीब करीब छत को छूते हुए एक बलशाली युवा पुरुष की मूर्ति थी जिसके चेहरे पर दृढ़ निश्चय और क्रांति के लिए समर्पण का भाव था और जिसका दायाँ हाथ चुनौती की मुद्रा में सख़्ती से आकाश में उठा था और जिसके दाएं हाथ की मुट्ठी कसी हुई बुर्ज़ुवा को चुनौती देती मालूम होती थी ।

सभागार की हवा में समाजवाद की गंध घुली थी, क्रांति की बिजुरी चमकी तो न थी, पर किसी भी वक्त चमकने का आश्वासन देती हुई सी मालूम होती थी ।

मेरा सीना गर्व और अभिमान से फूल गया था ।

१७६

***

अध्यक्ष या संचालक की कुर्सी पर सोवियत फ़ौजी लिबास में एक हट्टा कट्टा युवक बैठा हुआ था । उसने सामने रखे टेबुल को किसी हथौड़े जैसी चीज से ठोंका और सारे सभागार में सम्पूर्ण मौन छा गया । उसने रूसी भाषा में कुछ कहा और खड़ा हो गया । देखते देखते ही तरह तरह के वाद्यों से लैस फ़ौजी लिबास में सजे संगीतकार उसके पीछे आ खड़े हुए । फिर संचालक भी उठ खड़ा हुआ । उसके खड़ा होते देख सभागार में बैठा प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ । संचालक का दायाँ हाथ माथे पर सैल्यूट की मुद्रा में था । देखादेखी बाकी सब लोगों ने वही मुद्रा अपना ली ।

और अचानक सभागार में अद्‌भुत विस्मयकारी संगीत की लहर हौले हौले उठी और शनैः शनैः तीव्र होती चली गई । जहां वक्ताओं के लिए खड़े होने की व्यवस्था थी, वहाँ अब एक युवा स्त्री खड़ी थी जो गा रही थी और फिर उसके साथ पीछे ऑर्केस्ट्रा बज रहा था । मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था पर मेरे स्नायुतंत्र झंकृत हो रहे थे, मेरा सीना गौरव से फूला जा रहा था । मैंने कल्पना की कि जब नेपोलियन ने मॉस्को पर हमला किया होगा तो जबांज रूसी बहादुरों ने यही गीत गाते हुए नेपोलियन के साम्राज्यवादी आक्रमण का सामना किया होगा । मेरे हृदय में इस विशाल गौरवशाली राष्ट्र के बलिदानों, उसकी मेहनतकश जनता के संघर्ष, साम्राज्यवादी ताक़तों से जद्‌दोजहद के उसके जज्बे की याद उभरी, मेरे रोएँ खड़े हुए, मुझे रोमांच हो आया, मैं रुआँसा होते होते बचा ।
फ़ौजी आर्केस्ट्रा की ध्वनि ऊँची चढ़ती गई, ऊँची चढ़ती गई और फिर अचानक उत्तुंग शिखर पर पहुँचने के बाद गगनभेदी नगाड़े की चोट के साथ थम गई । सभागार में अचानक फिर मौन का साम्राज्य स्थापित हुआ । लोग तंद्रिल सी अवस्था से धीरे धीरे सामान्य अवस्था में लौटे और अपनी सीटों पर वापिस बैठ गए । मैंने अनुमान लगाया कि यह सोवियत संघ का राष्ट्रगीत रहा होगा । रूसी भाषा में होने के कारण शाब्दिक अर्थ भले ही समझ में न आया हो पर जैसा कि मर्मज्ञ पाठकों को स्मरण कराना मेरा दुस्साहस होगा कि भाव को संप्रेषित करने के लिए किसी भाषा की बैसाखी की दरकार कभी नहीं रही । मैं रोमांचित था, मैं पुलकित था । बाद में मैंने नताशा से इसकी बाबत पूछा । नताशा ने कहा :
यह राष्ट्गीत था । बहुत लम्बा है, पर थोड़े में हिन्दी में इसका मर्म यूँ है :
अखंड अनंत हमारा सोवियत संघ
शाश्वत हमारा सोवियत संघ
विश्वविजयी हमारा सोवियत संघ
सर्वहारा का स्वर्ग हमारा सोवियत संघ
यह लेनिन की धरती, यह स्टालिन की पितृभूमि
एकता की जंजीर में बंधा हमारा सोवियत संघ
पूंजीवाद को पैरों तले रौंदता हमारा सोवियत संघ
साम्यवाद को समर्पित हमारा सोवियत संघ
महान कम्युनिस्ट पार्टी को समर्पित हमारा सोवियत संघ
१७७
***
फिर पर्चों के पढ़े जाने का सिलसिला प्रारम्भ हुआ । संचालक देश और वक्ता का नाम पुकारता और वक्ता मंच पर जाकर अपना पर्चा पढ़ता । पर्चा पढ़ना समाप्त होने पर हॉल करतल ध्वनि से गूँजता । सबसे पहले क्यूबा की बारी आई । फ़िडेल कैस्ट्रो जैसे खाकी फ़ौजी परिधान में और वैसा ही टोप पहने एक युवा स्त्री आई और उसने स्पैनिश भाषा में जोशीला भाषण दिया । उसके बगल में एक रूसी युवक खड़ा था जिसने उसके भाषण का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया । फ़िडेल कैस्ट्रो के लिए उस समूह में कितना प्रेम था

- इसका अनुमान तालियों की गड़गड़ाहट के लगातार चालू रहने से पता चलता था । फिर बोलीविया, अफ़ग़ानिस्तान, अंगोला, पूर्वी जर्मनी, पोलैंड आदि आदि देशों के प्रवक्ता आते गए, बोलते गए, सभागार तालियों से गूँजता गया ।
अचानक देखता क्या हूँ कि मेरा नम्बर आ गया । मैं सीट से उठ तो गया, पर मेरे पाँव काँप रहे थे, मेरा हलक सूख रहा था । नताशा ने मेरी नर्वस स्थिति तुरंत समझ ली और मुझे साहस से काम लेने की सलाह दी । मैं किसी तरह गिरता पड़ता मंच तक पहुँचा । मुझे बोलने के लिए दस मिनट मिले थे । जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, मेरे पर्चे का विषय था :
- दक्षिण एशिया में सर्वहारा संघर्ष की दिशा और हिन्दी साहित्य -
अब आप खुद ही समझ लीजिए, इतने गूढ़ और कठिन विषय को दस मिनट में प्रस्तुत करना कितनी कठिन बात थी । पर चिन्ता की कोई बात वैसे थी ही नहीं । पर्चा मेरी जेब में था, जिसे मुझे सिर्फ पढ़ना था । रक्तिमा की अंग्रेज़ी बहुत अच्छी थी, उसने कायदे से टाइप कर भाषण मुझे सौंपा था ।
मैंने हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील, जनवादी और साम्राज्यवादविरोधी धारा का संक्षिप्त चित्र खींचा । प्रारम्भ मैंने कबीर से किया । बताया कि कबीर ने कैसे दबे कुचले सर्वहारा की मुक्ति के लिए साहित्य रचा । कबीर के बाद मैंने आधुनिक समय के नक्सल कवि निराला का वर्णन किया । वह तोड़ती पत्थर जैसी क्रांतिकारी और पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाती कविता । फिर प्रेमचंद, मुक्तिबोध, धूमिल से होता हुआ मैं मुद्राराक्षस तक पहुँचा । बंगाल के नक्सलबाड़ी आंदोलन के हिन्दी साहित्य पर प्रभाव की चर्चा की । राजेन्द्र यादव की छत्रछाया में सर्वहारा साहित्य को मज़बूत करने वाले स्तम्भ हंस और उसके ज़रिए प्रसूत हुए और हुई नई प्रतिभाओं का संक्षेप में विवरण दिया । कहा कि सर्वहारा संघर्ष में हिन्दी का लेखक कवि सच्चे कॉमरेड की तरह कंधे से कंधा मिलाकर कर समर्पण भाव से लगा है । हंस जैसी पत्रिकाएं और जनेवि जैसे शिक्षा संस्थान इस पवित्र मुहिम में अपना पूरा योगदान दे रहे हैं । भारत में सर्वहारा क्रांति का भविष्य उज्ज्वल है और वह दिन दूर नहीं जब भारतीय लेनिन और स्टालिन भारतीय समाजवाद को उसी ऊंचाई पर ले जाएंगे जहां आज हमारा प्रेरणास्रोत और मानसिक पितृभूमि सोवियत संघ है । मैंने अपने भाषण की समाप्ति जय सर्वहारा, जय समाजवाद, जय लेनिन, जय स्टालिन के नारों सी की ।
सभागार देर तक तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा । मैं जब मंच से उतरा तो मैं जैसे किसी नशे में था, मेरा सिर आसमान में था, पर पांव धरती पर न थे । मैं गर्व और रोमांच की नशीली लहरों में भींगता हुआ किसी तरह अपनी सीट पर लौटा । नताशा तब भी जोर जोर से तालियां बजाए ही जा रही थी । उसने अचानक उठ कर मुझे बाएं गाल पर चूम लिया । मैं हक्का बक्का रह गया । कॉमरेड मेघनाद ने भी अनमने मन से मुझे बधाई देते हुए मुझसे हाथ मिलाया ।
१७८

***

सच बताऊँ तो आज मैं यह कथा आगे बढ़ाने की स्थिति में नहीं हूँ । पर आपको तो पता ही है मैं कर्तव्य की भावना का मारा हूँ । मैंने कर्तव्य के मार्ग में कभी किसी चीज को आड़े न आने दिया, बेरहमी से झटक दिया । इसी प्रवृत्ति का परिणाम रहा कि मेरा क्रांतिकारी जज़्बा इस कदर परवान चढ़ा । तो कर्तव्य की माँग है कि आंसू पोंछो, चाहो तो एक कप चाय और पी लो, पर काम में लग जाओ ।
१७९

***

नताशा का इस तरह एक विदेशी लड़के को चूमना माइंडर को पसंद न आया । यह जलन के कारण था या प्रोटोकॉल के उल्लंघन के कारण - यह मैं बता न पाऊंगा । नताशा की नज़रें किसी वजह से पीछे मुड़ीं तो उसे माइंडर की आँखों में रोष की हल्की सी झलक दिखी - जैसे कि किसी शरारती बच्चे ने क्लास में कोई ऊटपटाँग हरकत की हो । हम सारा दिन सभागार में बैठे रहे । जब बाहर निकले तो धुंध पूरी तरह छँट चुकी थी और मॉस्को शहर अपरान्ह के सूरज की बर्फीली सफेद रोशनी में चाँदी की तरह चमक रहा था ।

हम पाँच दिन मॉस्को शहर में रहे । इस दौरान पास के ग्रामीण इलाक़ों में गए । खेती और कारख़ानों के काम से हमारा परिचय हुआ । यह सब नताशा और माइंडर के सौजन्य से हुआ । हम वहाँ गए जहां वे हमें ले गए । उनसे बातचीत की जिनसे हमारी बात करवाई गई । प्रोटोकॉल के नियम ही ऐसे थे । मुझे पता था कि समाजवादी समाज की नींव ही अनुशासन पर खड़ी है । व्यक्ति का काम है कि अपना चक्कर छोड़े, समाज की दृष्टि से देखे, समाज के लिए सब कुछ दाँव पर लगा देना है - इस भाव से जिए और मरे ।

मैं किसानों को और उनकी खेती को देख कर बहुत प्रभावित हुआ । जमीन पर किसी की माल्कियत नहीं । सारी जमीन समाज की, सरकार की । तुम किसान हो, खटो, ठीक से काम करो और पैदावार का बराबर बराबर अंश लो । मुझे लगा कि यही तरीक़ा है जिससे वर्गविहीन, समतावादी समाज का निर्माण हो सकता है । मेरा सिर मन ही मन समाजवाद के प्रवर्तकों - मार्क्स, लेनिन और अब ब्रेजनेव के लिए आदर से झुका ।

मैंने यह भी नोट किया कि चाहे वे खेतों में काम करने वाले किसान हों, या कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर, वे आपसे में हँसी मजाक और गप्प करने जैसी खराब आदतों में जकड़े न थे । उनके चेहरे गंभीर थे, उनका ध्यान अपने कर्तव्य पर केंद्रित था । इस बात ने मुझे बहुत प्रभावित किया । वैसे भी शुरु से ही हर बात में हीही हो हो करने वाले कामचोर और आलसी लोगों से मुझे वितृष्णा रही । मुझे सदा लगा कि मनुष्य को अपना जीवन बर्बाद नहीं करना चाहिए, कर्तव्य पालन में लगाना चाहिए ।

उन पांच दिनों में हमने मॉस्को की सुबहें देखीं, शामों के नजारों का लुत्फ लिया, रातों का अंधेरा देखा । हमने धुंध, बारिश और बर्फ के दृश्यों का रस लिया । मुझे कई बार विश्वास ही नहीं होता था कि मैं कहाँ आ गया हूँ । कभी कभी भ्रम होता कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूँ । मैं चिकोटी काटता और मन को तसल्ली दिलाता कि यह सपना नहीं सच है, मैं सर्वहारा समाज के अलौकिक सौंदर्य रस में डूबा हूँ ।

आखिर वह दिन एकदम पास आ ही गया जब हमें यह स्वर्गलोक छोड़ना था । आपको तो पता ही है कि इस संसार में कोई भी चीज, कोई भी बात स्थायी नहीं है । हर बात बीत जाती है, हर रोशनी बुझ जाती है । पर यह बात समाजवाद के अखंड सौंदर्य पर लागू है या नहीं - इसका मुझे पक्का पता नहीं है ।
हमारी विदाई की पूर्वसंध्या पर हमारे मेज़बानों ने हमारे लिए उसी छात्रावास के हॉल में संक्षिप्त विदाई समारोह का आयोजन किया । खाने के लिए पावरोटी, चीज के टुकड़े, ठंढा गोश्त और उबले हूए आलू थे । पीने के लिए वोदका थी । उस रात की भावदशा का वर्णन मैं कैसे करूँ ? कवि तो हूं पर नवजात हूँ । मैं वोदका पीता जाता और मेरी आँखों से आँसू झरते जाते । उस रात मैंने कितनी वोदका पी और कितने आंसू - इसका हिसाब मेरे पास नहीं है । मैंने नजर चुरा कर आँख के कोने से एक बार नताशा की ओर देखा तो वह रेशमी रूमाल से अपने आँसू पोंछ रही थी और उसके पीछा खड़ा माइंडर उसकी इस हरकत पर नाक भौं सिकोड़ रहा था ।
अगले दिन हम दिल्ली लौट गए । नताशा हमारे संग न गई पर नताशा की याद हमारे संग संग गई । दर असल बात यह रही कि नताशाओं ने हमेशा मेरे दिल पर राज किया । हर नताशा को मैंने अपने दिल में बिठाया । एक कतार में करीने से । सबका मान किया, दुलार किया, चोन्हां किया ।
१८०
***
हम दिल्ली लौट आए । लौटते ही, हवाई अड्डे पर ही कल्चर शॉक सा लगा । कहाँ तो मॉस्को का शांत वातावरण और कहाँ तो दिल्ली की अफ़रातफ़री । कहां तो मास्को का बर्फीला शहर और कहां तो मुसी हूई गर्मी और पुराने पसीने की महक में भींगी दिल्ली । कोई इधर भागता, कोई उधर । कोई किसी से चिल्ला कर कुछ बोलता तो कोई किसी को गालियाँ निकालता । चारों तरफ भागाभागी । हर तरफ फैले फूहड़ लोगों का समुद्र । कहीं कोई अनुशासन नहीं, कोई सलीक़ा नहीं । ऊपर से धूल और गर्मी । आपने यदि भीष्म साहनी की कहानी - ओ हरामजादे - पढ़ी हो तो वैसा ही साहनी की कहानी के जलंधर शहर जैसा माहौल । वैसे यह गर्मियों का मौसम तो न था, लोग इसे सर्दियों का मौसम बता रहे थे, गरम स्वेटर पहने लड़के कूद रहे थे, स्त्रियाँ शॉल सिर पर पल्लू की तरह लपेटे हूए थीं जैसे कि साइबेरिया की ठंढ से उनका सामना हो । कइयों ने तो पूरी बाँह के स्वेटर के ऊपर थ्री पीस सूट और बंदरटोप पहने हुए थे । सच कहता हूं, मेरा जी गिनगिना गया ।
पर कुछ भी कहो, एक बात अच्छी थी । हमें बहूत तेज भूख लगी थी । हफ्ते भर से हम पावरोटी और वोदका पर थे । हवाई अड्डे पर ही चाय समोसे की दुकान दिखी और हम हह्आए हूए उस पर टूट पड़े । गरम गरम ताजा ख़स्ता सिंघाड़े, पुदीने की चटनी और खौलती हूई मसाले वाली चाय । अहा, हमारी आत्मा तृप्त हो गई । भले ही मॉस्को हमारा समाजवादी स्वर्ग हो, हमारे सपनों का संसार हो पर चाय समोसे का तो इंतज़ाम वहाँ न था, इसी बुर्जुवा दिल्ली में ही यह विलासिता उपलब्ध थी ।
प्रतिनिधिमंडल के सदस्य अपने अपने गंतव्य स्थानों की ओर चले और फिर मिलेंगे कभी के अंदाज में उन्होंने एक दूसरे को भावभीनी विदाई दी । मुझे और मेघनाद सर को तो जनेवि जाना था - हम साथ

साथ टैक्सी में चले । दोपहर का समय था । बाहर दिल्ली की हवा में गोबर और डीज़ल की अधजली गैस के धुएँ की महक थी, ट्रैफिक का शोर था, धूल और पसीने की पतली सी परत हमारे शरीर पर धीरे धीरे चढ़ रही थी वैसे ही जैसे आप किसी दीवार को आहिस्ता आहिस्ता पेंट कर रहे हों ।
जनेवि में पहले मेघनाद सर अपने छात्रावास के सामने उतरे, फिर टैक्सी ने मुझे अपने छात्रावास तक पहुँचाया ।
कमरे में घुसते ही मैंने सूटकेस और झोले इधर उधर फेंके, कपड़े उतारे, तौलिया और लाइफब्वाय साबुन लिया और गुसलखाने की तरफ भागा । हफ्ते भर से मैं कायदे से नहा न सका था । मुझे नहाने की तलब बहुत जोर से लगी थी ।
१८१
***
मैं दिल्ली तो आ गया पर मॉस्को की याद न गई । आप खुद ही सोचिए- कैसे जाती ? मुझे बार बार लगता कि हम यह क्या कर रहे हैं, सोवियत संघ जैसा आदर्श समाजवादी समाज हम कब बनाएँगे ? सामाजिक चिंता तो थी ही, व्यक्तिगत तौर पर भी विविध भारती पर बजे किसी भूले बिसरे गीत की तरह नताशा की याद दिल में हूक की तरह उठती थी । मैं परेशान हो उठता था । पर मैं सदा यथार्थवादी रहा । भोगे हुए यथार्थ को मैंने सदा अपने जीवन का guiding principle बनाया । मैंने दिल को समझाया : देखो भइया, नताशा तो अब गयी, नताशा स्वप्न थी, एक खूबसूरत स्वप्न, रक्तिमा ही यथार्थ है ।
छात्रसंघ भवन में मेरा और कॉमरेड मेघनाद का भव्य स्वागत हुआ । हमने सोवियत संघ के अपने अनुभवों को विस्तार से बताया और सोवियत संघ के आदर्श समाज की राहों पर चलने को साथियों को प्रेरित किया । साथियों ने तालियाँ बजा बजा कर हमारी बातों का समर्थन किया ।
रक्तरंजित सर ने मुझे भोजन पर आमंत्रित किया । सारा परिवार था, मैं था । मैं भावुक हो कर सोवियत संघ के अपने अनुभवों का वर्णन करता रहा । रक्तरंजित सर मेरी भावुकता से बहुत प्रभावित थे । पर मुझे लगा कि जैसे रक्तिमा के चेहरे पर वह पुरानी चमक न थी जो मुझे देखते ही दिखती थी, एक हल्का सा अनमनेपन का भाव था । पर मुझे यह भी लगा कि हो सकता है यह सिर्फ मेरा वहम हो, या फिर रक्तिमा की तबीयत ठीक न रही हो । आदमी को बहुत शंकालु नहीं होना चाहिए ।
पर तभी घटनाचक्र ने ऐसा मोड़ लिया कि मेरे जीवन की दिशा फिर बदली ।
१८२
***
आपका पता नहीं पर मेरा जीवन सदा झंझावाती रहा, एक राह पर न चला, कायदे से न रहा । कभी इधर से तेज हवा का झोंका आता और मैं चक्कर खा कर गिरता और अभी उठ भी न पाता कि तभी दूसरी तरफ से कोई चक्रवात अचानक आता, पकड़ कर मुझे हवा में उछाल देता । यह भी चक्रवात ही था । बड़ा चक्रवात । और इस कथा का शीर्षक - नौकरी - ऐसे ही तो नहीं न पड़ा भइया ? १८१ खंडों में कहीं

मेरी नौकरी की बात उठी थी क्या ? क्रांतिकारी जज्बे से सराबोर नौजवान और नौकरी ? क्या मजाक है ! पर यही वह चक्रवात है जिसके कारण कथा का शीर्षक "नौकरी" रखना पड़ा ।

१८३

***

तीन महीने में जनेवि छात्रसंघ के चुनाव होनेवाले थे । एक उदीयमान छात्र नेता की मेरी हैसियत बनती चली गई थी और स्टूडेंट्स फेडरेशन में बहुत सारे प्रभावी लोग छात्रसंघ के अध्यक्ष पद के लिए मुझे प्रत्याशी बनाने की बात कर रहे थे । पार्टी में वरिष्ठ लोगों में भी मेरे नाम को लेकर सहमति बन रही थी । रक्तरंजित सर ने खुल कर कुछ कहा तो नहीं था पर मेरा अनुमान है कि उनका मूक समर्थन मुझे प्राप्त था । रक्तिमा ने इस बारे में बहुत उत्साह न दिखाया था जिसके कारण मैं थोड़ा चकित था ।

मुझे लग रहा था कि जनवादी आंदोलन में धीरे धीरे मेरी स्थिति सुदृढ़ होती जा रही थी । यह मेरे लिए भी और प्रगतिशील क्रांतिकारी विचारधारा के लिए भी अच्छी बात मालूम होती थी । मेरे इर्द गिर्द मित्रों का जमावड़ा इकट्ठा हो रहा था और मेरा रुतबा बढ़ता चला जा रहा था । एक मलयाली युवा लड़की ने तो यहाँ तक कहा कि वह दिन भी आ सकता है जब इस देश की बागडोर मेरे हाथों में हो । मेरे सिर का आसमान में उड़ना अस्वाभाविक तो न था । मैं भविष्य की कल्पनाएँ बुनता और मेरा दिल उछल कर मुँह में आ जाता । इस चक्कर में मेरी पढ़ाई लिखाई का कुछ नुक़सान हुआ पर मुझे उसकी चिन्ता न थी । जब इतना महान लक्ष्य आपके सामने हो तो छोटी मोटी बातों की चिन्ता करना मूर्खता है । मुझे जगह जगह से आमंत्रण आते । कहीं चे ग्वेवारा का जन्मदिन समारोह, तो कहीं बोल्शेविक क्रांति की जयंती, कहीं फ़िलिस्तीनी जनता के संघर्ष पर गोष्ठी, तो कहीं जनवादी कविता पाठ । मैं बहुत व्यस्त रहने लगा था, मेरे पास फालतू लोगों और बातों के लिए समय न था । रक्तरंजित सर के यहाँ आना जाना कम हो गया था ।

तभी वह घटना हुई ।

१८४

***

वह अभी अभी आया था । लॉस एंजिल्स में छुट्टियाँ बिता कर । उसके पिता विश्व स्वास्थ्य संगठन में वरिष्ठ पद पर थे । उनकी नियुक्ति कभी लागोस में होती तो कभी जेनेवा में, कभी ढाका में तो कभी पैरिस में । उसकी शिक्षा अधिकांशत: बोर्डिंग स्कूलों में हुई । उसकी छुट्टियाँ अपने दोस्तों के साथ कभी केन्या के किसी सफ़ारी पार्क में गुज़रतीं तो कभी पेरिस के कहवाघरों में । अंग्रेज़ी की तो कोई बात ही नहीं उसे स्पैनिश और फ़्रांसीसी भाषा में भी महारत हासिल थी । ज़्याँ पॉल सार्त्र उसके सबसे प्रिय लेखक रहे । अस्तित्ववाद के बारे में जब वह बोलता तो लोग उसका मुँह ताकते । उसने कुछ दिन ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में भी बिताए पर वहाँ उसका दिल न लगा ।

हुआ यह था कि पूँजीवादी जीवन से उसे विरक्ति हो गई थी । बंगाल में जब वह नक्सलवादी आंदोलन नज़दीक से देखने गया था तभी से उसके अंदर मार्क्सवाद के बीज का प्रस्फुटन हुआ था । उसने तय

किया था कि वह मार्क्सवाद के मक्का जनेवि में समाजशास्त्र का ज्ञान अर्जित करेगा । उसकी इच्छा थी कि वह भारतीय समाज की जटिलताओं की छानबीन करे, उसकी मूल धाराओं को समझे, झाड़ झंखाड़ साफ करने में लगे, प्रगतिशील चेतना के स्फुरण और सशक्तीकरण के काम में लगे । इसके लिए उसे जनेवि से बेहतर कोई जगह न लगी । उसके जनेवि में प्रवेश करते ही वह चर्चा का विषय बना ।
उसका सुदर्शन मोहक व्यक्तित्व, ६ फुट की लम्बाई, दुबली पतली पर सुगठित देहयष्टि, ग़ौर वर्ण, तीखे पर मनभावन नाकनक्श, उसकी बोलती हुई बड़ी बड़ी आँखें, कंधों तक झूलते लहराते उसके लम्बे काले बाल, एक अलमस्त लापरवाही, एक बोहेमियन सी उसकी उपस्थिति । अक्सर वह नीली फेडेड जीन्स पर ढीली क्रीम रंग की कमीज पहनता, उसके पाँवों में कोल्हापुरी चप्पल होता और कंधे से खादी का ख़ूबसूरत एथ्निक झोला झूलता । अंग्रेज़ी में जब वह ज़्याँ पाल सार्त्र या काफ़्का को उद्धृत करता, लोग आँखें फाड़ कर उसे देखते । कभी कभी वह हिन्दी में मुक्तिबोध और धूमिल को उद्धृत कर देता । अब आप यह समझ लीजिए कि विश्वविद्यालय में तो एक छोटा मोटा तूफान सा ही आ गया । तरह तरह के परिधानों से सजी ख़ूबसूरत और गैर ख़ूबसूरत लड़कियाँ उसके आगे पीछे मुग्ध हुई सी, लहराती हुई सी घूमतीं, कभी किसी सुहावने मौसम में किसी कैंटीन में उसके संग बीटल्स के गीत गातीं, वोदका पीतीं, हवाना सिगार के कश लेतीं ।
१८५
***
बह्त विस्तार से आपको क्या बताऊँ, अब आप समझ लीजिए, वह क्या आया, मेरी तेज रफ्तार से प्रगति की ओर बढ़ती जिंदगी में खड़मंडल आया । चीज़ें जो क़रीने से आलमारियों में सज रही थीं, खड़बडा़ कर जमीन पर गिरती ह्ई सी मालूम ह्ईं । मुझे साफ साफ लगा कि प्रगतिशीलता के बाजार में मेरा मोल धड़ाम से गिरा था । इसमें कोई शक नहीं कि लोग कार्यकर्ता के तौर पर मेरी इज्जत करते थे, पर मेरे नेतृत्व की चमक उनकी नज़रों में फीकी पड़ गई थी । परिणाम यह ह्आ कि मेरा हीनताबोध जो कुछ दिनों से दबा हुआ था, पुरानी बाई का दर्द पुरवाई हवा जब चलती है तो उखड़ आता है, वैसे उभर आया ।
मैंने यह भी नोटिस किया कि रक्तरंजित सर पहले की तरह मुझ पर ध्यान नहीं दे रहे थे । क्या तो वह समय था जब कोई दिन न गुज़रे जब मेरा चाय पानी सर के यहाँ न हो और अब हफ्ते गुज़र जाते और कोई सुनगुन न मिलती । यही नहीं मेरे छात्रावास के साथी भी कभी रास्ते में दिखते तो मुझे अजीब नज़रों से देखते । मैं अब प्रगतिशील समाज की आँखों का तारा न रहा । मुझे अब कोई कालजयी कवि न कहता, गोष्ठियों में मेरे बुलावे कम हो गए ।
इसका काफी असर मेरे पहनावे और मेरी शक्ल सूरत पर पड़ा । मेरे कपड़े अब पहले की तरह चमकदार न थे, वे मटमैले ह्ए, उनमें धूल पसीने की गंध आने लगी, पॉलिश से चमकते जूतों की जगह टूटे हवाई चप्पलों ने ली । मेरा क्लीन शेवेन चेहरा अब गुज़रे जमाने की चीज हुआ । अब वहाँ नुकीली झाड़ियाँ उग आईं ।

छात्रसंघ के अध्यक्ष का टिकट अभी पूरी तरह कटा तो नहीं था, पर कटी पतंग की तरह हवा में झूल जरूर रहा था । अब यह कटी पतंग फिर ऊँचे आसमानों से बातें कर सकेगी - मैं यह भरोसा पाले हुए था, अब भी, पर यह भरोसा अब एक सपने की तरह था, सपने की हक़ीक़त का आभास मुझे था । मानता हूँ मैं लल्लू सदा रहा पर इतना बड़ा लल्लू भी न रहा ।
मैं अभी इस बवंडर में डोल ही रहा था कि एकदिन वह बम फूटा । आप सोचते होंगे कि मैं छात्रसंघ के चुनाव की बात कर रहा हूं । नहीं, चुनाव तो आते जाते रहते हैं, चुनावों का क्या !
१८६

***

लब्बोलुबाब यह कि उस वर्ष जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ के अध्यक्ष पद के प्रत्याशी से मेरा नाम कट गया । पर प्रगतिशील जनवादी राजनीतिक मूल्यों के प्रति मेरी प्रतिबद्धता के मद्देनजर संगठन ने मुझसे अपने छात्रावास के संयुक्त सचिव का चुनाव लड़ने की सलाह दी । कई वरिष्ठ साथियों ने कहा कि इस चुनाव में मेरी भागीदारी मुझे जमीन से जोड़ेगी और संभव है अगले साल के चुनावों में मुझे अगले पायदान पर चढ़ाया जाय । क्रांतिकारी राजनीति में हर लड़ाई, हर पद का महत्व है, कोई पद छोटा नहीं, कोई पद बड़ा नहीं । समतामूलक समाज में सब बराबर हैं ।
फिर एक दिन अचानक सुबह सुबह रक्तरंजित सर के यहाँ से शाम की चाय का बुलावा आया । मैं हतोत्साहित सा था, मेरा दिल बुझा हूआ सा था, पर इस बुलावे ने मुझ पर वही असर किया जो पैरॉसिटॉमॉल हरारत में करता है और जो डॉनल्ड ट्रम्प के मुताबिक़ हाइड्रॉक्सी कोविड में करता था । मेरी खोई ऊर्जा का कुछ अंश लौट आया । कई दिनों से मैं नहाया न था । उस दिन मैं लाइफब्वाय साबुन से रगड़ रगड़ कर नहाया, कपड़े रिन साबुन से धोए, सुखाए और धोबी से इस्त्री करवाए, जूतों को चेरी ब्लॉसम का पॉलिश लगा कर चमकाया और कपड़ों पर थोड़ी सी इत्र, जो मुझे नताशा ने भेंट में दिया था, छिड़क कर ठीक साढ़े चार बजे जूते चटकाता रक्तरंजित सर के आवास पहुँचा ।
१८७

***

मैं जब वहाँ पहूँचा तो वे बाहर लॉन में बैठे थे । दिल्ली की चढ़ती सर्दियों की डूबती शामों की पीली और कमजोर धूप । थमी हूई हवा में ठंढ की उठान शुरु थी । हम उठ कर अंदर ड्रॉइंग रूम में बैठे । रक्तरंजित सर की बहन अंदर चली गईं शायद चाय पानी की व्यवस्था करने । रक्तिमा भी थोड़ी देर बाद उठ कर अंदर चली गई । थोड़ी देर हम चुप बैठे रहे, फिर मैडम ने रूस की मेरी यात्रा के बाबत पूछा, फिर हम दिल्ली की सर्दियों और मॉस्को के मौसम की बातें करते रहे । रक्तरंजित सर उस दिन बहूत बोल नहीं रहे थे, खिड़की के बाहर उनकी नजर टिकी थी । थोड़ी देर में चाय और मठरी आ गई और हम उसमें मशगूल हूए । फिर मुझे लगा कि मैडम का स्वर पहले से थोड़ा गंभीर हूआ । उन्होंने एक तिरछी नजर अपने पति पर डाली, मुड़ कर पिछले दरवाजे का मुआयना किया और फिर बोलीं :

देखो बेटा, यह तो तुम्हारा घर है, तुम यहाँ आते ही रहते हो । और तुम्हें तो मालूम है कि हम सबलोग, विशेष कर सर, तुम्हें कितना मानते हैं । ये तो जहां भी जाते हैं, तुम्हारी तारीफ करते रहते हैं । कई बार तो बड़ा embarrassing हो जाता है, मुझे इन्हें धीरे से टोकना पड़ता है ।

१८८

***

मैडम एक मिनट के लिए रुकीं, कुछ सोचने लगीं, फिर चाय की एक चुस्की ली, सर की ओर देखा और मुझसे बोलीं :

देखो बेटा, तुम मध्यम वर्ग के युवक हो, तुम्हारे माता पिता वृद्ध हो रहे हैं । उनके प्रति भी तुम्हारा कर्तव्य है । उन्हें तुम्हारी जरूरत है । तुम उनकी बुढ़ापे की लाठी बनो, बन कर दिखाओ । अभी नेतागीरी में फँसने से संकट का सामना करना पड़ सकता है । हम तुम्हारे उत्साह, प्रगतिशील राजनीति के प्रति तुम्हारी सच्ची लगन की क़द्र करते हैं पर हमें लगता है कि यह समय तुम्हारे लिए परिवार को देखने का है वरना पारिवारिक संकट खड़ा हो सकता है । बाद में जब सही समय आए तो फिर कूद लेना । अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है !

बेटा, हमलोग खुद ही बहुत सिद्धांतवादी हैं, और रक्तिमा को तुम जानते ही हो, कितनी प्रतिबद्ध है । पर प्रैक्टिकल होना, मैच्योर होना भी तो कोई चीज है, बेटा । सिद्धांत से घर का राशन तो नहीं आएगा न । हमारी बात को गलत मत समझना बेटा । धैर्य और ध्यान से सोचना, सारे पहलुओं पर विचार करना । हमलोग तुम्हें बहुत चाहते हैं, इसलिए झिझकते हुए भी ऐसी बातें कर रहे हैं ।

मैं तो कहूँ तुम जल्दी से पढ़ाई ख़त्म कर नौकरी पकड़ लो, माँ बाप के बुढ़ापे की लाठी बनो । राजनीति बाद में कर लेना ।

हाँ, एक बात और बेटा । रक्तिमा यहाँ नहीं बैठी है, लाज के मारे उठ कर चली गई है ।

वे फिर से चाय सुड़कने लगीं ।

१८९

***

रुधिरवर्णा मैडम बोलती गईं :

तुम्हें जान कर खुशी होगी कि रक्तिमा अगले महीने हावर्ड जा रही है, gender studies पर शोध करने के लिए । हमलोग तो उसके जाने की बात सोच सोच कर उदास होते जा रहे हैं । बेचारी रक्तिमा भी हमें छोड़ कर जाना नहीं चाहती पर शोध करना है तो जाना ही पड़ेगा । संतोष थोड़ा सा यह है कि भाई भी उधर है, मिलता जुलता रहेगा, मन लगा रहेगा ।

और बेटा, एक बात और, रक्तिमा की सगाई पक्की हो गई है । इसीलिए तो वह लजा कर यहाँ से उठ कर चली गई । इतनी पढ़ी लिखी होने के बावजूद रक्तिमा शर्मीली बहुत है । हम चाहते हैं कि जाने के पहले सगाई हो जाय, विवाह बाद में होता रहेगा । तुम क्या सोचते हो ? रक्तिमा का बड़ा मन है कि तुम उसकी सगाई में आओ । आओगे न ? अशोका में बुकिंग कर दी है । अशोका रैडिसन से बेहतर है ।

देखो, तुम्हें तो पता है कि रक्षाबंधन का त्योहार पीछे छूट गया है और हमें वैसे भी ऐसे बुर्जुवा त्योहारों में विश्वास नहीं, पर रक्तिमा की इच्छा है कि वह तुम्हारी बाईं कलाई में राखी बांधने के बाद ही हावर्ड जाए । ऐसा हो तो कितना सुंदर होगा । बल्कि तुम चाहो तो सगाई वाले दिन, उसी स्थान पर यह कार्यक्रम पहले कर लें । देखो बेटा, सोचना, रक्तिमा का दिल न तोड़ना । रक्तिमा का भाव भले ही परिवर्तित हो पर उसका नेह कम न होगा । और तुम्हें तो पता ही है, संसार में नेह से बड़ी कोई चीज नहीं ।

१९०

***

मित्रों और पाठकों, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप चतुर सुजान हैं । आपको यह तो नहीं बताना पड़ेगा न कि रक्तिमा की सगाई किससे होने वाली थी ?

और मैं ? मेरा क्या ? मैंने हलक गीला किया, माथे का पसीना पोंछा, काँपते क़दमों से वापस छात्रावास पहुँचा । अगले कुछ दिन मैं तलत महमूद और मुकेश के गीतों में डूब गया । जब देखो तब - सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या हुआ - मेरे कानों में बजता रहता । कभी वह बंद होता तो - ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है - बजने लगता । मेरे चेहरे पर हवाइयां उड़ने लग गई थीं, मेरी आँखों में ढेर सारा कीचड़ जमा हो गया था, मेरी कमीज की कॉलर मैल से चिकट्टी हो गई थी, मैं इधर उधर टूटी हवाई चप्पल चटकाता बदहवास सड़क पर डोलने लग गया था ।

किसी काम में मेरा दिल लगे - यह कैसे हो सकता था ? क्लास में मेरी उपस्थिति कम होती चली गई, मैं फेल होने के कगार पर आ गया । मेरी देह से धूल और पसीने की बदबू का भभका निकलता तो सामने से गुज़रने वाला शख्स मुझसे दूर छिटक जाता । छात्रावास में मेरे एक दो शुभचिंतकों ने मुझे नहाने की सलाह दी । हालत यह थी कि मुझे लगा कि कुछ दिन और मेरा यही हाल रहा तो मेरे चेहरे पर मक्खियाँ भिनभिनाएँगीं । खाने पीते की बात ही छोड़िए, मेरी भूख ही मर गई थी । कभी कभार कैंटीन में पाव रोटी खा लेता । मैं तो पहले से ही सींकिया पहलवान था, अब सूखकर काँटा हुआ । मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया । मैं दिन में सोता, रातों को जागता ।

१९१

***

इस घटनाक्रम का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा - यह मैं आपको बताना चाहते हुए भी बता नहीं पा रहा हूँ । अब आप थोड़े में यह समझ लीजिए कि मेरी दुनिया उलट पुलट हो गई । मैं बदहवास इधर उधर घूमता, एकाध बार आत्महत्या तक के खयाल आ गए थे, पर हिम्मत नहीं पड़ी । समाजवाद के प्रति मोह अब भी था, पर वह पहले प्यार की तीव्रता, वह कुंवारापन, वह टीस बुझ बुझ सी गई थी । दिल सूख चला था । एम ए की परीक्षा नज़दीक आ रही थी पर मुझसे पढ़ा ही नहीं जा रहा था, मैं किताब खोलता तो था पर खोलते ही आँखों के सामने अंधेरा छा जाता था ।

छात्रसंघ के चुनाव पास थे, कई कॉमरेडों ने मुझसे प्रचार में भाग लेने के लिए कहा पर मैं किसका प्रचार किस मन से करता ? चुनाव हुआ, वही शख्स जिसे स्टूडेंट्स फेडरेशन ने खड़ा किया था और जिसकी सगाई अशोका होटल में हुई थी जहां मैंने राखी बंधवाई थी, भारी मतों से जीता ।
मैं कमरा बंद कर फूट फूट कर रोया, तब जाकर मेरी जान में जान आई, आँखों पर छाया धुआँ थोड़ा सा छँटा । किसी ने व्यायाम की सलाह दी, मैं दौड़ने लगा । इससे मुझे बहुत लाभ हुआ । मैं अब ठीक से सोता, मैं नहाने भी लगा और अजूबा यह कि खींच खांच कर मैं दूसरी श्रेणी में एम ए में पास भी हो गया । पर इस दौरान मेरी कालजयी कविता, क्रांतिकारिता और बुद्धिजीविता को पलीता लग चुका था, मेरे कुंवारेपन ने मरने की राह पकड़ ली थी, अब मैं मैच्योर होने लग गया था । मुझे सचमुच मेरे कस्बे, मेरे माता पिता की याद आने लगी थी । तभी एकदिन पिताजी का वह पत्र आया जिसमें उन्होंने अपनी आर्थिक बदहाली, मां की गिरती तबीयत और मेरे जनेवि में ऊंचा बुद्धिजीवी होने की गांव जवार में फैली अफवाहों के कारण मधुमक्खी के छत्ते की तरह छोपते तिलकहरुओं और उनके चकाचौंध करने वाले दहेज के ऑफरों के बारे में लिखा था और और इस बारे में मेरी राय पूछी थी । यह बात ही एक अजूबा थी कि क्रांतिकारी स्वभाव के मेरे पिता जिन्होंने ताउम्र सब पर हुक्म चलाया, मुझे सदा नाकारा और लल्लू समझा, मेरी राय पूछ रहे थे ! तभी मेरे विश्वास की नींव पड़ी कि दुनिया में अजूबे कभी कम न होंगे ।
उन्हीं दिनों वह अजीब सी बात हुई और हवा ने विचित्र रास्ता पकड़ा ।
१९२
***
कहावत है कि समय से अधिक कारगर कोई मरहम नहीं, समय हर घाव को भर देता है । यह कहावत पूरी तरह गलत हो, ऐसा मानना उचित न होगा । अब मेरी बात ही ले लीजिए, इसमें कोई शक नहीं कि जब पुरवाई बयार चलती, हावर्ड का ज़िक्र आता, पुरानी टीस उभर आती, पर समय के बीतने के साथ टीस की फ्रिक्वेंसी और intensity में कमी होती गई । कभी तो हफ्ते बीत जाते और टीस न उठती । इससे बढ़कर इस कहावत के सच होने का प्रमाण कहाँ मिलेगा ?
पिताजी का एक और पत्र आया जिसमें मुख्यत: तिलकहरुओं की चर्चा थी । पिताजी सदा तिलक दहेज के विरुद्ध रहे, वे दहेज लेना पाप समझते रहे पर माँ के आगे उनकी चलती नहीं थी । माँ का मानना था कि बिना तिलक दहेज की शादी का अर्थ नीरस और उदास शादी । वे पिताजी को और उनकी बातों को मनहूस मानती थीं और ऐसी बातों में अपने मुज़फ़्फ़रपुर वाले छोटे भाई की राय लेती और मानती थीं । एक तिलकहरू एक लाख तिलक देने को तैयार था, उसकी लड़की भी देखने में बुरी नहीं थी, गोत्र भी ठीक था, कस्बे के डिग्री कॉलेज से बीए थी, थोड़ी सी साँवली जरूर थी । माँ ने मामा से इस बात को उठाया था । मामा ने अपनी बहन को झिड़क दिया था :
तोहार दिमाग सठिया गईल का हो दीदी ? एतना हहुआयल काहें बाड़ू ? एके आइएस बन जाए द । एकर रेट एक करोड़ तक जाई । बजार में अइसन लड़का कहाँ बान स ? चुपचाप बइठ, झुट्ठे आपन रेट मत गिराव ।

१९३

***

जैसी उस जमाने में तमाम कस्बाई मांओं की आदत रही, मेरी माँ भी कहती रही - विधि का विधान कोई नहीं जानता । माँ जब भी यह कहती, मैं मुँह बिचकाता, कहता कि ऐसी ही बुर्जुआ दक़ियानूसी भाग्यवादी बातों ने हमारा बेड़ा गर्क किया । पिताजी भी मार्क्सवादी टाइप थे, ऐसी बातों से बहुत चिढ़ते थे । पर अब माँ की बात पर विचार करता हूँ तो कन्फ्यूज हो जाता हूँ । अब आप देखिए न, उस दिन अचानक सड़क पर मँडराते हुए मुझे मेरा बचपन का यार संदीप गुप्ता क्यों दिखा ? इस बात में कोई तुक न थी ।

संदीप और मैं भभुआ सेंट टेरेसा हाई स्कूल में दो वर्ष संग पढ़े थे । उसके पिता जी कस्बे में स्टेट बैंक में क्लर्क के पद पर नियुक्त होकर आए थे । दो बरस उसके पिता वहाँ रहे, तबतक संदीप उस स्कूल में पढ़ा । फिर पिता का कहीं और तबादला हो गया और संदीप चला गया । तबसे संदीप से मेरा कोई संपर्क न था । मुझे कोई जानकारी न थी कि संदीप कहाँ था, ज़िन्दा था या नहीं और ज़िन्दा था तो क्या कर रहा था । संदीप मेरी तरह ही दब्बू स्वभाव का था । उस उम्र में नाक पर ऐनक चढ़ गई थी । ढीली ढाली बदरंग कमीज पर नीली टाई बाँधे और मैली खाकी हाफ पैंट पहने, सिर झुकाए संदीप कोने में बैठा रहता । और चूँकि संदीप की तरह ही मेरा स्वभाव भी चुप्पा और मनहूस था, हमलोगों की दोस्ती सी हो गई थी । बाकी लड़के हमारा मजाक उड़ाते और हम अपनी दोस्ती से एक दूसरे को ढाढ़स बँधाते । कभी चोरी छिपे हम सिनेमा हॉल में पिक्चर भी देखते । उन दिनों मनोज कुमार और जितेंद्र का जलवा था । हीरोइनों में उसे नंदा पसंद थी और मुझे वहीदा ।

संदीप दब्बू होने के साथ साथ पढ़ाकू भी था । मुझे लगता है उसका मजाक उड़ाए जाने का मुख्य कारण उसका पढ़ाकू होना रहा होगा ।

बहरहाल, फ़रवरी का महीना था । मेरा सिर बर्बादियों की धुंध से ऊपर उठ रहा था और मैं शाम को सड़क पर अकेला टहल रहा था कि वह शख्स सामने से आता हुआ दिखा । नज़दीक आया तो शक्ल जानी पहचानी सी लगी । दुबला पतला, लम्बा, सांवला - धूप और धूल में बुझा रंग, आँखों पर लटकता मोटे काले फ्रेम का चश्मा, ढीली ढाली पतलून, पाँवों में सैंडल । हम दोनों ने एक साथ एक दूसरे को पहचाना और "आ" कहते हुए गर्मजोशी से हाथ मिलाया । हम बगल के ढाबे में बैठ गए और चाय समोसे पर एक दूसरे की ज़िंदगियों का मुआयना करने लगे ।

संदीप के पिता का देहांत हो चुका था । मैंने इस बात के लिए अपनी सांत्वना प्रकट कर दी और उसके पिता की आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए उस ईश्वर से अपील भी कर दी जिसके अस्तित्व के बारे में मार्क्सवादी होने के कारण मुझे विश्वास न था । संदीप की माँ अब गया शहर में रहती थीं । संदीप के कोई भाई बहन न थे । संदीप ने पटना विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम ए कर लिया था और अब दिल्ली आ गया था - मुखर्जी नगर में आइएस परीक्षा की कोचिंग करने । मुखर्जी नगर में उसने एक कमरा किराए पर ले लिया था ।

१९४

***

यह सच है कि आइएएस बनने के इरादे से ही मैंने जनेवि में दाखिला लिया था । पर मार्क्सवादी साथियों की सोहबत ने मेरे जीवन की राह बदल दी थी । मैंने छात्र राजनीति में दमदार दखल दे दी थी और मैं गम्भीर बुद्धिजीवी और जनवादी कवि बनने के मार्ग पर चल पड़ा था । मेरा जज्बा आइएएस का न हो कर सर्वहारा क्रांति के कार्यकर्ता का हो गया था । पर होनी को कुछ और मंजूर था ।

अब जब मैं मुड़ मुड़ कर पीछे देखता हूँ तो लगता है मेरे जीवन में सबसे बड़ी कमजोरी अस्थिरता की रही । इसी कारण मैं अक्सर दूसरों के प्रभाव में बहुत जल्दी आ जाता था । इसके मूल में क्या था - इसके बारे में सिर्फ अनुमान लगा सकता हूँ पर अब लगता है हो न हो यह बात बचपन से मेरी आत्मा में गहरे धंसी कुंठा जनित हीनता की ग्रंथि के कारण हुई होगी ।

अब देखिए न मैं संदीप के कहने में आ गया । हद तो तब हुई जब मैंने उसके कहने में आकर न सिर्फ उसी कोचिंग स्कूल में दाख़िला ले लिया जिसमें संदीप पहले से था, बल्कि अपना छात्रावास छोड़ कर मैं उसके संग मुखर्जी नगर के उस गंदे से किराए वाले कमरे में रहने लग गया । पर इसमें हम दोनों का फ़ायदा था । साथ साथ पढ़ाई और किराए की बचत । हम सुबह उठ कर नीचे सड़क पर ढाबे में टोस्ट और चाय का नाश्ता करते और फिर कभी नहाए, कभी बिन नहाए हम कोचिंग इंस्टीट्यूट की तरफ निकल जाते ।

दिन भर मेहनत करते, बाहर से टिफ़िन आता, हम दोपहर में भात दाल चोखा खाते, शाम को बाहर टहलने निकल जाते । रात को सोने के पहले फिर थोड़ी पढ़ाई करते । हम मेहनत करने के आदी होते जा रहे थे ।

मैंने आइएएस के लिए हिन्दी साहित्य और gender studies के विषय चुने थे और संदीप ने अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र । इसमें हम दोनों का आपसी लाभ था । हिन्दी साहित्य के मेरे ज्ञान से संदीप को समाजशास्त्र की समझ में सहायता मिलती और संदीप की अर्थशास्त्र की समझ से gender studies के आर्थिक पहलुओं के नए नए आयाम मेरी समझ में अनायास जुड़ते चले जाते ।

मित्रों, मेरी बातों से आप यह अर्थ न निकालिएगा कि मैं भावशून्य कैरियरिस्ट में तब्दील हो गया था । नहीं मित्रों, ऐसी बात बिल्कुल नहीं थी । मुझे अच्छी तरह पता था कि मेरे पाँव सहसा समाजवाद का रास्ता छोड़कर बुर्जुवावाद की तरफ मुड़े थे और मुझे इस बात की ग्लानि भी वक्त बेवक्त महसूस होती रहती थी । मेरी आत्मा में समाजवाद के आदर्श और बुर्जुवावाद के यथार्थ में अक्सर कशमकश चलती, मेरा हृदय हृदय न था, दो परस्पर विरोधी विचारों का युद्धस्थल था । पर मैं निरुपाय, असहाय था मित्रों, मेरी नैया जीवन के महासागर में इधर उधर डोलती थी ।

यहाँ यह भी बताता चलूँ कि मैं रक्तिमा और नताशा को भूला न था । वे मेरे उजले दिनों में बाग में खिली कलियाँ थीं, जिन्होंने मेरे मरुस्थल जैसे जीवन में आर्द्रता, रस, रंग, राग, रास भरा था । मैं स्नान करता हुआ कभी नताशा तो कभी रक्तिमा की स्मृति में “भूल सकता है भला कौन” गीत गाता और

रुआँसा हो जाता । वे स्मृतियाँ मेरे जीवन की पवित्र थाती थीं, मित्रों । और आपको तो पता ही है, स्मृति ही जीवन है, स्मृति न हो तो हम मृत हैं । रक्तिमा और नताशा मेरे जीवन की उदास और मनहूस इमारत की ईंटें थीं, बालू और सीमेंट थीं । उन्हें मैं भूलता तो कैसे भूलता ?
भभुआ से समाचार आया कि मामा के कहने पर मेरी माँ ने तिलकहरुओं को आने से यह कह कर मना कर दिया था कि लड़का आइएएस की तैयारी में लगा है, उसे डिस्टर्ब करना उचित नहीं है । गाँव जवार में धूम मच गई थी कि बड़ा बाबू का वही लड़का जिसकी नाक से सदा नेटा बहता था और जिसकी टाँगें बरसाती घावों से भरी रहती थीं अब किसी भी समय आइएएस बन सकता है ।
उसी कोचिंग में जहां संदीप और मैं पढ़ने जाते थे, मेरे जीवन में एक नया तूफान आया । वह मलयाली था ।

१९५

***

मित्रों, जो आया उसे मलयाली तूफान कहना एक तरह का फूहड़पन है । हुआ यह कि मेरे अंदर सॉफिस्टिकेशन की कमी सदा रही, समय के साथ और बुद्धिजीवियों के संसर्ग के साथ मेरा शऊर बेहतर हुआ पर उतना नहीं जितना हो तो आदमी आत्मविश्वास के साथ ऊँचे समाज में फ़िट हो जाय । मैं चाहे जितनी भी कोशिश करूँ, मेरा फूहड़पन वक्त बेवक्त पीछे से झाँक कर अपनी शक्ल दिखा देता है और मेरी भद्द मच जाती है । वैसे यह भी पक्का नहीं है कि भद्द मचती है या नहीं पर भद्द मचने का मेरा अनुमान है और यह अनुमान मुझे लज्जित करने के लिए पर्याप्त से कम नहीं है ।
अब यही उदाहरण ले लीजिए, एक मलयाली ठीकठाक सी दिखती युवती को तूफान बुलाना क्या किसी कायदे के आदमी का चिन्ह है ? कुछ हद तक तो यह बात भी रही कि भाषा पर मेरा कायदे का अधिकार कभी रहा नहीं । कभी सोच समझ कर औरों को प्रभावित करने के लिए बहुत तैयारी से अंग्रेज़ी में कोई वाक्य बनाता पर ऐन वक्त पर मुंह से कुछ का कुछ निकल जाता । हालाँकि किसी ने कभी इस बात के लिए मुझे टोका तो न था पर मुझे ऐसा लगता था कि लोग मुझे अजीब नज़रों से देखते थे - ख़ासकर अपरिचित लोग ।
हुआ यह कि उस दिन सुबह ब्रेक के समय मैं और संदीप कैंटीन में बैठे थे, चाय के संग वड़ा खाने की प्रतीक्षा में । हल्की सी गर्मी थी, ऊपर सीलिंग फ़ैन गड़गड़ करता हुआ डोल रहा था कि तभी अचानक बिला वजह मेरी नजर कैंटीन के दूसरे कोने पर पड़ी जहां वह बैठी थी और मेरा दिल फिर से एक बार धक से हुआ था । अब आपको यह तो बताना नहीं पड़ेगा न भइया कि दिल पर किसी का जोर नहीं, महात्मा गांधी और गुरुदेव रवीन्द्र तक का नहीं । तो बस समझ लीजिए वही हुआ ।
संदीप की नजर सामने से आती चाय पर थी और मेरी छुपी हुई नजर कैंटीन के कोने पर थी । वह अकेली बैठी थी । सामने चाय या कॉफी का एक प्याला था, हाथ में कोई पत्रिका सी थी जिससे वह कुछ या तो पढ़ रही थी या पढ़ने का प्रयास कर रही थी । गुलाबी रंग का ढीला ढाला सलवार कुर्ता और सफेद चुन्नी ओढ़े हुए वह हल्की सी इंटेलेक्चुअल सी लगी थी । उसके लम्बे काले बाल एक चोटी में पीठ पर झूलते

थे । उसके बालों में सफेद रंग के पुष्पगुच्छ गुँथे थे । चेहरा साँवला और थोड़ा लम्बा था जैसे आपने देखा होगा घोड़ों का होता है । उस जमाने में मेकअप का चलन न था । आँखों पर मोटा काले फ्रेम का चश्मा था । माथे पर नन्हीं सी दक्षिण भारतीय लाल बिंदी, दुबला पतला कोमल सा औसत क़द का शरीर । पैरों में कोल्हापुरी चप्पल और बगल में खादी ग्रामोद्योग वाला झोला ।
वह बहुत सुंदर थी - ऐसी बात न थी । पर उसकी उपस्थिति में, उसके चेहरे मोहरे, हावभाव में, उसकी आंखों में, उसके सारे होने में एक विचित्र आकर्षण था जिसे सुंदर आदि रूढ़ और बोरिंग शब्दों से पकड़ा नहीं जा सकता । मैंने कई बार धीरे से कनखी से उसकी तरफ नजर डाली थी और तभी अचानक उसने उसी समय मुझ पर दृष्टिपात किया था ।
१९६
***
फिर जो हुआ, उसका बयान करूँ तो कैसे करूँ ? क़लम चलती नहीं है, मस्तिष्क विद्रोह करता हुआ मालूम होता है । फिर भी प्रयास करके देखता हूँ । आपलोग सहृदय हैं, संवेदनशील हैं, धैर्यवान हैं, यह कहने की जरूरत नहीं कि आप मेरी बात का मजाक नहीं उड़ाएँगे, सहानुभूति से मेरी बात पढ़ेंगे, मेरी दशा को समझेंगे या समझेंगी ।
साँवली सलोनी वह वल्लरी मेनन थी । एर्नाकुलम में जन्मी पली वह नवयुवती मेरी तरह आइएएस की परीक्षा की तैयारी कर रही थी, मुखर्जी नगर का बहुत नाम सुन कर यहाँ दिल्ली खिंची चली आई थी । उसके कई विषय थे जिनमें से मेरी तरह ही जेंडर स्टडीज भी एक विषय था । मुझे लगता है उन दिनों आधुनिकता की बयार बह चली थी और पितृसत्ता की चूलों का हिलना शुरु हुआ था । बॉबी फ़िल्म का नशा हर युवा युवती के दिलो दिमाग पर छाया था । हाय, वे ऋषि और डिम्पल के मासूम चेहरे, उनका मासूम प्यार और उनके अनछुए प्यार को झुलसाती ज़ालिम ज़माने की नज़र । हर तरफ़ डिम्पल के पोस्टर लगे थे । नौजवान बॉबी के गीत गाते और नशे में डूबते जाते । इसलिए जेंडर स्टडीज का इतना लोकप्रिय होना किसी अचरज का सबब न था ।
वल्लरी के पिता मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की एर्नाकुलम शाखा के सचिव थे । पर उन्हें शायद इल्म न था कि उनकी इकलौती दुलारी कन्या दूर दिल्ली में आकर मार्क्सवाद के रास्ते से भटक रही थी, उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे । वह मार्क्सवादी और संघी विचारधाराओं के बीच में झूल रही थी । एर्नाकुलम का बचपन का मार्क्सवादी संस्कार दिल्ली में युवा संघी मित्र की नई सोहबत में डगमगा रहा था । दिल्ली में उसकी एक स्थानीय लड़की से मित्रता हुई थी जिसके परिवार वाले संघी थे । वल्लरी का उसके यहाँ आना जाना शुरु हुआ और मार्क्सवाद की ठोस दीवार में दरक पड़ी । वह कभी कभार मंदिर वग़ैरह चली जाती । वह भरत नाट्यम सीखने लग गई थी । एकाध बार अपनी मित्र से बातचीत करते हुए उसने स्टालिन और लेनिन के बारे में ऐसी टिप्पणियाँ भी की थीं जो सच्चे मार्क्सवादी को शोभा नहीं देतीं ।

आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उठा होगा कि यह उलटी बयार कैसे बही । मेरे मन में भी यही प्रश्न उठा था । पर आपको तो पता है किसी ने कहा है : क़ुदरत के खेल निराले रे बाबा, क़ुदरत के खेल निराले । तो बस यह क़ुदरत का खेल था ।

एक बात बताता चलूँ कि भले ही हमारा जमाना ऋषि और डिम्पल का था, पर हमारे प्यार की तासीर गुरुदत्त और वहीदा की रही - नरम, नाज़ुक, लजीली, शर्मीली । यह शुरु गर्मियों की शाम पेड़ के नीचे बैठ आहिस्ता आहिस्ता पी गई कीमती फ्रांसीसी लाल शराब का नशा था, रात की क्लीनिक ख़त्म करने के बाद थके हारे बदबूदार डॉक्टरों द्वारा पार्टी में हहुआ कर जल्दी जल्दी हलक के नीचे उतारी गई सस्ती टीचर्स स्कॉच का सस्ता खुमार नहीं ।

यह पहली नजर का प्यार था - ऐसा कहने की रस्म है, लव ऐट फ़र्स्ट साइट । आप कहेंगे तो मैं भी मान लूँगा । पर यह लड़की तो अजीब थी । भारतीय संस्कृति का बाजा बजा रही थी, मेरी दुनिया उथल पुथल कर रही थी ।

उसकी सोहबत में मैं मलयालम फिल्में देखने लगा, तमिल और मलयाली गीत गुनगुनाने लगा ।

वह सीधी और सरल होते हुए भी मायावी थी । जब वह दक्षिण भारतीय स्टाइल में हिन्दी बोलती तो उसकी ज़ुबान से जैसे पारिजात के मासूम फूल झड़ते, उनकी नाज़ुक और मीठी गंध हवाओं में घुलती । हृदय में गुदगुदी की लहरें मचलतीं । उसके घने काले बाल घुटनों तक झूलते । पारम्परिक दक्षिण भारतीय परिधान में होती तो वह किसी अन्य लोक से उतरी कृष्णवर्णा अप्सरा सी मालूम होती । लज्जालु, शीलधारिणी, मधुरभाषिणी, तन्वंगी दक्षिण भारतीय कन्या । जब धीरे से गर्दन ज़रा सा मोड़ कर हँसती तो दंतश्रृंखला विद्युत की तरह दमकती, हर तरफ़ सफ़ेद फूल बिखर जाते । जब वह नीले रंग की दक्षिण भारतीय साड़ी पर पीले रंग का ब्लाउज़ पहन कर माथे पर नन्हीं सी सफ़ेद बिन्दी लगाती और धीरे से मुस्कुरा देती,मेरा हृदय धक से हो जाता ।

वह मलयाली मलयानिल की मंद बयार थी ।

१९७

***

जैसा कि हमारे पुरखे कहते आए हैं, हम किस्से कहानियों में सुनते आए हैं, हमारा प्रेम परवान चढ़ता गया । सच कहता हूँ - हमारा प्यार सच्चा था । मैंने पहले कहा हमारे प्रेम में ऋषि कपूर और डिम्पल कपाड़िया के प्रेम का जोश, उसकी दहकती उष्मा भले ही न रही हो, गुरुदत्त और वहीदा के प्रेम की गहराई, परिपक्वता अवश्य थी । हमारा प्रेम उथला न था, शांत और गम्भीर था ।

धीरे धीरे मैं मलयालम सीखता गया और वह हिन्दी सीखती गई । मैं कभी मलयालम गीत गाता तो बदले में वह हिन्दी का कोई सुहाना गीत गुनगुनाती । हमने भाषा और क्षेत्र को अपने प्यारे प्रेम की राहों में रोड़े न अटकाने दिए । हमने ज़ालिम जमाने की परवाह न की । यह बात दीगर है कि अभी तक उसके और मेरे परिवारों तक हमारे अमर प्रेम की ऊँची डाल पर खिले लाल गुलाब की ख़ुशबू न पहुँची थी ।

पर हम तो बेसुध थे, हमें किसी परिवार, किसी दुनिया, किसी जमाने की परवाह न थी । दिल्ली शहर की किसी सड़क की धूल न थी जो हमने संग संग न छानी हो, कोई सड़ा से सड़ा सिनेमा हॉल न था जिसमें हमने संग संग फिल्म न देखी हो, कोई पंजाबी ढाबा, कोई तमिल रेस्तराँ न था जहां हमने छोले भठूरे, दोसे, उत्तपम न खाए हों, कॉफी न पी हो ।
हमारे प्रेम के चर्चे उस कोचिंग इंस्टीच्यूट के चप्पे चप्पे में फैल गए थे । लोग हमें देखते तो हमारी तरफ तिरछी नजर डालते, आपस में फुसफुसा कर बातें करते । मैंने साफ साफ देखा और महसूस किया कि लड़के और लड़कियाँ हमसे और हमारे प्यार से जलते थे, ईर्ष्या करते थे । मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि लोगबाग दूसरों की खुशी देख मन ही मन कुढ़ते क्यों हैं ? यह दुनिया इतनी संगदिल क्यों है ?
मैं फ़ालतू झूठ नहीं बोलना चाहता । आप चतुर सुजान हैं, आपसे झूठ बोलूँगा तो पकड़ा भी जाऊँगा । सच्चाई यह है कि उन दिनों समाजवाद के प्रति मेरी प्रतिबद्धता थोड़ी ठंढी पड़ गई थी । असल में समाजवाद के प्रति मेरी प्रतिबद्धता को दूसरी नई प्रतिबद्धताओं से जूझना पड़ गया था - वल्लरी और मेरे उफनते प्यार की प्रतिबद्धता और आइएएस बनने के जुनून की प्रतिबद्धता । यहाँ यह बताता चलूं कि मैं प्यार में डूबा जरूर था पर मैंने पढ़ाई लिखाई में कोताही न की थी ।
मैं पढ़ता गया था, मैं पढ़ता गया था ।
१९८
***
बड़े बुज़ुर्गों ने गलत नहीं कहा है कि मेहनत का फल मीठा होता है, मेहनत करोगे तो मज़े लूटोगे । वही हुआ । हम तीनों ने प्रारम्भिक परीक्षाएं धड़ल्ले से पास कीं और हम तीनों का साक्षात्कार में बुलावा आ गया । पर चाहे जितनी मेहनत कर लो, कोई आवश्यक नहीं कि सफलता शत प्रतिशत ही मिले । जितनी मिले उसी से आदमी को संतोष करना चाहिए । ज्यादा लालच के चक्कर में कभी नहीं फँसना चाहिए ।
साक्षात्कार में संदीप और मैं तो पार हो गए, पर बेचारी वल्लरी अंटक गई । यह अच्छी बात न हुई । थोड़े ही नम्बरों से अंटकी थी । साक्षात्कार में जनेवि के कोई वैज्ञानिक प्रोफेसर बैठे थे जिन्होंने वल्लरी से चंद्रमा का क्षेत्रफल और उसका भार पूछा और बेचारी वल्लरी लटकी । उसे पता ही न था । आपको पता होगा सामान्य ज्ञान का ऐसी परीक्षाओं में कितना महत्व होता है । और एक तरह से ठीक भी है - यदि व्यक्ति का सामान्य ज्ञान ही कमजोर हुआ तो सरकार के भारी भरकम उत्तरदायित्वों का हवन (यानी कि वहन) वह कैसे करेगा या करेगी ? है कि नहीं !
वह बहुत उदास थी । कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरी उदासी में भी कोई कमी न थी । वह मेरे काँधे पर सिर रख कर रोई, हालांकि रोते रोते भी वह बार बार मुझे और संदीप को बधाई देना न भूली । इस बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ ।
मैंने उसे पुचकारा, अपने प्यार का हवाला दिया और जैसी कि परम्परा है धैर्य रखने, हिम्मत न हारने, रास्ते और भी हैं आदि आदि की बातें उसे कहीं । तब जाकर उसे चैन आया ।

फिर कुछ दिनों के लिए वह अपने माता पिता के पास एर्नाकुलम चली गई । मेरा और संदीप का प्रशिक्षण के लिए मसूरी जाने का बुलावा आ गया । हमारी खुशियों का ठिकाना न रहा । पर मसूरी जाने में अभी दो महीने बाकी थे । घर समाचार पहुँच चुका था । मामा का मुज़फ़्फ़रपुर से तार आया । उन्होंने बधाई देते हुए इस दौरान मुज़फ़्फ़रपुर और भभुआ में कुछ समय बिताने की सलाह दी । फिर पता नहीं कब समय मिले न मिले । मैं तो खुद ही वहाँ जाने के लिए उतावला था । मैंने तय किया कि पहले कुछ दिन मुजफ्फरपुर में बिताने के बाद आराम से भभुआ जाऊंगा ।

बात यह थी कि मामा मामी का मेरे कैरियर के बनने में बहुत बड़ा योगदान था । मैं उस योगदान को कैसे भुला सकता था ? मामा मामी न होते तो मैं कभी जनेवि आता ? वहीं कहीं रोनी सूरत लेकर इधर उधर घूमता रहता । आदमी को वह जगह जहां से वह आया है - कभी नहीं भूलनी चाहिए ।

बहरहाल मैं मुज़फ़्फ़रपुर रवाना हुआ ।

१९९

***

पुरानी प्रथा के अनुसार ट्रेन छ घंटे विलम्ब से चल रही थी । जब वह मुज़फ़्फ़रपुर पहुंची, भोर के पाँच बज रहे थे । स्टेशन पर भागमदौड़ मची थी । लड़के केतली हाथ में लिए चाय चाय चिल्ला रहे थे, लाल वर्दी पहने हुए क़ुली सिर पर सामान लादे इस प्लेटफ़ॉर्म से उस प्लेटफ़ॉर्म भाग रहे थे । एक ने मुझे पीछे से धक्का दिया और मैं औंधे मुँह गिरता गिरता बचा । शुरु जाड़े के दिन थे, हल्की सी ठंढ थी और ऊँचे परिवारों के लोग मोटे स्वेटरों के ऊपर मोटे कोट पहने, सिर पर बंदरटोप लगाए प्लेटफ़ॉर्म पर टहलते थे । महिलाओं ने ऊनी शाल ओढ़े थे और सिर ढंक लिए थे । कुछ बच्चे इधर उधर कूदते थे । कुछ लोग व्हीलर वाली दुकान के सामने खड़े मनोहर कहानियाँ ख़रीद रहे थे । मेरे पास कुछ ज्यादा सामान न था । दाएं हाथ में सूटकेस और बाएँ में वही हैंडबैग जो मैं मॉस्को लेकर गया था । मेरी आँखें मामा को ढूंढ रही थीं ।

तभी अचानक मामा दूर धुंध से बाहर निकलते दिखे । साथ में मामी भी थीं । मैं मामी को देख कर चकित हुआ । मामी किसी को लेने प्लेटफ़ार्म पर जायं - यह सुना न था, वह भी इस समय भोर में ! मामा मामी में इन वर्षों में कुछ खास फ़र्क़ न पड़ा था । मामी पहले की तरह ही इस समय भोर में भी चमक रही थीं । मामा अब भी सूट और टाई पहने हुए थे, बाल अब भी कोलतार के रंग के थे । आँखों पर अब भी वही मोटे फ़्रेम का काला चश्मा और पैरों में चमचमाते जूते । बस थोड़ी तोंद और निकल आई थी । वे पास आए । दोनों के चेहरे उस ठंढ में भी खिले थे । मैंने पहले मामी और फिर मामा के पैर छुए, उन्होंने नहीं नहीं कहा और फिर मामा ने मुझे अंकवारी में भरा । उनकी खुशी का ठिकाना न था ।

२००

***

मामी जो तब मुजफ्फरपुर के लायन्स क्लब की कोषाध्यक्ष थीं, अब अध्यक्ष बन गई थीं । लायन्स क्लब में उनको चुनौती देने वाला न बचा था । मामी का अधिकांश समय अब सामाजिक कार्यों में बीतता ।

दुखियारी महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बनाने की दृष्टि से उन्हें सिलाई बुनाई का प्रशिक्षण, कोढ़ियों के लिए आवास की व्यवस्था, भूखे नंगों के लिए भोजन का इन्तजाम । इन सब गतिविधियों से समय बचता तो शामों को कभी बच्चों की, कभी वयस्कों की फैंसी ड्रेस पार्टी । मामी बता रही थीं कि एक फैंसी ड्रेस पार्टी में मामी ब्यूटी और मामा बीस्ट का वेश धारण कर गए थे । उस पार्टी की खूब धूम मची थी, समाचार पत्रों में तस्वीरें छपी थीं और मामी की लोकप्रियता को चार चाँद लगे थे । यहां तक कि एक राजनीतिक दल ने तो उन्हें विधान सभा के चुनाव का टिकट देने का प्रस्ताव रखा । पर मामी न मानीं, वे अपना ध्यान समाज कल्याण के उत्तरदायित्व से हटाने का खतरा नहीं लेना चाहती थीं । और फिर उन दिनों उस पार्टी की लोकप्रियता का ग्राफ लगातार गिरता जा रहा था, उसके टिकट से चुनाव लड़ना फालतू की बात थी ।

जिस दिन मैं मुजफ्फरपुर पहुंचा, संयोग से उसी दिन शाम को एक स्थानीय होटल में लायन्स क्लब का कार्यक्रम था । मामा मामी ने मुझे भी वहां चलने के लिए कहा । मैं पार्टियों, मीटिंगों से हीन भावना जागृत होने के भय से सदा भागता रहा, पर मामा मामी की बात कैसे टाल सकता था ।

मामी ने वहां मेरा परिचय करवाया, मुजफ्फरपुर की धरती और विशेष कर लायन्स क्लब से मेरे सम्बंधों का वर्णन किया । बताया कि मैं कितना होनहार निकला, जनेवि में प्रख्यात प्रगतिशील कवि और बुद्धिजीवी बनने के रास्तों से गुजरते हुए अब मैं भारत सरकार का युवा अफसर होने के कगार पर हूं और कैसे भारत भूमि का भविष्य मेरे जैसे प्रतिभाशाली युवाओं के हाथों सुरक्षित है । उनके भाषण की समाप्ति के बाद सारा हॉल देर तक तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा और तमाम ललनाओं और उनकी माताओं की दृष्टि मुझ पर स्थापित रही । मैं पसीना पसीना हुआ । मामी के कहने पर मैं भी सभा में बोला । मैंने मुजफ्फरपुर की धरती से अपने पुराने सम्बंधों को याद किया, लायन्स क्लब के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ और भविष्य में राष्ट्र की सेवा में कोई कोताही न करने का आश्वासन देता हुआ अपनी जगह पर आ बैठा । हॉल फिर तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजा ।

२०१

***

मुजफ्फरपुर उन दिनों बहुत बड़ा शहर न था, पर उसे बहुत छोटा बता कर मैं मुज़फ़्फ़रपुर का अपमान नहीं कर सकता, आज भी नहीं । मुजफ्फरपुर के संभ्रांत समाज में यह खबर आग की तरह फैल चुकी थी कि बीडीओ साहब का भांजा हालिया आइएएस हुआ है, शहर में है और अभी शादीशुदा नहीं है । मुझे इस बात का आभास तब हुआ जब मैं अगले दिन एक विवाह समारोह में गया । मामा मामी जा रहे थे, मुझे भी ले गए । मेरा मन न था पर उनका कहना कैसे न मानता । मेरे ममेरे भाई बहन भी साथ में थे । उनका मेरे लिए दुलार अचानक बहुत बढ़ गया था । पहले तो वे अक्सर मुझे बहुत ऊँची नजर से न देखते, मेरी देसी अंग्रेज़ी का कभी कभार अपने दोस्तों के सामने मजाक भी उड़ा देते । पर अब ! अब तो उनके प्रेम का पारावार न था । वे कभी मेरी कुहनी छू कर देखते, कभी भइया भइया बुला कर बिला वजह ही ही करते, कभी मेरे मुँह में जबरन चॉकलेट ठूँसते । उनके प्रेम का खेला देखने लायक था ।

बहरहाल विवाह समारोह में उधर दुल्हन दूल्हे का जयमाल चल रहा था और इधर तमाम संभ्रांत लोग विशेष कर महिलाएँ कभी अकेली, कभी ललनाओं के साथ हमारे पास आतीं, बैठतीं और मुस्कुरातीं । एक दो ने मेरा नाम भी पूछा और माता पिता के पते के बारे में जानकारी ली । एक क़रीने से सजी धजी प्रौढ़ महिला मुझसे इतनी प्रभावित हुईं कि उन्होंने दुलार से मेरे बारे में कहा :
देखो तो, कैसा सभ्य और संभ्रांत लड़का है, इतना बड़ा इम्तिहान पास किया है, बड़ा अफ़सर बनेगा, देश चलाने की ज़िम्मेदारी अपने जवान कंधों पर डालेगा, पर घमंड इसे छू तक नहीं गया है । बेचारा कितना भोला भाला है, कितना सुशील है, कितना अच्छा स्वभाव पाया है, बिल्कुल अपने मामा मामी पर गया है । सब संस्कार की बात है । जिस लड़की से इसका विवाह होगा, उसके भाग चमक उठेंगे ।
ऐसा कहते हुए उन्होंने अपनी बेटी नमिता को पुकारा जो थोड़ी दूर पर सखियों के संग बैठी आइस क्रीम खाती किलोल कर रही थी । नमिता मेरे पास आई और मुस्कुराती हुई मुझे हाय बोली । इशारों इशारों में औरों ने भी मेरी विवाहित स्थिति की जानकारी टटोलने की कोशिश की ।
यही हाल अगले दिन उस रेस्तराँ में हुआ जिसमें मामा मामी ने मेरे स्वागत में डिनर का आयोजन किया था । शाम को मामा मेरे पास आए और बहुत प्यार से मुझे रात के रेस्तरां के डिनर के बारे में बताया और मुझे कायदे के कपड़े पहनने की सलाह दी । इतने प्यार से पहले वे मुझसे कभी बोले न थे ।
वह शहर का सबसे महँगा और शानदार रेस्तराँ था । मामा ने बहुत लोगों को डिनर के लिए बुला रखा था । दावत का खर्चा शायद मामा ही भरने वाले थे पर ड्रिंक्स वगैरह का काम फ्रिज के कारोबार के होल सेलर सेठ चुन्नीलाल के जिम्मे था ।
मामा का मेरे लिए दुलार बहुत बढ़ गया था । अभी डिनर का समय नहीं हुआ था, लोग प्री डिनर ड्रिंक्स में व्यस्त थे । मामा एक कोने में खड़े हाथों में ड्रिंक्स लिए दोस्तों से कह रहे थे :
आप खुदै देख लीजिए सिंह साहब । आपको कहीं से लगता है यह लड़का बदला है ? इसके नाक नक्श, हाव भाव, बोलने का ढंग - कहीं से लगता है कि यह आम आदमी नहीं है, आइएएस है ? कुछ भी कहो, पढ़ाई लिखाई अपनी जगह पर और संस्कार अपनी जगह पर । साफ साफ दीदी और जीजा जी का दिया हुआ संस्कार है नहीं तो आजकल के लड़के क्लर्क क्या हुए, हजार रुपए जेब में क्या आए कि तीसमार खां बने, सिर आसमान पर चढ़ा । और देखिए इस लड़के को । लग रहा है कि मुजफ्फरपुर के डिग्री कॉलेज का छात्र है । लोग शादी ब्याह के लिए आ रहे हैं । इसके सामने हमलोग बात नहीं करते । पुराने जमाने के संस्कार हैं, लजा जाता है । नये जमाने की तो इसे हवा तक न लगी । मुझे तो लगता है कि ऐसे नौजवानों के हाथों देश की बागडोर सौंपी गई तो हमारे देश को महान बनने से दुनिया की कोई ताक़त नहीं रोक सकती ।
२०२
***
सिंह साहब और शर्मा जी मामा की बात से सहमत दिख रखे थे । थोड़ी देर के लिए मुझे भी अपनी भावी महती भूमिका का एहसास हुआ और मेरे अंदर गर्व और कर्तव्यबोध का संग संग संचार हुआ । मैं कोने

में विचारमग्न खड़ा था कि मामी सजी धजी प्रौढ़ा महिलाओं का झुंड लेकर मेरी तरफ आईं, झुंड के पीछे थोड़ी दूर पर प्रौढ़ाओं की ललनाएँ खड़ी थीं । प्रौढ़ा महिलाओं के मुखों पर तरह तरह के भाव थे । उत्सुकता, सम्मान, लालच आदि के भाव आते और जाते थे । मामी ने उनसे मेरा परिचय कराया । अब आप यह समझ लीजिए कि वहाँ छोटी मोटी भगदड़ सी मची । वहाँ प्रौढ़ाएं थीं, उनकी ललनाएँ थीं और मैं था ।
खाना लज़ीज़ था । बिरियानी, मुर्ग़ मुसल्लम, सरसों वाली मछली, नन्हीं नन्हीं फूली फूली रोटियाँ, भिंडी की भुंजिया, आलूदम, कटहल की सब्ज़ी, पुलाव और फिर अंत में केसर कुल्फ़ी, गुलाबजामुन और जलेबी । आत्मा तृप्त हो गई । सबसे अंत में कॉफी ।
प्रौढ़ाओं ने फिर मिलेंगे कभी का वादा करते हुए विदाई ली । ललनाएँ माँओं के पीछे हँसती खिलखिलाती घर लौटीं । पुरुषों ने मेरे उज्ज्वल भविष्य के लिए गम्भीरता से शुभकामनाएँ प्रकट कीं ।
पर मैं अब चिन्ता में पड़ गया । अपना दुख, अपनी दुविधा मैं किससे बयान करता । मामा से तो कर नहीं सकता था । मेरे ममेरे भाई बहन बेचारे अभी उस अवस्था में न थे कि उन्हें जीवन की रहस्यमयी बातें समझ में आतीं ।
मैंने हिम्मत करके सुबह की चाय पर मामी के सामने धीरे से मुँह खोला ।
२०३

***

मामी और मामा में फर्क था । मामा से मैं अधिक लिहाज करता था । मामी की बात दूसरी थी । उनके ख़यालात नये जमाने के मालूम होते थे । मेरा अनुमान था कि वे नए जमाने की बातें ज्यादा आसानी से समझ सकती थीं । हो सकता है नए जमाने की हवा ने उन्हें कभी कभार छू दिया हो । यह मेरा अनुमान है । मैं देखता था कि मामा तो कामधंधे की बातों में मशगूल रहते थे और मामी अक्सर दुपहर में बिस्तरे में फ़िल्मी कलियाँ या फिल्मफेयर लेकर लेटी दिखती थीं । उसके ऊपर लॉयन्स क्लब में महत्वपूर्ण पदों पर रहने का प्रभाव भी शायद पड़ा हो । यह बात इसलिए बता रहा हूँ कि उस जमाने में आज की तरह प्यार मुहब्बत की बातें बड़ों के सामने करने की प्रथा का प्रचलन आरंभ नहीं हुआ था । प्यार मुहब्बत की बातें डिम्पल और ऋषि, गुरुदत्त और वहीदा के लिए रिजर्व्ड थीं । शर्म लिहाज, हिचकिचाहट का जमाना था । आज जब मैं खुदै प्रौढ़ हो गया हूँ, कभी अकेले में वह जमाना याद करता हूँ तो लजाता हूँ ।
बात यह थी कि वल्लरी मेरे दिलोदिमाग से उतर नहीं रही थी । ललनाएँ तो यहाँ बहुत थीं, एक से एक थीं - कोई पचास वाट तो कोई दो सौ वाट के सौन्दर्य का बल्ब चमकाती । सच कहूँ तो मेरे दिल में भी एकाध बार हल्का सा भूचाल उठा था । पर फिर वल्लरी की याद आई थी और मैं ग्लानि और अपराधबोध के भावों में डूब गया था । वैसे तो अभी नताशा और रक्तिमा की यादें भी ताज़ी ही थीं, जरा सा कुरेदो तो होशोहवास पर छाती थीं पर मेरे मस्तिष्क ने मेरे हृदय को कन्विंस कर लिया था कि नताशा और रक्तिमा बीते हुए जमाने की ख़ूबसूरत यादें थीं जिन्हें यादों के फूलों के गुलदस्ते की तरह दिल के एक कोने में पार्क करना ही बुद्धिमानी थी ।

पर वल्लरी ! वल्लरी तो गए जमाने की बात न थी, इसी वसंत की दुपहरी में दरवाजे के ठीक बाहर आहिस्ता आहिस्ता बहती हुई हवा में मंद मंद डोलती मासूम और नन्हें सफेद फूलों से लदी हनी सकल की डाल थी ।

२०४

***

सुबह की बेला थी । सूरज ऊपर चढ़ा चला आ रहा था । धूप अब शरीर को लगती थी । ड्राइंग रूम खुला खुला था । खिड़कियों से कभी धूप तो कभी हवा बह बह कर आती । मामा सुबह जल्दी उठते थे, स्नान और जल्दी से पूजा करके काम पर निकल जाते थे । मामी को हड़बड़ी न थी । कॉफी क्लब में जाना था पर वह तो ग्यारह बजे था और अभी तो नौ बजने में दस मिनट बाकी थे । नन्दू नौकर ने केटली में चाय बना कर भूंजे, बिस्किट और नमकीन के साथ टेबुल पर रख दिया था और मेम साहब को आवाज दी थी । मेरी नींद तो पहले ही खुल गई थी । मैं शौच आदि से फ़ारिग़ होकर अखबार पढ़ रहा था । वह मुजफ्फरपुर में मेरा आखिरी दिन था ।

मामी बिस्तरे से आँखें मलती उठीं । बदरंग गाउन और उलझे हुए बालों में उनकी उम्र अचानक दस बरस बढ़ी हुई मालूम होती थी । उन्होंने नन्दू को टिकोजी ठीक से न ढँकने के लिए डाँटा, सब्ज़ी में बैगन न लाने की चेतावनी दी और मुझे चाय के लिए आवाज दी ।

मुझे लगा यही वह समय है जब मैं शायद मामी के सामने अपना दिल थोड़ा सा खोल सकूँ । मैं शर्मीला नौजवान था, ऐसी बातें करने की मेरी कोई ट्रेनिंग न थी । इसलिए ऐसा काम करना आसान न था, हिम्मत की माँग करता था ।

मैं नताशा और रक्तिमा की बात पचा गया । वैसे भी नताशा की बात करने की कोई तुक न थी । नताशा तो मॉस्को की चार दिनों की मीठी मेहमान भर रही थी । और रक्तिमा - वह तो उड़ गई थी । जैसे कलाई पर बैठी मैना अचानक उड़ कर किसी ऊँचे दरख्त की ऊँची डाल पर जा बैठे । अब रक्तिमा का सपना देखना वैसे ही था जैसे डिम्पल के सपने देखना । दोनों ही सुंदर थीं, सपनीली थीं, दूसरी दुनिया की चिड़ियाँ थीं । भावुक और रोमांटिक होते हुए भी मेरे अंदर दुनिया की समझ विकसित हो गई थी । पर वल्लरी को ख़ारिज करना इतना आसान न था ।

मैंने वल्लरी की ओर जरा सा इशारा किया भर था कि मामी मेरी बात समझ गईं । मुस्कुराने लगीं । वे नई दुनिया में टहलती घूमती थीं, फ़िल्मी कलियाँ और फ़िल्मफ़ेयर उनकी प्रिय पत्रिकाएँ थीं, उनके लिए मेरी बात में कुछ खास रहस्य न था । उन्होंने अपने उलझे हुए बाल सँवारे, चाय की एक चुस्की ली, बिस्किट का एक टुकड़ा कुतरा और बोलीं :

देखो बेटा, यह कोई नई बात नहीं । मुजफ्फरपुर में तो कोई लड़का, कोई लड़की नहीं जिसके साथ बार बार इस तरह के किस्से न हों । मैं इसी समाज में रहती हूँ - इसकी नस नस पहचानती हूँ । यह सब जिंदगी का रंग है । फागुनी बयार में फूलों की गंध के संग उड़ी हुई धूल है । गंध का आनंद लो, धूल पर समय न बर्बाद करो । तुम्हीं बताओ, तुम्हारे कोट पर धूल उड़कर आ बैठेगी तो तुम क्या करोगे ? तुम

कोट को झाड़ोगे या नहीं ? तो बेटा, भावना में मत बहो, धूल को फूल न बनाओ, बस काँधे से झटक दो, आगे की राह चले चलो ।
देखो बेटा, तुम आइएएस हो, कोई हँसी खेल नहीं, कोई मजाक नहीं । अब तो तुम्हारे खेलने खाने के दिन आए हैं । देखते जाओ दुनिया तुम्हारे पाँवों में लोटेगी । हजार वल्लरियां तुम्हारे कदम चूमेंगी । तुम यह अवसर न जाने देना बेटा । तुम्हें तो पता है तुम्हारे माता पिता की क्या आर्थिक हालत है । जीजाजी किस बुरी तरह चिंता के मारे बूढ़े होते चले जा रहे हैं । दीदी की तो बात ही छोड़ दो । देखती हूँ तो दिल दुखता है । अब उनके जीवन में सुख का आश्वासन आया है तो तुम क्या उन्हें इस सुख से महरूम करोगे ? माता पिता ने तुम्हें पालपोस कर बड़ा किया, उनके प्रति तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं ? उन्होंने भी तो गाड़ी घोड़े के सपने देखे होंगे । बेटा उनके सपनों का आदर करो, उनके बुढ़ापे की लाठी बनो । वल्लरी को एक भूली हुई मीठी याद की तरह दिल के एक कोने में छिपा लो बेटा ।
२०५

***

मैं जब भभुआ पहुँचा तो शाम के पाँच बज रहे थे । कस्बे में हर तरफ धूल उड़ रही थी । हलवाइयों की दुकानों में तरह तरह की मिठाइयाँ सजी थीं जिन पर मक्खियाँ कभी उतरतीं, कभी बोर होकर उड़ जातीं । एक मोटा शख्स गंदी सी गंजी और चारखाने की लुंगी पहने कड़ाही में समोसा छानता माथे का पसीना पोंछ रहा था । सामने ढेर सारे दोंगे घूरे पर पड़े थे जिन पर तीन चार नन्हें नन्हें पिल्ले कटकटा कर जूझ रहे थे । एक उजड़ी हुई ट्रक, जिसपर गीता और रामायण की इबारतें फिल्मी चुटकुलों और हेमा मालिनी की भड़कीली रंगीन पेंटिंग के साथ साथ बनी थीं, सामने से आई थी जिसका दरवाजा पकड़ कर एक मरियल सा लड़का झूलता था और लोगों को किनारे हटने के लिए आगाह कर रहा था । फिर उस ट्रक ने गगनभेदी हॉर्न बजाया था जो करीब करीब चीख की तरह था जिसे सुन कर लोग अगल बगल हो गए थे । सड़क की दूसरी तरफ एक सरकारी नल का पाइप फट गया था जिससे पानी चारों तरफ सड़क पर फैल गया था । कीचड़ में एक बूढ़े ग्रामीण की हवाई चप्पल फँसी थी जिसे निकाल कर वह नल के पास तेजी से बहते पानी से धोने के बाद अँजुरी भर कर पानी पी रहा था । एक चिथड़ों में लिपटी दुबली पतली औरत जिसकी असली उम्र शायद पचीस के आसपास रही हो पर जो दिखती पैंतालीस की थी, एक छोटे से लड़के को गोद में लिए और चार पाँच साल की एक लड़की की उँगली पकड़े भीख माँग रही थी । बच्चे की नाक से नेटा बह रहा था जिसे वह साड़ी के पल्लू से पोंछती जाती ।
सामने चौराहे पर गांधी जी की एक मूर्ति लगी थी जहां से सड़क बाईं या दाईं तरफ मुड़ सकती थी । बाईं तरफ की सड़क कस्बे के पुराने मुहल्ले की ओर जाती थी और दाईं सड़क कलक्टर के बंगले और जज की कचहरी की ओर ।
गांधी जी के सिर पर चिड़ियों के बीट पुते थे जिससे उनका सिर रंगबिरंगा हो गया था - उसमें भूरे और काले रंग की बहुतायत थी । गांधी जी के पैरों के नीचे की जमीन पर फटे पुराने अखबार, मिठाइयों के

खुले हुए खाली डब्बे, प्लास्टिक के फटे हुए बैग और टूटे हुए कुल्लढ़ों का ढेर था । पर इसके बावजूद गांधी जी को पहचानना मुश्किल न था ।
सामने दाईं तरफ से एक रिक्शा गुज़रा जिस पर बदरंग धूसर कमीज और फटी हुई पतलून पहने एक शख़्स रूह आफ्जा के गुणों का लाउड स्पीकर पर विस्तार से वर्णन कर रहा था । उसके पावों के पास रूह आफ्जा की कुछ बोतलें औंधी पड़ी थीं जो बिकने को उपलब्ध थीं । सामने एक बड़ा धर्मशाला था जिसकी दीवार पर ज़ालिम लोशन के गुण और बवासीर के इलाज में बंगाली डॉक्टर की क्षमता और शर्तिया इलाज के दावों का वर्णन था । बंगाली डॉक्टर कस्बे में शुक्रवार को आने वाला था । इलाज के कई स्तर थे जिनकी अलग अलग फीसों का ज़िक्र था । जैसे शाही अफ्रीका इलाज = ५०० रुपए, डीलक्स स्पेशल = ३०० रुपए, बंगाली जादू = २०० रुपए, और साधारण किफ़ायती = ५० रुपए ।
मैं ये नजारे देखता अपना सामान एक रिक्शे पर रख कर बैठा ही था कि बगल से गुज़रते एक मोटे आदमी ने पूरी ताक़त लगा कर अचानक पान के एक अच्छे ख़ासे थूक का गोला सड़क पर जड़ा जिसके छींटे मेरी पतलून पर पड़े । मेरे मुँह से चीख निकली और लोग मुझे घूरने लगे ।
२०६
***
रिक्शे ने गांधी जी की मूर्ति वाले चौराहे से दाईं ओर की सड़क पकड़ी जो कचहरी और कलक्टर की कोठी की ओर जाती थी । बाईं ओर पुराना नाला था जिसमें सूवर लोट रहे थे और जहां से एक खास क़िस्म की ख़ालिस हिन्दुस्तानी गंध निकल रही थी जो सारे देश के कस्बों में पाई जाती है और जो एक तरह से हमारी राष्ट्रीय पहचान है । पतली सी सड़क थी जिस पर बमुश्किल दो गाड़ियाँ निकल सकती थीं । किसी उत्साही कलक्टर ने पतली सी उस सड़क के ठीक बीच में डिवाइडर बनवा दिया था वैसे ही जैसे मैंने मॉस्को के चौड़े चौड़े हाइवे पर देखा था । हमारे रिक्शे के सामने एक ट्रैक्टर चल रहा था । ट्रैक्टर के पीछे एक ट्रॉली लगी थी जिसमें से सरिया बाहर की ओर निकले थे । सरिया के बगल में पुआल बिछा था जिस पर बैठे कुछ मज़दूर ताश खेल रहे थे । एक बूढ़ी औरत उनकी बगल में लेटी थी । अचानक किसी कारण से ट्रैक्टर घुरघुरा कर रुका । पर रिक्शावाले की सजगता से सरिया ने हमारा कुछ नुक़सान न किया । अब जबतक ट्रैक्टर रास्ता रोके खड़ा था, हमारे लिए आगे निकलने का रास्ता न था । रिक्शावाला उतर कर सड़क के किनारे पेशाब करने चला गया ओर मैं रिक्शे पर बैठा मनोहर कहानियाँ के पन्ने पलटता रहा ।
रिक्शा वाला निपट कर लौटा, देर तक खड़ा रहा, ट्रैक्टर वाले को बुरा भला कहता रहा । तभी अचानक ट्रैक्टर का इंजिन भड़भड़ भड़भड़ करता हुआ स्टार्ट हुआ, आसमान में काला धुँआ फैला और ट्रैक्टर चल निकला । दायीं तरफ हाई स्कूल और बाईं तरफ थाने का दृश्य देखते हुए हम आगे बढ़ चले । देखते देखते ही कचहरी आ गई । शाम का वक्त था, भीड़भाड़ कुछ कम थी । पर अभी भी एक शख्स वहाँ साँडे का तेल बेच रहा था पर उसके चारों ओर खड़े लोग अब छँट रहे थे और वह अपना साजोसामान बटोरने वाला था ।

कचहरी के आगे सड़क की बाईं तरफ बहुत बड़ा डाकबंगला था जिसमें जगजीवन राम जैसे मंत्री कभी आते तो टिकते । अंग्रेज़ों के जमाने का पेड़ों, फूल पत्तियों से घिरा हरा भरा बंगला - इस धूल और धुएँ भरे कस्बे का अलंकार - एक तरह का टूरिस्ट अट्रैक्शन ।
डाक बंगले के आगे थोड़ी दूर पर ही वह तिमुहानी थी जहां लोकनायक जयप्रकाश की मूर्ति लगी थी और जहां से हमें दाईं ओर मुड़ना था । सामने वाली सड़क घोसियों के मुहल्ले से गुज़रते हुए कस्बे के बाहर सुवरा नदी की ओर निकल जाती थी । दाईं वाली सड़क घोसियों के सटे हुए मुहल्ले से गुजरती हुई मेरे घर तक जाती थी । घोसियों के पास मवेशी बहुत थे । दूध का उनका काम था । सड़क के दोनों तरफ गाएँ भैंसे बंधी थीं । सड़क गोबर से पटी थी जिस पर कभी बच्चे, कभी बछड़े इधर उधर भागते । गोबर से ठीक से पुतने के कारण सड़क तो अब दिखती ही नहीं थी । वहीं से बाईं ओर मुड़ने पर हमारे घर का रास्ता जाता था जिसके बीचोंबीच एक चौड़ी सी नाली बहती थी जिसमें रिक्शे के पहिए अक्सर फँसते थे और फँसने के भय से बहुत से रिक्शा वाले आगे जाने को तैयार नहीं होते थे, सवारी को वहीं उतर जाना पड़ता था । पर मेरा रिक्शा वाला हट्टा कट्टा नौजवान था । मैं रिक्शे से उतर गया । हम दोनों ने मिलकर जोर से रिक्शे को धक्का दिया और रिक्शा नाली के पार निकल गया । वहीं मोड़ पर दो तीन लोग मिल कर गोइंठा पर लिट्टी बनाने में लगे हुए थे । बगल के मकान से एक दस बारह साल का नंगधड़ंग लड़का नेटा पोंछता हुआ निकला और “आइएएस भइया आए, आइएएस भइया आए” चिल्लाता हुआ मेरे घर की तरफ भागा । वह बस उधर भागा ही था कि सारा मुहल्ला ढोल नगाड़ों की आवाज से गूँज उठा । आकाश में आतिशबाजियों के कई बम भी फूटते दिखे ।
२०७

***

मैं कोई साल भर बाद भभुआ आया था । इस दौरान कस्बे में कोई बड़ा बदलाव न आया था । छोटी मोटी चीज़ें जरूर हुई थीं जिनके चर्चे उत्साही लोग चाय समोसे के संग अपने बैठकों में करते थे । मसलन -
नया कलक्टर आया था । एकदम लौंडा जैसा दिखता था, लगता था जैसे हाई स्कूल का विद्यार्थी हो । लोग कहते थे कि जात का बनिया था, बीएचयू से पढ़ा था । पर गुण बनिया के न थे, खाँटी ठाकुर के थे । आते ही जितना लोग सड़क के किनारे सरकारी जमीन पर कब्जा करके मकान बनवाए थे, सब यह जवान बुलडोजर लगा कर ढहवा दिया था । किसी का कोई सोर्स नहीं चला था । अफसरों के यहाँ दरबार लगाने वाले इस जवान के यहाँ भी पहुँचे - मक्खन लगाने के लिए । देखते ही भड़का और चाय पिलाने के बाद चेतावनी देकर भगाया । जनता जयजयकार कर रही है । सब माफिया ससुरे भाग गए हैं । नेता लोग भी हड़क गए हैं । इसे कहते हैं - आइएएस का जलवा । शुद्ध शाकाहारी है, लहसुन प्याज भी नहीं छूता । चपरसिया सब कह रहे थे भोर में चार बजे उठकर पूजा करता है । बजरंगबली का भक्त है ।
एस पी बड़ा ग़ज़ब का आया है । राजस्थान का मीना है - सजीला नौजवान । नक्सलियों को देखते ही दौड़ा लेता है । मेहरारू बच्चे नहीं हैं, जान की भी परवाह नहीं कर रहा है ।

सड़क पर आवारा कुत्ते पहले की तरह ही दौड़ भाग रहे थे । हमारे घर के सामने वाली बैंक की चहारदीवारी के पार मुहल्ले का सारा कूड़ा पहले की तरह ही जमा था ।
मेरी मां "प्रबिसि नगर कीजे सब काजा हृदय राखि कौसलपुर राजा" बोलती हुई मेरे पास आई थी, अक्षत वाला टीका मेरे माथे पर लगाने के बाद साड़ी के कोने में बँधा लाचीदाने का प्रसाद मेरे मुँह में डाला था ।
पिता जी पहले से थोड़े दुबले हो गए थे । किनारे खड़े थे । मेरे दोनों बड़े भाई भी आ गए थे । मैंने सबके पैर बारी बारी छुए । पड़ोसियों ने फुसफुसा कर एक दूसरे को कहा : इसे कहते हैं असली आइएएस, देखो आगे चलकर यह लड़का जिले का मालिक बनेगा पर देखने से लगता है क्या ? सब संस्कार की बात है भइया, सब संस्कार की बात है । बड़ा बाबू ने जरूर पिछले जन्म में भारी पुण्य किए होंगे ।
एक बदलाव और आया था : एक ज़माने में मार्क्सवादी रहे मेरे पिताजी संघी हो गए थे ।
२०८
***
यदि मैं यह कहूँ कि मुझे पिता जी के घोर मार्क्सवादी से अचानक संघी बन जाने पर आश्चर्य न हुआ तो यह सच्ची बात न होगी । मुझे आश्चर्य हुआ पर मेरी उनसे पूछने की हिम्मत नहीं थी । हाँ, मैंने कुछ नई पुस्तकें वहाँ रखी हुई जरूर देखीं और मैं यह अनुमान लगाने में सफल हुआ कि क्या पता उन किताबों का असर हुआ हो । सोल्जेनित्सिन की कई किताबें पड़ी हुई थीं और भूतपूर्व कम्युनिस्ट निर्मल वर्मा के चेकोस्लावाकिया प्रवास के दिनों की डायरी के पन्ने खुले हुए थे । हद तो तब हो गई जब मैंने सुना कि वे स्थानीय शाखा के कार्यवाह नियुक्त हो गए थे । जिस दिन मुझे यह पता चला मैं रात भर सो न सका । मैंने मौन की भाषा में बाबा मार्क्स और कॉमरेड स्टालिन से पिताजी के समाजवादी मार्ग से विचलित होने के लिए क्षमा माँगी तब जाकर मेरे सीने में ठंढ पहुँची ।
मैंने मन ही मन सोचा कि पिताजी पर तो मेरा वश नहीं पर मैं अपने हृदय में जलती समाजवाद की चिनगारी को बुझने न दूँगा । ठीक है, मैं जिले का मालिक बनूँगा पर सर्वहारा के प्रति मेरी प्रतिबद्धता में मैं कमी नहीं आने दूँगा ।
उन दिनों बहुत से लोग आते जाते रहे । पड़ोसी, रिश्तेदार, बचपन के मेरे दोस्त । कुछ अनजान वरिष्ठ लोग भी आए जो पिताजी से फुसफुसा कर बातें करते और मेरी ओर तिरछी नजर से देखते । मैं नया नया आइएएस होने के कारण बुद्धिमान था - मैंने अनुमान लगा लिया कि वे कौन थे । उस जमाने में लड़के पिताओं से इस तरह की बातें नहीं किया करते थे ।
सुनने में आया कि पटना के एक राजनीतिक नेता ने पचास लाख तिलक देने का प्रस्ताव रखा था । लखनऊ के एक व्यापारी साठ लाख तक जाने को तैयार थे । उनकी लड़कियां सुंदर और पढ़ी लिखी थीं । पर आपको बताने की आवश्यकता नहीं कि एक मार्क्सवादी होने के नाते मैं तिलक दहेज जैसी बातों को अभिशाप मानता था और ऊपर से मेरे दिल में जलता वल्लरी की याद का दिया अभी बुझा न था ।

पर दूसरी तरफ मैं ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहता था जिससे मेरे माता पिता का दिल दुखे । मैं उनके बुढ़ापे का सहारा बनने को उत्सुक था ।
माता पिता के प्रति अपने कर्तव्य और मेरी सैद्धांतिक प्रतिबद्धता और वल्लरी की न भूलती याद - इन दो पाटों के बीच मैं पिसा ।
२०९
***
यह बताने की जरूरत नहीं कि मेरे घर में तिलकहरुओं का ताँता लगा था, एक जाता तो दूसरा आता । एक बार तो ऐसा हुआ कि एक बार में ही दो दो आ गए, बड़ी मुश्किल से पिता जी ने उन्हें सलटाया । मैं तिलकहरुओं से नहीं मिलता था, घर के अंदर चला जाता था । ये बड़ों की बातें थीं, इसमें लड़कों का हाथ डालना परम्परा में न था । और मैं भले ही आइएएस होने के कगार पर था या एक तरह से हो ही गया था पर पिताजी से अब भी डरता था । संकोच लिहाज का जमाना था, ससुर और वधू का बाँहों में बाँहें डाले डिस्को करने का रिवाज अभी हमारी तरफ न था, बम्बई वग़ैरह में रहा हो तो पता नहीं ।
पर मेरे घर में सिर्फ तिलकहरुओं की भीड़ न थी । तरह तरह के लोग दिन भर आते जाते रहते थे । अधिकांश को चाय मिल जाती थी, किसी किसी को तो समोसा भी मिल जाता था । जैसा जिसका रुतबा । एक दूर के रिश्तेदार सुबह सुबह बस से आ पहुँचे अपने पंद्रह सोलह साल के लड़के को लेकर । उनका कहना था कि लड़का पढ़ने में बहुत तेज था, भविष्य में आइएएस बनने की तमन्ना रखता था पर उसने कभी आइएएस देखा न था सो देखने चला आया था ।
इसके अलावा पड़ोसी, बगल का नाई, कुछ घोसी और गाँव के कुछ बनिहार भी आते रहते थे । वे आते और मेरे चेहरे को टुकुर टुकुर देखते रहते जैसे कि मैं अभी अभी चिड़ियाघर से छोड़ा गया भालू होऊँ ।
मेरे कई सहपाठी भी आते । ये वे लोग थे जिन्होंने मेरे साथ बचपन में फ़ुटबॉल खेला था, अमरूद के पेड़ से चोरी से फल तोड़े थे, जो सुवरा नदी में संग संग नहाए थे, भैंस की पीठ पर चढ़े थे । दिक्कत की बात यह थी कि इनमें से अधिकांश आते ही मेरे पांव छूने लगते और मैं अरे अरे, हाँ हाँ करता, हल्के से रोकने की कोशिश करता । उनका कहना था कि अब मैं बड़ा अफ़सर होने वाला था, जिले का मालिक होने वाला था इसलिए आम आदमी जो वे थे, उनका कर्तव्य था कि वे मेरे पाँव छुएँ । यही हमारी पुरानी संस्कृति है, लाज लिहाज है, मर्यादा है । और मैं उन्हें दर्शन करने दे रहा हूँ - यह मेरा उनपर कम एहसान नहीं है ।
उन्हीं दिनों मेरा बचपन का एक जिगरी दोस्त लालबहादुर सुबह सुबह मिलने आ गया । लालबहादुर पढ़ने में मुझसे तेज था पर पैसों की कमी के कारण और पिता के असमय देहांत के कारण उसकी पढ़ाई छूट गई थी और वह वहीं कचहरी में चपरासी के पद पर नियुक्त हो गया था । लालबहादुर ने बचपन में मुझे साइकिल चलाना सिखाया था । मैं सीखने में भोंदू था जिसके कारण एक बार उसने मुझे एक लप्पड़ भी जड़ा था ।

लालबहादुर पुरानी बातों को याद कर शायद लजा रहा था । पर उसने औरों की तरह मेरे पाँव छूने की चेष्टा न की । सामने रखी कुर्सी पर सकुचा कर सिकुड़ा हुआ एक कोने में बैठा । लालबहादुर पहले भी आइएएस देख चुका था । वह कलक्टर साहब के यहाँ चपरासी था, अक्सर उनके संग बैडमिंटन खेलता था ।

२१०

***

लालबहादुर भले ही समय की मार से पिट कर चपरासी होकर रह गया पर लालबहादुर को मामूली चपरासी समझना भूल होगी । एक जमाने में वह मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन किया करता था, बौद्धिक बहसों में भाग लेता था । यह यूँ ही नहीं था कि इतने ऊँचे जिले के मालिक कलेक्टर साहब ने बैडमिंटन खेलने के लिए एक चपरासी का चुनाव किया था । कलेक्टर साहब के साथ बैडमिंटन खेलना कोई छोटी बात न थी । कस्बे के कितने ही अफ़सरान, व्यापारी एक बार उनके साथ बैडमिंटन खेलने के लिए क्या नहीं करते । पर कलेक्टर साहब ने लालबहादुर का चुनाव किया । इस बात से न सिर्फ लालबहादुर बल्कि कलेक्टर साहब - दोनों की प्रतिभाओं का पता चलता है । लालबहादुर की अपनी प्रतिभा और कलेक्टर साहब की पद के पार आदमी पहचानने की प्रतिभा । लोग भारत को पिछड़ा देश मानते हैं, पर मुझे सदा लगा भारत में प्रतिभा की कमी नहीं । आपको पता होगा हिन्दी के महान कवि सुदामा प्रसाद पांडेय धूमिल भी बनारस आईटीआई में चपरासी के ही पद पर थे ।

बातों बातों में लालबहादुर ने मुझे बताया कि कलेक्टर साहब से उसने मेरा ज़िक्र किया था और कलेक्टर साहब मेरे बारे में सुन कर बहुत प्रभावित हुए थे और मुझसे मिलना चाहते थे । मैंने जब इस बात का ख़ुलासा अपने परिवार में किया तो लोग दंग रह गए । उनमें से कोई कभी किसी कलेक्टर से मिला न था और कलेक्टर बिना किसी कानूनी कारण के ऐवें ही आम आदमी से मिलने की इच्छा व्यक्त करे - यह उनके लिए हैरानी का सवब था । और मैं भी थोड़ा सा हैरान और थोड़ा सा उत्सुक था । मैं तो खुदै कलेक्टर बनने वाला था पर असली जिंदगी में एक शख्स जो पहले सी ही कलेक्टर बन चुका है, कैसा दिखता है, कैसे उठता बैठता है, क्या खाता पीता है - इन बातों में मेरी दिलचस्पी थी ।

फिर वह शाम आई जब मैं और लालबहादुर फूलों का एक गुलदस्ता और झंझरिया पुल पर पहलवान की मिठाई की दुकान से गुलाबजामुनों का एक डब्बा लिए कलेक्टर साहब के डाकबंगले में पहुँचे ।

२११

***

यदि आप समझते हैं कि मेरा मुख्य भाव जिज्ञासा और उत्सुकता का रहा तो आप जल्दीबाजी कर रहे हैं । इतना अधैर्य अच्छा नहीं । उत्सुकता थी, अपने हमजात भाई को देखने की उत्सुकता किसे न होगी ? पर सिर्फ उत्सुकता न थी । हिचकिचाहट भी थी, अज्ञात का भय भी था । मैं देखना चाहता था उस व्यक्ति को जो कलेक्टर हो चुका हो पर भयभीत भी था कि कलेक्टर के सामने मेरे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय जिससे भद्द मचे, फजीहत हो । यह भी कि कहीं किसी बात पर कलेक्टर नाराज़ न

हो जाएँ और उनका गार्ड एकाध डंडा न लगा दे । अपमान का भय किसे न होगा ? मेरा दिल धुकधुका रहा था ।
गोधूलि की बेला थी । कस्बे में हर तरफ शोर था पर कई एकड़ में फैले इस बंगले में चिड़ियों के स्वर के अतिरिक्त और कोई स्वर न था । कभी हवा जरा सी चलती तो पेड़ों के पत्ते सरसराते । बंगला चारों ओर से दर्जनों ऊँचे ऊँचे पेड़ों से घिरा था । आम के पेड़, युकलिप्टस, अशोक और शीशम के पेड़ । पेड़ों के पत्ते जमीन पर गिरे थे जिनपर चलने पर आवाज निकलती थी । हम नहीं चाहते थे कि कलेक्टर साहब को असुविधा हो, उनको डिस्टर्बेंस हो इसलिए हम कदम संभाल कर हौले हौले रखते ।
बगल में ही बैडमिंटन कोर्ट था जो चारों तरफ फूलों की क्यारियों से घिरा था । एक तरफ तो सिर्फ गुलाब की क्यारियाँ थी । मैंने इतने विविध रंगों के गुलाब एक संग पहले न देखे थे । काले गुलाब की क्यारी के बगल में सफेद गुलाब । पीले गुलाब की क्यारी के बगल में गुलाबी गुलाब । दूसरी तरफ गुलदाउदी की क्यारियाँ और पीछे सूरजमुखी जिनके सफेद और पीले फूलों के चेहरे सूरज के डूबने के साथ अपनी लम्बी गर्दनों पर झुक गए थे ।
बैडमिंटन कोर्ट से थोड़ा हट कर साग सब्ज़ी का छोटा सा खेत था । शलजम, गोभी, टमाटर, धनिया, लहसुन, तरह तरह की साग । देख कर ही मेरा जी ललचाया ।
पोर्च में दो गाड़ियाँ लगी थीं । दो नन्हें नन्हें सफेद सुंदर पिल्ले हमें देख कर भौंकने लगे ।
२१२
***
हैरानी की बात थी कि मैं जो कि करीब करीब आइएएस हो ही चला था, डरा डरा, सहमा सहमा भींगी बिल्ली की तरह बरामदे में खड़ा था जबकि लालबहादुर जो सिर्फ एक मामूली चपरासी था, बिल्कुल सहज था, उसके चेहरे पर शिकन की एक रेखा न थी । मैंने अनुमान लगाया कि ऐसा इसलिए हुआ होगा क्योंकि लालबहादुर का कलेक्टर साहब के यहाँ रोज का आना जाना रहा था और वह उनका बैडमिंटन का पार्टनर भी था । खैर, मैंने दो तीन बार जोर से साँस अंदर खींची और स्वयं को संयत रखने का अर्धसफल प्रयत्न किया । हालाँकि मेरे माथे का पसीना हवा चलने के कारण सूख चला था, फिर भी मैंने पतलून की जेब से रूमाल निकाली और माथा पोंछा । मैंने सँभल कर धीमे से एक बार खंखार कर गला भी साफ कर लिया और ऊपर अनंत आकाश की ओर देखने लगा ।
मैं बरामदे के बाहर ही खड़ा रहा । कभी ऊपर आकाश में इधर उधर भागते सफेद बादलों के नन्हें टुकड़ों को देखता, कभी बगिया में फूले फूलों को, कभी पेड़ों की शाखों को । लालबहादुर तो बेधड़क बंगले के अंदर चला गया था । दोनों पिल्ले मेरे इर्द गिर्द मँडराते मुझसे परिचय करने की कोशिश कर रहे थे और मैं उन्हें हल्के से फुसलाने की कोशिश कर रहा था ।
लालबहादुर पांच मिनट में ही बाहर आ गया और मुझे बरामदे में रखी बेंत की दो कुर्सियों में एक पर बैठने का इशारा किया । कुर्सियों के सामने एक नन्हां सा टेबुल था जिस पर सर्चलाइट और इंडियन नेशन अख़बारों के पन्ने उघड़े पड़े थे । मैं कुर्सी पर बैठ कर सर्चलाइट में छपे इश्तिहार पढ़ने लगा ।

मैं कभी इश्तिहार और कभी समाचार पढ़ता कलेक्टर साहब के बाहर आने की प्रतीक्षा करता रहा । थोड़ा ही समय गुजरा कि घर का वह दरवाजा जो बरामदे में खुलता था, हल्की सी चरमराहट के साथ खुला और कोई तीस बत्तीस की उम्र का एक व्यक्ति निकला । मैंने तुरंत अनुमान लगाया कि हो न हो यही कलेक्टर साहब होंगे । पर मैं हैरान था कि कलेक्टर तो बिल्कुल सामान्य आदमी की तरह दिखता था । उसमें तो कोई खास बात न थी, उसे देख कर तो कोई कह नहीं सकता था कि यह शख्स कलेक्टर है । सफेद कुर्ते पायजामें में औसत क़द का दुबला पतला आदमी, साँवला रंग, रूखे घुंघराले काले बाल, ललाट पर जल्दी ही गंजा हो जाने के लक्षण, बारीक सी मूँछ, छिली हुई दाढ़ी, पैरों में कोल्हापुरी चप्पल । बस एक ही चीज थी जो उसे विशेष बनाती थी - कुर्ते पायजामे के ऊपर हल्के पीले रंग पर लाल छींट के डिज़ाइन वाला पतला सिल्क का ढीला ढाला गाउन जिसकी रस्सियाँ खुली थीं और कलेक्टर उन्हें बाँध रहा था - बिल्कुल पुरानी फ़िल्मों के इफ्तिखार जैसा । मैं कुर्सी से उठा, मेरा पैर सरका और मैं गिरने ही वाला था कि सामने रखी मेज का सहारा लेकर सीधा खड़ा हुआ और उस शख्स के पाँव छूने के लिए लपका । पर उसने हाँ हाँ कहते हुए मुझे पैर छूने से रोका ।
२१३

***

कलेक्टर देखने में आदमी की तरह ही लग रहा था । अकड़ भी कुछ खास न दिखी । बल्कि मुझे तो उसका चेहरा उदास, उतरा उतरा सा दिखा । मुझे तो पता नहीं क्यों उससे सहानुभूति होने लगी । उदासी के बावजूद कलेक्टर का व्यवहार मेरे प्रति रूखा न था । कलेक्टर ने अंदर से मसाले वाली चाय, पार्ले जी बिस्कुट और मठरियाँ मंगवाईं । बहुत देर तक कलेक्टर चुपचाप सामने की लॉन पर आँख गड़ाए रहा, फिर दबी दबी आवाज में बोला :

सुना, आपका भी आइएएस में चयन हो गया है और आप भी किसी भी समय मेरी तरह कलेक्टर बनने वाले हैं । मुझे उत्सुकता हुई । अपने पुराने दिनों की याद आई । सोचा : देखूँ तो सही नवजात कलेक्टर कैसा दिखता है । आशा करता हूँ आप मेरी बातों का बुरा नहीं मानेंगे । देखिए, आप मेरी बिरादरी के आदमी हैं । आदमी अपनी बात बिरादरी के आदमी से न करे तो किससे करे । इस मनहूस कस्बे में मैं कायदे के आदमी से बात करने को तरस गया हूं ।

देखिए, मेरी यह मंशा नहीं कि एक नौजवान भावी कलेक्टर की आशाओं, अपेक्षाओं, उमंगों पर एक घड़ा बर्फ़ीला पानी डालूँ । नहीं, मैं ऐसा बिल्कुल नहीं कर सकता । उत्साह है, उमंग है तो जीवन है । पर मैं सच्चाई छुपा भी तो नहीं सकता । एक जमाना था जब मेरे अंदर भी उत्साह और उमंग का सागर ठाठें मारता था । मुझे लगता था कि मुझे दुनिया की नियामत मिली है, मैं इस दुनिया को ठीक किए बिना नहीं मानूँगा । जहां भी कुछ गड़बड़ दिखता, मैं उसे ठीक करने की बाबत सोचने लगता ।

यह मेरी दूसरी पोस्टिंग है । पहली पोस्टिंग में मैंने सड़क पर बिना लाइसेंस के खोमचा लगाने वालों को पीट पीट कर भगाया, ग़ैरक़ानूनी इमारतों को ढहवाया, गुंडा बदमाशों को अंदर किया, ठेकेदारों की खबर ली । आलम यह था कि जैसे ही मैं शहर की सड़क पर निकलता, तहलका मचता । लोग मालिक आया,

मालिक आया कहते हुए सड़क छोड़ देते । मेरे बंगले पर चमचागिरी करने वाले लिजलिजे व्यापारियों, अफ़सरों और छुटभइए नेताओं का ताँता लगा रहता । मेरा घर फूलों के गुलदस्तों से पटा रहता और मेरे फ्रिज मिठाई के डब्बों से । पर अपनी बादशाहत में मैं यह भूल गया कि मैं जिले का मालिक भले ही हूँ पर मेरा मालिक कोई और है और वह मालिक अगर गुस्साया तो मेरी मालकियत कमजोर हो सकती है । यह बात मैंने उस जगह के सांसद से झगड़े के बाद सीखी । सांसद किसी चहेते को पुल का ठेका दिलवाने के काम के लिए मेरे पास आए थे, बल्कि बेचारे कुछ रक़म पानी भी खर्च करने को तैयार थे पर जवानी के जोश में मैंने उनका समुचित आदर न किया । कच्चा आदमी था, अनुभव की कमी थी । सांसद महोदय ने कानून मंत्री से शिकायत कर दी और मेरा तबादला इस मनहूस कस्बे में हो गया । यह क़स्बा भी कोई जगह है । बुरा मत मानिएगा, मुझे मालूम है आप इस कस्बे के रहने वाले हैं ।
पर आप ही बताइए - इस कस्बे में समोसे, जलेबियों, घोसियों और गोबर के अलावा क्या है ? जिधर देखो उधर नालियां बजबजा रही हैं, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं । ले दे कर इस कस्बे में एक ही आदमी बात करने लायक है - लालबहादुर ।
मैं लालबहादुर को बहुत मानता हूँ । है तो चपरासी, पर बड़े बड़े अफ़सरों से बेहतर है । अब आप यह समझ लीजिए - अफ़सर माने चोर । मैं इसमें अपनी गिनती भी रखता हूँ । दिन भर वही इधर उधर की बातें, लूटने खसोटने के षडयंत्र । ये लोग सूवर की तरह हैं । बस यह समझ लीजिए कि मैं सूवर बाड़े में लोट रहा हूँ । बस मैं जब शाम को घर लौटकर लालबहादुर के संग बैडमिंटन खेल कर पसीना पसीना होने के बाद देर तक नहाता हूँ और फिर ताज़े कपड़े पहन कर इन पेड़ों के नीचे इस घास पर कुर्सी लगा कर बैठता हूँ और आकाश और धरती को निहारते हुए, सूरजमुखी के उदास फूलों को देखते हुए खरामा खरामा चुपचाप चाय की चुस्कियाँ लेता हूँ तब मुझे लगता है कि मैं अब भी आदमी हूँ ।
२१४

***

मैं कलेक्टर के दुख में दुखी था । कौन हमजात अपनी जात के दुख से दुखी न होगा ? मैं बस चुपचाप सुन रहा था । कलेक्टर बोलता गया :
देखिए, आप भी क्या कहते होंगे कि मैं आपसे पहली बार ही मिला और अपने दुख की दास्तान खोल कर बैठ गया । बात यह है कि आप जैसे लोग कहाँ हैं इस कस्बे में जिनसे कोई दिल की बात कहे ? आपको देखा तो रहा न गया । फिर भी आदमी को जज़्ब करना चाहिए । यह अच्छी बात नहीं कि मैं अभी तो आपसे मिला और ऐसी बहकी बहकी बातें करने लगा । कमिश्नर साहब को पता चले तो मेरे कैरियर की बत्ती गुल कर दें । पर क्या करूँ, इस मरे सड़े हुए कस्बे में अकेला हूँ । अक्सर खुद से बातें करता हूँ । आज आदमी मिला तो उससे बातें करने लगा । जेम्स हेडली चेज के उपन्यास पढ़ कर जी हल्का करता हूँ । एक ही सिनेमा हॉल है यहाँ - पुष्पावली । कभी कभी पिक्चर देखने चला जाता हूँ, पर वीआईपी होने के कारण इतना तामझाम है कि मन नहीं करता ।

कलेक्टर ने लालबहादुर को इशारे से बुलाया और रात के खाने में मुर्ग़ मुसल्लम का इंतज़ाम करने के लिए कहा । लालबहादुर अंदर से वोदका की दो बर्फीली गिलासें और एक बोतल ले कर आया । मैंने नोट किया कि कलेक्टर के लहजे में हरियाणवी पुट था । वह गुड़गाँव का रहने वाला था । दिल्ली आईआई टी में पढ़ा था । मैंने आईआईटी की बात क्या उठाई कि जैसे उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया । कलेक्टर का स्वर और भी दुख और भी क्षोभ में डूबा । कहने लगा :

कभी कभी मेरे दिल में ख्याल आता है कि आईआईटी वाला रास्ता मैंने क्यों छोड़ा ? तब के मेरे सहपाठी न्यूयॉर्क और सैन फ़्रांसिस्को में भर भर के डॉलर झोली में भरे जा रहे हैं, नाइट क्लबों में रंगरेलियाँ मना रहे हैं और मैं इस गर्दीले कस्बे में धूल फाँक रहा हूँ । पता नहीं मेरे सिर पर क्या धुन समाई ? वैसे आइएएस का ग्लैमर तो है, रोब भी है, लोग सलाम ठोंकते हैं, लोग मुझे - जीनियस है, जीनियस है - भी कहते हैं ।

यहां लोग कामचोर तो हैं ही, भ्रष्ट भी बहुत हैं । एक दिन यहाँ थाने का इंस्पेक्टर घूस लेने के मामले में पकड़ा गया । मैंने उसे सबके सामने बेइज्जत किया, एक डंडा लगाते लगाते रह गया । सारे इलाक़े में मेरे कड़क और खाँटी इमानदार होने की डुगडुगी बज गई । बाद में जब सब लोग चले गए तो मैंने उसे डाँट कर कहा : अरे, घूस लेने का मन ही है तो कायदे से, सलीक़े से लो, skill का इस्तेमाल करो, सबके सामने प्रशासन की भद्द न मचाओ ।

सच कहूँ तो मैं सैद्धांतिक तौर पर घूस लेने के विरुद्ध हूँ । घूस को मैं पाप समझता हूँ । पर घूस एक सामाजिक समस्या है और उसे हमें सामाजिक समस्या की तरह ही देखना चाहिए । आप देखिए, हमारी तनख्वाह इतनी कम है, हम घूस न लें तो क्या करें, अपना स्टेटस कैसे मेंटेन करें ? आप हमसे यह उम्मीद तो नहीं कर सकते न कि हम जिंदगी भर भिखमंगे का जीवन जिएँ ?

हमने चियर्स कह कर वोदका को कंठ लगाया । कलेक्टर अपनी रौ में बहता गया ।

२१५

***

मेरे देखते देखते ही कलेक्टर ने बोलना बंद कर दिया और मौन हो गया । लगा कि अचानक उसकी आँखें किसी सपने में गुम हो गई हों - शायद कोई गमगीन सपना । उसका सिर जरा सा उठा और वह आकाश को टकटकी लगा कर देखने लगा । रात शुरु हो गई थी । आकाश साफ था और एक नन्हां, मरियल, दुबला सा चाँद आकाश की चादर के पीछे से झाँकने लगा था । कलेक्टर की आँखें रिक्त और भावशून्य थीं । फिर उसने गहरी साँस ली और जैसे कि आकाश से धरती पर लौट आया । शायद किसी पुरानी याद की यात्रा कर वह लौट आया था । वह पूरी तरह अपने आपे में न था, खोया खोया सा था ।

थोड़ी देर बाद जब उसने बोलना शुरु किया तो मुझे लगा कि उसकी आवाज में रुआंसापन है, उसकी आवाज भर्राई भर्राई सी है । हो सकता है यह उसपर वोदका का असर रहा हो । यह भी हो सकता है कि वोदका का मुझपर असर होने के कारण मुझे ऐसा महसूस हुआ हो । कौन जाने ।

मुझे लगा कलेक्टर भावुक हो रहा है । लालबहादुर ने मुझे बताया था कि कलेक्टर एक जमाने में कविताएँ लिखा करता था ।

एक बार और गहरी साँस लेकर कलेक्टर बोला :

मेरा अनुमान है कि आप आदर्शवादी हैं । एक जमाने में मैं भी था । मुझे इस बात का पूरा एहसास था कि मैं कोई मामूली आदमी नहीं, आइएएस था, करीब करीब जीनियस था । समाज को बदल डालने का जिम्मा मेरे इन कंधों पर था । समाज मेरी तरफ आशा भरी निगाहों से देख रहा था और मैं समाज की आशाओं को पूरा करने का संकल्प ले चुका था ।

कलेक्टर बोले जा रहा था कि दोनों पिल्ले उसके पास दौड़ते हुए आए और उसके पाँव चाटने लगे । कलेक्टर ने उन्हें दुलार से थपथपाया और झुक कर बारी बारी से पप्पी ली । फिर पिल्ले भौंकते हुए पेड़ों की तरफ भागे ।

२१६

***

यह वोडका के कारण भ्रम न था । बेचारा कलेक्टर वाकई करीब करीब रुआँसा था । उसे अपने माता पिता की याद की याद ने धरा था । उसे इस मनहूस कस्बे के इस मनहूस सन्न सन्न करते बंगले का जीवन रास न आया था । पर आइएएस था, उसे अपने स्टेटस का ख्याल था । उसने खुद पर जज़्ब किया, आँसुओं से जरा सी गीली आँखों का दोष मौसम के बदलाव और हर तरफ फैले ज़ुकाम पर थोपा और बोला :

मैं अपने माता पिता की इकलौती संतान हूं । मेरे पिता स्टेट बैंक में एक मामूली क्लर्क हैं । कितने कष्ट सह कर उन्होंने पैसे बचाए, मकान बनवाया, मैं आपको कैसे बताऊं । जिस दिन मेरे आइएएस हो जाने की खबर आई है, उनके चेहरे को पता नहीं क्या हो गया । उनका मुस्कुराना बंद ही नहीं हो रहा था । वे हर एक से गले मिल रहे थे । घर के सामने रिक्शे से एक सवारी उतरी तो उससे गले मिलने लग गए । जवान लड़की थी - भड़क गई । रिक्शे वाले ने सोचा होगा - बुढ़ऊ का दिमाग फिरा है ।

जब मैं घर से निकल रहा था, मेरे पिता ने मुझे चेताया था : बेटा, भले ही तुम आइएएस हो, पर मेरे लिए अब भी मेरे पुत्र हो । बेटा, कुछ भी करना पर घूस न लेना । मैं पिता के वचन का आदर करता हूं । जहां तक संभव हो, उनके वचन का उल्लंघन न हो, सदा इस ताक में रहता हूं ।

पर यहां चोरों के बीच घिरा हूं । चोरों की बारात आती है जाती है, मैं क्या करूं । मजदूरों को, छोटे मोटे अफसरों को गाली गुफ्ता देकर भगा देता हूं । पर मंत्री ! उनका क्या करूं ? मैं औरों को डाँटता हूं, और ये ससुरे अंगूठाछाप मुझ जैसे जीनियस को डाँटते हैं । मजबूरी में उनकी जीहुजूरी करता हूं, बेइज्जती सहता हूं । पिछली बार मुख्यमंत्री अपने पति के साथ यहां आई थीं तो अपने पति के लिए मुझसे खैनी बनवा रही थीं ।

आपने देखी इस कस्बे की शक्ल ? यहां कौन गैर पागल रहना चाहेगा । और यह बंगला ! इस बंगले में सुनसान रातों में प्रेत बसते हैं ।

सच कहूं तो मैं हैरान हूं कि आप जैसा होनहार पढ़ा लिखा युवा इस आइएएस, फाइएएस के चक्कर में कैसे पड़ा, अपनी जिंदगी बर्बाद करने पर क्यों तुला ? आपके सामने अनंत संभावनाओं के द्वार खुले थे और आपने यह द्वार चुना ! कितने शर्म की बात होगी जब एक जीनियस जो कभी सार्त्र या मुक्तिबोध हो सकता था, एक अंगूठा छाप मंत्री के लिये खैनी बनाएगा, कल तक गोबर पाथती निरक्षर मुख्यमंत्री की चापलूसी करेगा ।

कलेक्टर अब पूरी तरह नशे में था, उसकी जुबान लड़खड़ा रही थी । हमारे सामने लजीज मुर्गमुसल्लम था । हम टूट पड़े और कलेक्टर बोलता गया :

देखिए, अभी भी समय है । फिर से सोचिए । जिंदगी को कायदे से देखिए । मुझे तो खुद ही लगता है कि झोला उठाऊं, हरिद्वार चल दूं ।

कलेक्टर ने थोड़ी सी और वोदका गले के नीचे उतारी । कमाल यह हुआ कि नशा बढ़ने की जगह घट गया । कलेक्टर अब संभल गया था । थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला :

देखिए, मैं नशे में पता नहीं कैसी बहकी बहकी बातें करने लगा । प्लीज, आप मेरी बातों को सीरियसली न लीजियेगा । शराब चीज ही ऐसी है । आदमी को बोलना कुछ चाहिए और बोलता कुछ और है । छोड़िए, उन बातों को । आइए, कुछ संगीत सुना जाय । मुझे पुराने फिल्मी गीत बहुत पसंद हैं । इन्हीं गीतों और किताबों के सहारे जिंदगी काट रहा हूं । तलत महमूद की आवाज में एक अजीब कशिश है । उनका वह गीत - मैं जिंदगी भर रोता ही रहा हूं - सुनता हूं तो कलेजे में हूक सी उठती है । कलेक्टर ने टेप रिकार्डर पर वह गीत खोजा और उस वीरानगी में वह शाम तलत महमूद के बारीक स्वर में डूब गई और हम उस दर्दीले गीत की घाटियों में थोड़ी देर के लिए समा गए ।

मैंने घड़ी देखी तो बारह बजने में सिर्फ दस मिनट बाकी थे । विदाई का समय आन पहुंचा था । मैं कुर्सी से उठ खड़ा हुआ । इस बार मैंने पांव छूना उचित न समझा । मैंने हाथ बढ़ाया जिसे कलेक्टर ने गर्मजोशी से मिलाया । हमने एक दूसरे से फिर मिलोगे कभी का वादा लिया । जाते हुए मैंने कहा :

कलेक्टर साहब, आपका जीवन मुझे आदर्श मालूम होता है । मेरी कोशिश रहेगी कि मैं आपके दिखाए रास्ते पर चलूं ।

मैं करीब करीब रुआँसा था ।

२१७

***

कलेक्टर के यहाँ से लौटने के बाद मैं सारी रात कायदे से सो न सका । मच्छरों का मैं आदी हो चुका था, बात मच्छरों की न थी, उन बातों की थी जिनके बीज कलेक्टर ने मेरे दिमाग में बो दिए थे । उन बातों से मैं दुविधा में पड़ गया था । कहीं मैं गलती तो नहीं कर रहा हूँ ? यह रास्ता मेरे लिए सही है ? मैं स्वयं को भावुक, संवेदनशील कवि टाइप आदमी समझ रहा था पर कलेक्टर की बातों से लगता था कि ऐसे आदमी के लिए तो इस रास्ते पर कहीं ठौर नहीं । पर आइएएस के पद के लिए तो लोग कुछ भी करने को तैयार हैं और मुझे मिल गया तो मैं उसे लात मार दूँ ? मैं उधेड़बुन में था । कोई ऐसा न था

जिससे मैं अपने दिल की बात कर सकता । अब जाकर मुझे समझ में आया है कि दिल की बातें आदमी अपने सिवा और किसी से नहीं कर सकता ।
इसी उधेड़बुन में रात गुज़र गई थी । सुबह हो गई थी । मुर्ग़े बाँग दे दे कर चुप हो गए थे । धूप चढ़ आई थी । बाहर सड़कों पर वाहनों के चिल्ल पों का स्वर उठान पर था । कुत्ते लड़ते झगड़ते भौं भौं कर रहे थे और दफ्तर जाने वाले लोग गालियाँ निकालते हुए स्कूटरों को किक मार कर स्टार्ट करने की कोशिशों में लगे थे । संसार जग गया था । रात ठीक से न सो पाने के कारण मेरा बदन भारी और चेहरा लटका हुआ था । मेरी माँ ने शायद भाँपा कि कहीं कुछ गड़बड़ है । मांएं अक्सर गड़बड़ सूंघ लेती हैं । उनका सारा जीवन ही गड़बड़ सूँघते बीता रहता है । माँ ने मुझे चाय के लिए बुलाया ।
पिताजी दफ्तर चले गए थे । घर में सिर्फ माँ और मैं थे । मुझे लगा माँ मुझसे अकेले में कुछ कहना चाहती है । मैं आँखें मलता हुआ उठा, जल्दी से डाबर लाल दंत मंजन से दाँत साफ किए ओर पानी से आँखों का कीचड़ निकाला तो मेरी जान में जान आई । बरामदे में मेरे सामने लौंग इलायची वाली खौलती चाय थी और अचार के संग ठेकुआ था । ठेकुए के लिए मैं तरस गया था । ठेंकुए के साथ गर्म चाय जब हलक से उतरी तो मेरे चेहरे का तनाव कम हुआ ।
मौक़ा देख कर माँ ने मेरे ब्याह की बात उठाई । माँ का मानना था कि अब जबकि मेरी ऊँची नौकरी पक्की हो चुकी है, इस बारे में जल्दी से कोई न कोई निर्णय ले लेना ही ठीक रहेगा । माँ ऐसे मामलों में पिताजी पर बहुत भरोसा नहीं करती थी । माँ को पिताजी की दुनियावी बुद्धि के बारे में गम्भीर और स्थायी संदेह था ।
इस तरह की कोई भी बात उठती तो माँ मामा की सलाह मानती थी । मैं और पिताजी सैद्धांतिक तौर पर दहेज के विरुद्ध थे । पर दिक्कत यह आन खड़ी हुई कि जितने भी तिलकहरू आते थे सब दहेज देने पर आमादा थे, मानते ही नहीं थे । इस मामले में मामा का रुख सदा व्यावहारिक रहा । दहेज को वे भी सामाजिक बुराई मानते थे । लॉयन्स क्लब में मामा मामी ने दहेज के विरोध में तमाम गोष्ठियाँ की थीं । पर दहेज के दूसरे पहलू भी थे जिन्हें नज़रअंदाज़ करना मामा अनुचित समझते थे । उनका कहना था कि हम दहेज किसी से जबरन तो ले नहीं रहे हैं । लड़की के माता-पिता अपनी खुशी से अपने आत्मिक संतोष के लिए कुछ देना चाहते हैं तो उसमें अड़ंगा लगाने का हमें क्या नैतिक अधिकार है ? कौन माता पिता अपनी संतान के लिए धन नहीं छोड़ता ? मामा मानते थे कि ऐसे सद्कर्म में बाधा डालना न सिर्फ अनुचित बल्कि अमानवीय भी है । हमें लड़की वालों की भावनाओं का आदर करना चाहिए और जो कुछ भी वे हमें प्रेमपूर्वक दें, कृतज्ञतापूर्वक उसे स्वीकार करना चाहिए । और फिर बिना कोई गलत काम किए मुफ्त में घर में चार पैसे आ रहे हैं तो हमें क्या पागल कुत्ते ने काटा है कि हम आते हुए धन का तिरस्कार करें ? और इस बात से दहेज विरोध के मूल सिद्धांत की कोई अवहेलना नहीं होती । पिता इतने दुलार से अपनी पारिवारिक सम्पत्ति का हिस्सा अपनी बेटी को देना चाहे तो उसका हाथ आप किस अधिकार से रोक सकते हैं ?

***

मित्रों, जैसे जैसे यह कथा समापन की ओर बढ़ रही है, वैसे वैसे मेरे हृदय की धड़कन तेज होती जा रही है । वह दिवस दूर नहीं जब मैं विरह की अगन में झुलसूँगा । पर यह सदा से संसार का नियम रहा । मिलन का सुख चाहते हो तो विरह की अग्नि में दहकने की तैयारी रखो । एक के बिना दूसरे की गति नहीं है - यह बात तो शास्त्रों से लेकर बॉलीवुड की फ़िल्मों तक बार बार सिद्ध हुई है । पर यह समझने समझाने से दिल का दर्द तो कम नहीं होता न ।

यह कथा कथा नहीं, मेरी संगिनी रही । साथ उठती, साथ बैठती, मेरे दिल के राज टटोलती, कभी मेरे आँसू पोंछती, कभी मेरे कांधे पर हाथ रखती, कभी मेरे संग खिलखिला कर हँसती । हाय, इस संगिनी का साथ क्या सचमुच छूट जाएगा ? पर मैंने दिल कड़ा किया है । मैंने अभी बाहर डैफ़ोडिल के नन्हें सलोने पीले फूलों पर नजर डाली । मंद मंद हवा में नाजुक सी डाल पर लटके कैसे मंद मंद झूल रहे हैं । पर कल ये कहाँ थे और कल फिर कहाँ होंगे ?

हर कथा की तरह ये प्यारे मासूम फूल सूख कर झड़ेंगे, मिट्टी में मिलेंगे । फिर बर्फ का मौसम आकर गुज़र जाएगा, और फिर जब वसंत का मौसम लौटेगा, धूप खिलेगी, इसी मिट्टी में से आहिस्ता आहिस्ता शर्माते सकुचाते फिर निकल आएँगे और फिर किसी अनजानी हवा में ऐसे ही डोलने लग जाएंगे ।

यही कहानी है कहानियों की, डैफोडिलों की, हमारी आपकी । इनका क्या रोना ?

२१९

***

पिता जी के संघी हो जाने के कारण या कि फिर पुराने सुसुप्त संस्कारों के अचानक जाग्रत हो जाने के कारण समाजवाद के प्रति पूरी लगन और सम्पूर्ण प्रतिबद्धता के बावजूद कुछ प्राचीन भारतीय मान्यताओं के प्रति मेरे हृदय में उत्सुकता का भाव अवतरित हुआ । उदाहरण के तौर पर पुरुषार्थ की अवधारणा - धर्म अर्थ काम मोक्ष वाली बात । मुझे लगा इस बात में सार है - विशेष कर अर्थ वाली बात में । मुझे लगा कि जीवन में संतुलन होना चाहिए । मैंने अभी तक अर्थ की अवहेलना की थी । यह अच्छी बात न थी, इससे जीवन में संतुलन के गड़बड़ा जाने का अंदेशा था । मैंने सोचा कि अब जबकि मैं करीब करीब आइएएस हूं, यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अर्थ पर कायदे से ध्यान दूँ । अर्थ की महत्ता के बारे में तो मेरे गुरु मार्क्स भी इतना कुछ कह गए थे ।

ले दे कर मेरे विवाह की बात तय हो गई । सारा कुछ मामा मामी के सौजन्य से हुआ । मेरे पिताजी बेचारे सीधे आदमी रहे, उन्हें दुनिया जहान से ज्यादा मतलब न रहा । और मेरी माँ - बेचारी अनपढ़ देहाती औरत । मामा मामी दुनियादार रहे, खेले खाए रहे, जग की रीत समझते रहे ।

अब मैं अपनी भावी पत्नी के बारे में आपको कैसे बताऊं ? आइएएस हूँ, लेखक तो नहीं, कवि तो नहीं । बस यह समझिए कि जैसा उसका नाम वैसी उसकी रूपराशि । वह कम बोलती पर जब बोलती तो तो जैसे किसी कोकिला का दूर से आता मधुर स्वर जीवन के उद्यान में गूँजता । जब हँसती तो लगता कि

जैसे अचानक तारे हँसने लग गए हैं । चलती तो लगता कि जैसे हनी सकल की फूलों से लदी डाल मंद मंद डोल रही है ।
यदि मैं यह कहूँ कि मुझे नताशा, रक्तिमा या हालिया किस्सा वल्लरी की याद न सताती थी तो यह झूठ होगा । मैंने झूठ बोलना कभी भी उचित न समझा । पर हर बात बताने की तो नहीं होती । अब बस यह समझ लीजिए कि जैसे जब पुरवैया बयार चलती है तो कमर की बाई उठ जाती है वैसे ही कभी कभी उनकी याद उठती थी । पर मैंने इस दर्द को संभालना और दर्द के पार जाना सीख लिया था । यहाँ यह बताना मैं आवश्यक समझता हूँ कि इन यादों के कारण भावी पत्नी के प्रति मेरे समर्पण में कमी आई हो - ऐसा समझना भूल होगी ।
मेरी भावी पत्नी के पिता बम्बई के पुलिस कमिश्नर थे । भारत की आर्थिक राजधानी की पुलिस के सर्वेसर्वा । अब इसके आगे क्या कहूँ ?
२२०
***
सार्वजनिक जीवन में, विशेष कर प्रशासन में, शुचिता और ईमानदारी - ये मेरे जीवन के गाइडिंग प्रिंसिपल्स यानी कि मार्गदर्शक सिद्धांत रहे । भ्रष्टाचार को मैंने कोढ़ की बीमारी समझा । बिना भ्रष्टाचार के सम्पूर्ण खात्मे के एक स्वस्थ समाज की नींव रखी जा सकती है - इस बात पर मुझे सदा संदेह रहा । और संयोग देखिए कि मेरे होने वाले ससुर जी जो प्रशासन में पहले से ही इतने ऊँचे ओहदे पर थे - उनके सिद्धांत भी मेरे जैसे ही थे । उनको देख कर मैंने अनुमान लगाया कि मेरी भावी पत्नी के विचार भी इसी तरह इतने ही ऊँचे होंगे ।
मार्क्सवाद का गहन और गम्भीर अध्ययन करने के कारण मेरा मानना रहा कि किसी भी समाज की गाड़ी दो पहियों पर चलती है - अर्थ और श्रम । श्रम तो मैं बचपन से करता ही आ रहा था, अर्थ पर मैंने ध्यान नहीं दिया था । यह भूल थी । समय आ गया था कि जीवन में आया यह असंतुलन ठीक किया जाय ताकि जीवन की गाड़ी ठीक से दौड़े । भावी ससुर जी के जीवन का अवलोकन करने से मेरी यह धारणा और भी सशक्त, और भी दृढ़ हुई । और फिर वह दिन आया जब गाड़ी ऐसी दौड़ी कि मैंने स्वयं अपनी उँगलियाँ दाँतों तले दबाईं ।
अर्थ और श्रम के संतुलन का सिद्धांत मार्क्सवाद और भारतीय दर्शन - दोनों की मूल अवधारणाओं से मेल खाता है । मैं तो कहता हूँ कि आप यदि गौर से और गहराई से देखें तो पाएंगे कि मार्क्सवाद और भारतीय दर्शन में अद्भुत समानता है जो सतही लोगों की आँखों से ओझल है । जो स्वयं दरिद्र हो वह दरिद्रनारायण की सेवा कैसे कर सकेगा ? इसलिए सिद्वांतप्रसूत व्यावहारिक मार्ग यह है कि पहले अपनी दरिद्रता मिटाओ, फिर समाज की दरिद्रता मिटाने पर ध्यान दो । घूस लेना पाप है । पर यदि परिश्रमपूर्वक अपना कर्तव्यनिर्वाह करते हुए पारिश्रमिक कहीं से मिले तो वह शुभ है, उसकी अवहेलना अहंकार का चिन्ह है । ऐसी शुभ घटनाओं से ही संसार की गाड़ी चलती है ।

हमारी इंगेजमेंट की रस्म और पार्टी का नजारा देख कर मेरी देहाती माँ तो बेसुध सी हो गई । उसे लगा कि जैसे किसी जादू टोने से उसे कोई इन्द्रलोक ले आया हो । मैं स्वयं हक्का बक्का था ।
बम्बई के समुद्र तट पर स्थित प्रख्यात ताज होटल का वह विशाल रिसेप्शन हॉल । छतों से झूलते भव्य झाड़फानूसों से झड़ती झिलमिल रोशनी, चमचमाते आते जाते लोग, इन्द्रलोक की परियों जैसी अपने हुस्न का जलवा बिखेरती नवयौवनाएं, प्रौढ़ाएं, सिने तारिकाएँ, अमिताभ बच्चन और रेखा, राजनेता और मंत्री । नीले परिधान में सजी कोई अनिंद्य सुंदरी हॉल के एक कोने से दूसरे कोने की ओर जाती हुई अचानक दूसरी ओर से आती रक्ताभ वस्त्रधारिणी नवयौवना से बीच में रुक कर गले मिलती, चुम्बनों का आदान प्रदान करती, कानों में कुछ कहती और फिर दोनों सुंदरियाँ समवेत स्वर में खिलखिला कर हंसतीं । हवा में कीमती फ्रेंच परफ्यूम की सुगंध तैर जाती । फिर शैम्पेन की गिलासें टकरातीं और स्त्री पुरुष मदहोश हुए डोलते ।
और सौग़ात ! पूछिए मत । ढेर के ढेर लग गए ।
मेरी भावी पत्नी देखने में जितनी सुंदर थी उतनी ही सुंदर उसकी रुचियों का विस्तार था । वह स्वनामधन्य थी - स्वप्नसुंदरी । वह अधुनातन नाइट क्लब के साल्सा नृत्य से लेकर सरस्वती पूजा के धार्मिक कार्यक्रम में समान लगन, समान सहजता से वैसे विचरती थी जैसे कि मछली जलाशय में निर्बाध, स्वतंत्र, अनायास, मुक्त तैरती है । उसकी दिनचर्या व्यस्त थी । कभी इस डिस्को में जा रही है तो कभी उस पार्टी में तो कभी उस गोष्ठी में भाग ले रही है । आधुनिकता और भारतीय सांस्कृतिक विरासत - दोनों में उसकी अटूट निष्ठा रही ।
उसके जीवन का मूल उद्‌देश्य रहा : दरिद्रनारायण की सेवा ।
२२१
***
मित्रों आप मेरे संग वहाँ चलिए जहां से इस कथा की शुरुआत हुई थी । मेरी बात मानिए संसार की हर बात वहीं जाकर समाप्त होती है जहां से वह आरम्भ हुई होती है । यह प्रकृति का अकाट्य नियम है भले ही हमारी सस्ती और सतही आँखें इस शाश्वत चक्र का खेल देखने में समर्थ हों न हों ।
श्रम और अर्थ । इन्हीं दो पहियों पर दुनिया की गाड़ी चलती आई है । श्रम तो मैं जीवन भर करता रहा, कभी कोताही न की पर मैंने अपने जुनून में या फिर समुचित अवसर के अभाव में अर्थ की मूर्खतापूर्ण उपेक्षा की । पर अब वह समय आन पहुँचा था जब मेरा कर्तव्य था कि मैं यह असंतुलन संतुलन में बदलूँ, जीवन का रथ सम्यक् तरीके से दौड़ाऊं । और आपको क्या बताऊँ मित्रों जब मेरा रथ दौड़ा है तो किस शान से दौड़ा है ।
श्रम और अर्थ के संतुलन का सिद्धांत भारतीय दर्शन और मार्क्सवादी जनवाद - दोनों का मूल मंत्र है । जो स्वयं दरिद्र होगा वह किस भाँति जगत की दरिद्रता दूर करेगा ? समाज के काम कैसे आएगा ? तो भइए, पहले अपनी दरिद्रता दूर करो, फिर संसार की दरिद्रता मिटा पाओगे ।

प्रशासन में संपूर्ण शुचिता के प्रति मैं सदा समर्पित रहा, कभी मैंने ईमानदारी के मामले में समझौता नहीं किया । मैं कर ही नहीं सकता था । यह बात ही मेरे स्वभाव के विपरीत थी । भ्रष्टाचार को मैंने सदा पाप समझा, कोढ़ का रोग माना । पर यदि अथक परिश्रम के मार्ग पर चलते हुए अशर्फ़ियाँ दिखें तो उन्हें न उठाना, सम्मानपूर्वक उठा कर जेब में न रखना - मेरे देखे अहंकारजनित घृणित धृष्टता है । यदि परिश्रमपूर्वक किए हुए कार्य का पारिश्रमिक मिले तो उसका स्वागत होना चाहिए, वह शुभ घटना है । ऐसी घटनाओं से ही जीवन का यह चक्र चलता है ।

मुझे पता है पाठकगण संकोची हैं, लिहाज के मारे हैं, मुझसे कभी न पूछेंगे कि इस नये नवेले आईएएस को बम्बई के पुलिस कमिश्नर साहब ने कितना दहेज देना उचित समझा । पर मैं यह कैसे मान लूँ कि ऐसे सवाल आपके हृदय में न उठे होंगे । यह तो स्वाभाविक जिज्ञासा की बात है । पर यह भी तो सोचिए कि सभ्य समाज में ऐसे प्रश्न पूछना या उनका उत्तर देना क्या कोई कायदे की बात है ? पढ़े लिखे आदमी के लिए ऐसे सवाल उठाना या जवाब देना क्या शोभनीय बात है ? इस संसार में बहुतेरी चीजें ऐसी हैं जिन पर से पर्दा न उठे तो बेहतर । बहुत सारी बातें हमें अनुमान से मन ही मन समझ लेनी चाहिएं, उन्हें ज़ुबान पर लाना फूहड़पन है और न पढ़े लिखे होने का लक्षण है ।

२२२

***

मैंने फिर से इस बात पर विचार किया तो मुझे प्रतीत हुआ कि दहेज वाली बात में मुझे इस तरह का छुपा छिपी खेल खेलना उचित नहीं है । बाप अपनी बेटी को दहेज नहीं देगा तो किसे देगा ? इसमें छुपाने की क्या बात है ? बाप की जायदाद पर क्या बेटी का हक नहीं है ? स्त्री स्वातंत्र्य और लैंगिक समानता के इस युग में बेटे और बेटी में भेद करना पाप है । सारी जायदाद बेटों को मिले और बेटी को दहेज तक न मिले - यह अन्याय है । बिना सोचे समझे लोगों ने फालतू में दहेज को लज्जाजनक कर्म बना दिया है । मेरे देखे ऐसा इस विषय पर ठीक से विचार न करने के कारण हुआ है ।

दहेज के मिलने से और मेरे उस शहर का मालिक बन जाने से मेरा जीवन कैसे खौलते दूध के उफान की तरह उबला - इसका वर्णन मैं करूँ तो कैसे करूँ । संक्षेप में बस यह समझ लीजिए कि राजस्थान के उस उखड़े हुए कस्बाई शहर का मैं सर्वेसर्वा था । मैं कहता तो हवा चलती, मैं डाँटता तो ट्रैफिक रुकती । मेरी एक आवाज जनता के लिए अल्लाह के हुक्म से कम न थी । आसमान में अल्लाह और जमीन पर कलक्टर ।

लोगों ने मुझे सर माथे चढ़ाया, युवा स्त्रियों ने मंगलगीत गाए, वृद्धा स्त्रियों ने बलैयाँ लीं । कस्बे के पुराने रईस मुझसे एक बार देखादेखी करने के लिए बेताब रहे । शहर के एक पुराने संभ्रांत रईस जिनकी अंग्रेज़ों के जमाने में लाटों और उनकी बीवियों से दोस्ती रही थी, जो उनके संग शहर के इकलौते क्लब में बिलियर्ड खेलते रहे और अब जिनके ड्राइंग रूम की आलमारियां जेम्स हेडली चेज के अंग्रेज़ी उपन्यासों से सजी थीं और जो किसी भी मौसम में बिना बोलर हैट सिर पर लगाए और हाथ में हाथी दांत के मूंठ वाली महंगी छड़ी लिए घर के बाहर न निकलते थे, शहर के गँवार लोगों से बात करना अपनी तौहीन

समझते थे और सिर्फ ऊँचे अफसरों से सोहबत रखते थे, वे एक दिन सुबह सुबह आए, गर्मजोशी से हाथ मिलाया । हमने फ्रांसीसी क्रांति के बारे में विचारों का आदान प्रदान किया । मुझे यह जानकर आश्चर्यमिश्रित हैरानी हुई कि इस उखड़े हुए बेतरतीब धूल से अँटे शहर में ऐसे बौद्धिक लोग भी हैं ।
लोग मुझे मनुहार कर कर के संगीत समारोहों का उद्घाटन करने के लिए बुलाते । मुझसे राग भूप और भोपाली के आपसी संबंध और बारीक भेद पर विचार रखने के लिए जिद करते । पर मैं उनसे कैसे कहता कि मैंने पहले कभी न राग भूप का नाम सुना था न भोपाली का ? ऐसा कहना फूहड़ता होती, असंवेदनशीलता होती, उनका दिल तोड़ना होता । पर ज ला ने विश्वविद्यालय में शिक्षित होने के कारण मेरी तत्काल बुद्धि प्रखर थी, मैं गम्भीरतापूर्वक शास्त्रीय संगीत की महानता के गुण गा देता और लोग तालियाँ बजा बजा कर बेहाल हो जाते ।
२२३
***
मेरे अंदर एक बुरी आदत है । बातों बातों में मैं बहकने लगता हूँ और बहकने की बयार कई दफा कीमती बातों को उड़ा कर दरकिनार कर देती है । मुझे लगता है ये बदहवास बेचैन दिमाग के लक्षण हैं । अब देखिए न, मैंने शास्त्रीय संगीत की बात छेड़ दी और उस कस्बे के एकमात्र रईस सज्जन से आपकी मुलाकात न करवाई । इतनी हड़बड़ी किस काम की !

रायबहादुर मोहन राय भल्ला की उस कस्बे में बड़ी इज्जत थी । उन्हें देख कर लगता नहीं था कि वे इस कस्बे के वासी होंगे । पर वे थे, एक जमाने से थे । वे जब भी घर से बाहर निकलते चाहे कोई भी मौसम हो उनके सिर पर भूरे रंग का बोलर हैट जरूर रहता था । भल्ला साहब की उम्र कोई पचास पचपन की रही होगी । उम्र के बावजूद उनकी कमर तनी हुई थी । सिर के बाल बीच में झड़ गए थे पर हैट से ढँके रहते थे । गर्दन और सिर के बीच के अधसफेद बाल सदा करीने से कटे रहते । उनकी मूँछें पतली और कतरी हुई नुकीली थीं - कुछ कुछ पुराने जमाने के हीरो रहमान या इफ्तिखार की मूँछों की याद दिलाती हुई । डील डौल उनका सामान्य ही था पर तोंद नहीं थी, चेहरा गम्भीर और तना हुआ रहता था । गोरा, शानदार और संभ्रांत । दूर से देखो तो समझ जाओ कि यह शख्स कोई मामूली आदमी नहीं है । कमीज वे बराबर चमकते सफेद रंग की पहनते जिसमें सोने के रंग के कफलिंक लगे थे । उनकी पतलून सदा खाकी रंग की रही । उन्हें गैर खाकी रंग की पतलून पहने किसी ने न देखा था । उनके जूते सदा भूरे रहते और अभी अभी हुई चेरी ब्लॉसम की पॉलिश से चमचम चमकते । वे चलते हुए हल्का सा हचकते थे, इसीलिए अपने संग छड़ी सदा रखते थे - वही हाथी दाँत की मूठ वाली छड़ी । एक बार हिचकिचाते हुए मैंने उस छड़ी की बाबत पूछा । भल्ला साहब की आँखें जैसे किसी पुरानी याद में खो गईं । वे धीमे से बोले - यूरोप से लौटने के समय पापा रोम से लाए थे । यह पापा की आखिरी याद है । भल्ला साहब सख्तजान थे, सस्ती भावुकता को बहुत बुरी बात मानते थे पर उस दिन मैंने ग़ौर से देखा तो लगा उनकी बाईं आँख में हल्का सा गीलापन है ।

उस दिन कमिश्नर साहब शहर में दौरे पर आए तो भल्ला साहब ने अपने नौकर से मेरे घर में एक पुर्जी भेजी और कमिश्नर साहब, मुझे और हमारी पत्नियों को अपने घर डिनर का न्योता दिया ।
२२४

***

मैं नया नया आईएएस बना था, नियम कानून, अफसरान खास कर वरिष्ठ अफसरान से व्यवहार के सलीकों की बारीक बातों पर मेरी पकड़ उतनी मजबूत नहीं थी । हालांकि मातहतों से निपटने में बहुत अभ्यास की आवश्यकता नहीं थी । छोटे मोटे अफसरों और पुलिस वालों को मैं बेझिझक रपेट देता । एक बार एक बुजुर्ग क्लर्क को रपेटा तो मुझे मेरे पिताजी के क्लर्क होने की बात याद आई और हल्की सी ग्लानि का भाव मेरे दिल में उठा जिसे मैंने अपने मनोबल से झटक कर हटाया । ठीक है, मेरे पिता क्लर्क थे पर इसमें मेरा कोई दोष नहीं । मुझे अपने पद और समय का ध्यान रखना चाहिए, ऊँचे अफसर का स्टेटस संभालना चाहिए ।
पर कमिश्नर साहब से भल्ला साहब के यहां डिनर की दावत की बात उठाने में मैं झिझकता था । सच कहूँ तो हालाँकि रायबहादुर भल्ला कोई अफसर तो नहीं थे पर पता नहीं क्यों अपने रख-रखाव और बोलने के तरीके से अफसर वर्ग के करीब के ही लगते थे । वैसे देखा जाय तो मेरी इस बात में कोई विशेष तर्क नहीं है पर पता नहीं क्यों मेरे मन में उनके लिए सम्मान का हल्का सा भाव उग आया था । मैं दूसरे गैर आईएएस लोगों की तरह उन्हें झिड़कने में हिचकिचा रहा था ।
कमिश्नर साहब बिहार के दलित समुदाय से आते थे । मेरी तरह वे भी मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी थे । साथ में दलितवादी भी थे । सोते जागते उन्हें इस बात का आभास रहता था कि वे दलित हैं और उनका वर्ग शोषण का शिकार रहा है जिसे वे किसी भी सूरत में सहन करने को तैयार नहीं हैं । इस कारण उनका व्यवहार औरों से विशेष कर ऊँची जाति के लोगों से विशेष कर रूखा रहता था । रूपवती ब्राहमण स्त्री से विवाह कर उन्होंने यह जातिगत कड़वाहट कम करने की चेष्टा की थी जो पूरी तरह सफल नहीं हो पाई थी । पर कमिश्नर साहब का ऊँची जातियों के प्रति यह व्यवहार अपने से ऊँचे पदों पर स्थित अफ़सरों या मंत्रियों पर लागू न था । वे उनसे अतिरिक्त नम्रता और मधुरता से पेश आते थे ।
कमिश्नर साहब की उम्र कोई चालीस पैंतालीस की रही होगी । वे मोटे थुलथुल बदन के स्वामी थे । आँखों पर मोटी ऐनक लगी थी जो अक्सर नाक पर सरकती और वे उसे उठा उठा कर ठीक करते जाते । उनके बाल घुंघराले काले थे और चेहरा ठीक से शेव करने के कारण चिकना । बदन की तरह उनका चेहरा भी फूला हुआ था जिसमें से जो दो छोटी छोटी गोल आँखें सामने वाले को अक्सर हिक़ारत की नजर से देखती थीं । मेम साहब अपने पति से बिल्कुल जुदा थीं । भकभक गोरा रंग, दुबली पतली, हँसमुख चेहरा । मेरा अपना मानना है कि कम स्त्रियों को ही साड़ी कायदे से बांधना आता है । मैडम उन कम स्त्रियों में थीं । क्रीम रंग की सिल्क की साड़ी पर मैचिंग लाल रंग के ब्लाउज में मैडम का रूप निखर आया था । इस फूहड़ कस्बे में कुछ यूँ कि जैसे किसी उजड़े हुए बाग में ताजा लाल गुलाब का फूल खिल आया हो । उन्होंने मेरी पत्नी स्वप्नसुंदरी से तुरंत पहली मुलाकात में ही दोस्ती कर ली ।

मेरी पत्नी भी जो घर में बैठी बैटी बोर होती रहती थी, उनसे मिल कर चहक गई । हम साथ बैठ कर बरामदे में चाय पी रहे थे जब मैंने डरते डरते कमिश्नर साहब की ओर सहमी नज़रों से देखते हुए रायबहादुर भल्ला के यहाँ दावत वाली बात उठाई ।
मेरी बात सुनते ही कमिश्नर साहब का चेहरा जो पहले से ही बहुत मित्रतापूर्ण न था, और भी अतिरिक्त कड़वाहट से कसैला सा हो गया । पर वे स्त्रियों के सामने बहुत बोल न सके । बस इतना कहा कि देखो तुम बड़े आईएएस अफसर हो, हर किसी से तुम्हारा यूँ मिलना अच्छी बात नहीं । नौकरी के कारण तुम इस गंदे से कस्बे में हो, अपनी ड्यूटी निभाओ पर फालतू लोगों से सामाजिक संबंध बनाने के खतरों से सावधान रहो । देखते हो, यहाँ के लोग कितने टुक्कड़खोर हैं, उनका स्तर कितना गिरा हुआ है, कब पता नहीं कौन तुम्हें किस चक्कर में फँसाए, कोई अफवाह फैलाए । बड़े लोगों का छोटे लोगों के मुँह लगना समझदारी की बात नहीं । तुम शायद विश्वास न करो, इस मामले में मैडम तो मुझसे भी अधिक सख्त हैं । अपने स्टेटस से नीचे के लोगों को भूल कर मुँह नहीं लगातीं । एक बार जरा सा हंस कर बात क्या कर ली, पूरे शहर में कमिश्नर के घर का आदमी होने की अफवाह फैल गई । और फिर तुम्हें शायद नहीं पता, आज मुख्यमंत्री भी शाम को दो तीन घंटों के लिए यहाँ आने वाले हैं ।
२२५
***
मित्रों, मैं माननीय मुख्यमंत्री जी की जात का जिक्र नहीं करना चाहता । मैं पहले ही कमिश्नर साहब की जात की बात करने की गलती कर चुका हूँ । दुबारा वही गलती करूँ, इतना बेवकूफ भी नहीं हूँ । देखिए, पहले तो जात की बात ही फूहड़ है और अक्सर मेरे प्रगतिशील विचारों से मेल नहीं खाती । दूसरे मैं नहीं चाहता कि पाठकों में जातीय विद्वेष फैल जाय और जो मुट्ठी भर लोग कभी कभार मेरी यह कहानी पढ़ते होंगे वे भी चिढ़ के मारे मुझे पढ़ना छोड़ दें । मैं ऐसा गधा नहीं कि अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी खुद ही मार लूँ ।

आप शायद विश्वास न करें, उस कस्बे में एक छोटा सा हवाई अड्डा था जहां शाम को चार बजे मुख्यमंत्री महोदय का विमान उतरने वाला था । उस हवाई अड्डे पर महीने दो महीने में एकाध बार हवाई जहाज उतरता था । यूँ तो हवाई अड्डे पर अक्सर बकरियाँ घास चरती रहती थीं और शौकीन लड़के कभी सुबह कभी शाम दौड़ लगाते थे पर जब हवाई जहाज के उतरने की योजना होती तो पुलिस के तीन चार सिपाही लगा दिए जाते । वे बाड़ को दुरुस्त करते, बकरियों को भगाते और लड़कों को डाँटते । मैदान के बाहर सड़क के पास एक छोटी सी बिल्डिंग थी जिसमें बैठ कर सिपाही बीड़ी फूँकते, बगल में ही लिट्टी चोखा बनाते और रेडियो पर कभी विविध भारती और कभी रेडियो सिलोन के गीत सुनते । उनकी ड्यूटी रात को भी लगती । वे वहीं बाहर घास पर दरी बिछा कर रात को लेट जाते । जहाज के आने के दो दिन पहले से ही तीन रंगों वाला एक गुब्बारा सा एक खम्भे से लटका कर हवा में लहरा दिया जाता । यह गुब्बारा शायद कपड़े से बना होता था । वह हवाओं के संग आएँ बाएँ लहराता और सारे कस्बे को

पता चल जाता कि हो न हो कोई हवाई जहाज उतरने वाला है । यह हवाई अड्डा उस कस्बे की शान था । दूसरे कस्बों से कोई नाते रिश्तेदार आते तो लोग उन्हें हवाई अड्डा दिखाने ले जाते । तब उनके चेहरों की चमक देखने लायक होती, उनके सीने गर्व से फूले होते ।

२२६

***

कस्बे में यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई थी कि आज मुख्यमंत्री का हवाई जहाज उतरने वाला है हालाँकि समय के बारे में लोगों को ठीक से पता नहीं था । वैसे भी पहले का अनुभव था कि जहाज के उतरने का कोई पक्का समय नहीं होता था । बस इतना पता होता था कि आज सुबह या शाम उतरेगा । सुबह उतरने वाला जहाज कभी अचानक नौ बजे ही उतर जाता और कभी अपरान्ह दो बजे तक इन्तजार करना होता । बहुत से इस्कुलिया लड़के इस डर के मारे कि कहीं वे जहाज के उतरने के दृश्य से वंचित न रह जायँ, अक्सर उस दिन स्कूल नहीं जाते थे, शिक्षक लोग भी इसका बुरा नहीं मानते थे । यह एक तरह से कस्बे के सामूहिक उत्सव का दिन होता था । कस्बे में उत्सव के लिए बस एक सिनेमा हॉल था, कभी कभी कोई नौटंकी लगती थी और कभी कोई जहाज उतरता था । कभी कभी बीच में जुलूस निकलते - बिजली कर्मचारियों के, या छात्रों के जिनमें - जो हमसे टकराएगा, चूर चूर हो जाएगा, और इंक़लाब जिन्दाबाद के नारे लगते और कस्बे की रौनक बढ़ती । बस यह समझिए कि इन्हीं उत्सवों में कस्बे की संस्कृति का दिल धड़कता था ।

हवाई जहाज जब उतरता तो उसके उतरने से जुड़ी बातों पर लोग कई दिनों तक चाय पर चर्चा करते थे । जैसे कि हवाई अड्डा तो है पर छोटा है, इसलिए यहाँ एक दो सीट वाला जहाज ही उतरेगा या कि फिर पाइलट बड़ा स्मार्ट था, एकदम लड़का जैसा दिखता था । या कि फिर इस जहाज में पेट्रोल कैसे भरेगा ? और कहीं यदि वीआईपी को रात भर कस्बे में रुकना पड़ा तो यह जहाज वापस चला जाएगा और दूसरा अगले दिन आएगा ? यहाँ रात में जहाज के ठहरने में क्या दिक्कत है ? इसी करह की तमाम बातें कस्बे में चर्चा का विषय रहतीं - घरों में, स्कूलों में, चायपान की दुकानों पर ।

कोई तीन बजे के आसपास दूर बहुत दूर आसमान में गड़गड़ाहट की आवाज उभरी । उस दिन आकाश में एक भी बादल न था । अग़ल बगल के मुहल्लों के लड़के लड़कियाँ हवाई अड्डे की ओर भागे । कोई नहीं चाहता था कि हवाई जहाज के उतरने का दृश्य मिस हो जाय और पछतावा हो । पुलिस की और सरकारी राजनीतिक दल के कार्यकर्ताओं से लदी गाड़ियाँ हों हों करती हुई हवाई अड्डे की ओर भागीं । इतनी गाड़ियों और इतने आदमियों के एक साथ इतनी तेज़ी से भागने के कारण हवाई अड्डे के चारों और धूल का बगूला उठा ।

२२७

***

गाड़ियों का लम्बा काफिला था । सबसे आगे पुलिस की खुली जीप थी जिसमें चार सिपाही राइफलें ताने बैठे थे - दो आगे और दो पीछे । उसके ठीक पीछे हमारी गाड़ी थी जिसे पुलिस इंस्पेक्टर छन्नू चौरसिया

ड्राइव कर रहा था । आगे की सीट पर छन्नू के बगल में कमिश्नर साहब हाथों में गुलदस्ता थामे बैठे थे । उनके माथे पर पसीने की नन्हीं नन्हीं बुंदियां चमक रही थीं । उन्हें पता था मुख्यमंत्री कड़क मिजाज के आदमी थे, बात बात में उखड़ जाते थे । उसके ऊपर सुबह सुबह ही कमिश्नर साहब का अपनी पत्नी से साले की नौकरी के मसले को लेकर बहुत अप्रिय विवाद हो गया था । घर छोड़ने के समय उनका मूड ऑफ था । बेचारे ठीक से नाश्ता भी न कर पाए थे, लंच का तो सवाल ही नहीं था । एक सिपाही को भेज कर बाजार से कुछ केले मँगवाए थे जो हमने मिल बाँट कर खाए थे । कमिश्नर साहब ने मेहनत करके अपने चेहरे की तनी हुई मांसपेशियाँ ढीली करने की कोशिश की और बार बार मुस्कुराने की प्रैक्टिस की । मुझे पता है क्योंकि मैं एस पी साहब के साथ पीछे वाली सीट पर बैठा था और कमिश्नर साहब की शक्ल सामने की सीट के आगे लगे आइने में देख रहा था ।
मेरी मानसिक स्थिति कमिश्नर साहब से भिन्न थी । मैं नया रंगरूट था । यह मेरी पहली पोस्टिंग थी । एक राज्यमंत्री से मैं पहले मिला था पर मुख्यमंत्री स्तर के व्यक्ति को सिर्फ टेलिविजन पर देखा था । मैं उत्सुक था उस मेडिकल छात्र की तरह जो क्लास छोड़ कर बॉबी फिल्म देखने के लिए उत्सुक रहा होगा । मेरे लिए यह नया अनुभव था । पर झूठ नहीं बोलूँगा, कमिश्नर साहब की भाव भंगिमा देखकर मैं हल्का सा घबराया हुआ था । मैं नहीं चाहता था कि मेरे मुँह से ऐसी कोई बात निकले जिससे फजीहत हो । अचानक हवा का तेज धूल भरा झोंका आया और मेरी आँखें मिचियां गईं । मैंने रूमाल से चेहरे पर पड़ी धूल साफ की और उँगलियों से बाल सँवारे । मेरे बगल में एस पी साहब बैठे थे । मुझसे कहीं उम्रदराज जो बात बात में मुझे सर कह कर पुकारते और मैं शर्मिंदा होता । एस पी साहब के हाथों में चिप्स का एक पैकेट था जिसमें से चिप्स निकाल कर उन्होंने सबको - यहाँ तक कि ड्राइवर को - बाँटा तब जा कर गाड़ी के अंदर फैला तनाव कुछ कम हुआ । हम अब हवाई अड्डे के पास थे ।
२२८

***

हवाई अड्डे की तरफ जाती सड़क के दोनों ओर बाँस की बल्लियाँ लगा दी गई थीं ताकि जनता धक्का धुक्की करती हुई सड़क पर आ कर रास्ता न रोक दे और भगदड़ शुरु हो जाय । जगह जगह पुलिस के सिपाही तैनात थे जो समझा बुझा कर, डाँट डपट कर और कभी लाठियाँ लहरा कर स्थिति नियंत्रित किए हुए थे । बात यह है कि जनता जब उत्साहित हो जाती है तो नियम कानून, जान माल का खतरा जैसी चीजों को ताक पर रख देती है । भीड़ में हर तरह के लोग थे । कुछ हवाई जहाज देखने आए थे और कुछ मुख्यमंत्री । बुजुर्ग भी थे पर उतने नहीं जितने युवा और इस्कुलिया लड़के । सत्ताधारी पार्टी के कार्यकर्ता बड़ी संख्या में थे । इनमें युवा और प्रौढ़ स्त्रियों की संख्या अधिक थी । वे रंग बिरंगे परिधानों में सजी सत्ताधारी दल के झंडे लहरा रही थीं । बहुतों के हाथों में फूलों की मालाएँ थीं । गुलदाउदी, गुलाब और गेंदें के फूलों की मालाएँ । सारा वातावरण उत्सवमय था ।
कमिश्नर साहब का साला कोई पचीस तीस बरस की उम्र का था । अपनी बहन का दुलारा था । पर पढ़ने लिखने में उसका कभी दिल न लगा । अपने शहर के शोहदे दोस्तों के साथ सड़कों पर डोलता । सुनने में

आया कि एकाध बार शराब के नशे में एक रेस्तराँ में बवाल करने के कारण गिरफ्तार होते होते बचा था । कमिश्नर साहब ने किसी तरह जोर लगा कर मामला सलटाया । एक तो पढ़ने में दिल न लगे, उस पर से जाति का ब्राह्मण, सरकारी नौकरी मिलने का तो सवाल ही नहीं उठता था । कमिश्नर साहब के सास ससुर अपने इकलौते लड़के के भविष्य को लेकर चिंतित रहते थे । कौन न होता ? और बूढ़े होते जाते माता पिता की चिंताएँ कमिश्नर साहब की मेम साहब का दिल दुखाती थीं । वे वक्त बेवक्त अपने पति पर साले के लिए कुछ करने के लिए दबाव डालतीं । पर बेचारे कमिश्नर साहब कमिश्नर ही तो थे, भगवान न थे, यह बात मेम साहब को समझ में नहीं आती । बार बार ताना देतीं - आप दुनिया जहान का काम कर सकते हैं, मेरे एक भाई के लिए आपसे कुछ भी नहीं होता ! कभी कभी गुस्से में आतीं तो कमिश्नर साहब पर जातीय विद्वेष का आरोप लगा देतीं । आपको तो पता ही है कि कमिश्नर साहब दलित थे और मेम साहब ब्राह्मण । कमिश्नर साहब यह आरोप सुन कर तिलमिला उठते और बाद में अपने सरकारी काम में ब्राह्मणों से बदला लेकर दिल की आग बुझाते । पर बेचारे घर में तो बेचारे ही थे । अंत में बेचारे ने साले के लिए बिजली विभाग के खम्भे लगाने का ठीका साले को दिलवाने का इंतज़ाम किया, अपनी पोजीशन कॉम्प्रोमाइज की, बिजली विभाग के चीफ इंजीनियर से मिन्नत की । पर हद तो तब हुई कि दस बजे कागज पत्तर लेकर दफ्तर पहुँचने का एप्पवाइंटमेंट साले साहब चूक गए । देर रात तक पार्टी में थे, जब तक सुबह नींद खुली, एप्वाइंटमेंट का समय निकल चुका था । इसी बात पर कमिश्नर साहब बहुत नाराज़ थे । और मेम साहब पति की नाराज़गी से नाराज़ थीं । उनका कहना भी वाजिब था - नौजवान लड़का है, भूल गया । इतनी सी बात के लिए उसका भविष्य चौपट करना तो अन्याय है । इसी झंझट में कमिश्नर साहब का मूड सुबह सुबह ऑफ़ था । बहुत कोशिश करने पर भी उनके दिमाग से सुबह का झगड़ा निकल नहीं रहा था ।

हमारी गाड़ी आराम से मध्यम गति से सड़क पर चल रही थी कि अचानक सामने वाली पुलिस की गाड़ी के ड्राइवर ने हचाक से ब्रेक लगाया और उसकी गाड़ी चींचीं की कर्कश ध्वनि निकालती हुई रुक गई । हमारी गाड़ी को रुकने का समय न मिला और ब्रेक लगाते लगाते भी पुलिस की गाड़ी से बस जरा सी हल्की सी भिड़ी । अचानक एक दस बारह साल का लड़का एक सफेद पिल्ले के संग बल्लियों के अंदर से निकल कर भागता हुआ सड़क पर आ गया था । ड्राइवर ने सूझबूझ से काम लेते हुए धड़ाम से ब्रेक न लगाया होता तो बड़ा हादसा हो सकता था । इस चक्कर में कमिश्नर साहब के हाथों मे सहेज कर रखा गुलदस्ता जमीन पर गिर कर बर्बाद होते होते बचा । उन्होंने गुलदस्ते को फिर से संभाला और आइने में अपना चेहरा देखा और एक बार फिर मुस्कुराने की प्रैक्टिस करते हुए गाड़ी से उतरे । मैंने भी अपने बाल फिर से सँवारे और हम सब गाड़ी से नीचे उतर गए ।

ऊपर आसमान में हवाई जहाज मँडरा रहा था । उसके पहिए निकल आए थे और नीचे जनता जहाज को भौंचक्का देखती हुई उसके नीचे उतरने का बेसब्री से इंतजार कर रही थी ।

२२९

***

माननीय मुख्यमंत्री महोदय का, संक्षेप में ही सही, जीवन विवरण न देना मेरी भूल रही । ऐसा हड़बड़ाहट के कारण हुआ होगा । पर ऐसी हड़बड़ाहट शोभा नहीं देती ।

मुख्यमंत्री जी के पिता जी नट थे, बहुरूपिया थे । आपमें से जो मेरी तरह गवंई गँवार हैं, उन्हें शायद ध्यान हो कि कोई त्योहार ऐसा होता था, शायद दीपावली का त्योहार, जब बहुरूपिए गाँवों में तरह तरह की शक्लें बना कर जाते और बच्चों को डराते । मुझे तो हल्की सी स्मृति है, अब पता नहीं, गाँव देहात में वह परम्परा अब भी जीवित है या नहीं । कुछ वैसा ही जैसा आजकल सभ्य लोग हैलोवीन के शुभ उत्सव में करते हैं ।

माता जी गृहसेविका थीं । दूसरों के घरों में झाड़ू पोंछा करना, बरतन वगैरह माँजना । ऐसे करके ही पति पत्नी ने अपना और अपने आठ बच्चों का पेट पाला । दो तो शैशवावस्था में ही ईश्वर को प्यारे हुए, जो छ बचे, उन्हीं में से एक कालांतर में इस प्रदेश के मुख्यमंत्री बने ।

मुख्यमंत्री जी की शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई जहां से उन्होंने इंटर पास किया और फिर तभी से सत्ताधारी दल के छात्र संगठन से उनका नाता बना । कुछ दिनों तक बस में कंडक्टर का काम भी किया । मुख्यमंत्री जी अपनी जड़ों को न भूले । मुख्यमंत्री बनते ही अपने गाँव में एक कुआं खुदवाया और एक अंग्रेजी माध्यम का प्राइमरी स्कूल खुलवाया । उन्होंने खुलेआम इस बात को कहा कि वे नहीं चाहते थे कि उनकी तरह गाँव के बच्चे अंग्रेजी में पिछड़ जायं । स्कूल का प्यारा सा नाम रखा गया - सेंट कोलम्बस स्कूल ।

मुख्यमंत्री जी ने प्रेम विवाह कर लिया था जिससे उनके माता पिता पहले बहुत नाराज और बाद में बहुत खुश हुए ।

उनकी पत्नी भी राजनीति में रुचि रखती थीं और राजनीति के क्षेत्र में ही दोनों की भेंट हुई थी और प्रेम वल्लरी फली फूली थी । वे धनाढ्य परिवार से आती थीं । इस बात से मुख्यमंत्री जी को युवावस्था में सहारा मिला । उनकी पत्नी कुशाग्रबुद्धि थीं, बहुत आगे तक सोचती थीं । उन्हें प्रतीत हुआ कि पति पत्नी दोनों का राजनीति में होना दाम्पत्य जीवन की दृष्टि से उचित न होगा । बाद में महत्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा के रास्ते से धीरे से कलह नामक देवी ईर्ष्या का रूप धारण कर प्रवेश कर सकती है, शांति भंग कर सकती है । इसीलिए उन्होंने अपनी डगर बदली और वे स्त्रीवादी बुद्धिजीवी बनने के रास्ते पर चल दीं । उन्होंने देखा कि नारीवाद का बिरवा नया नया भारत में बोया जा रहा है, इसमें आगे बढ़ने की, प्रगति करने की अपार संभावनाएं हैं । फिर बाद में उन्होंने दुखियारी महिला जगत नाम से एक स्वयंसेवी संस्थान खोला और अपना जीवन इस पुनीत कार्य में लगा दिया । इसी काम के कारण उन्हें संसार के तमाम देशों का दौरा करना पड़ा । कभी न्यूयॉर्क में गोष्ठी तो कभी दिलवारा में दुखियारी नारी सम्मेलन, कभी अमेरिकी दूतावास में डिनर तो कभी अशोका होटल में विचार मंथन ।

पति पत्नी - दोनों ही मनोयोग से पर अपने अपने तरीके से समाजसेवा में लगे, जनता का दुख दर्द कम करने के भगीरथ प्रयासों को ही जीवन का लक्ष्य बनाया । यही संस्कार अपनी संततियों को भी दिए ।

बाकी परिवार में से भी बहुत लोग उन्हीं के जरिए सेवा कार्य में लगे । जीवन बहुत सार्थक और समृद्ध होता चला गया ।

२३०

***

मुख्यमंत्री जी का स्वागत समारोह पटेल महाविद्यालय के प्रांगण में होना था । पटेल महाविद्यालय हवाई अड्डे से कोई दो तीन किलोमीटर दूर रहा होगा । बित्ते बराबर तो कस्बा था । कोई भी चीज या जगह किसी दूसरी चीज या जगह से बहुत दूर न थी । दस मिनट में ही गाड़ियों का कारवाँ सभास्थल पर पहुँच गया । सामने ही बड़ा सा मंच था । मंच के पीछे बड़ा सा बैनर लगा था जिस पर "पूजनीय मुख्यमंत्री जी का हार्दिक स्वागत" लाल रंग में हिन्दी में और उसके नीचे "Heartiest welcome to our revered chief minister" पीले रंग में अंग्रेजी में लिखा था । मंच के दोनों छोरों पर सत्ताधारी दल के विशाल ध्वज हवा में लहरा रहे थे । मंच पर बीचोंबीच लाल मखमल के रंग की एक बड़ी और ऊँची कुर्सी रखी थी जिस पर सम्भवत: मुख्यमंत्री जी को आसन ग्रहण करना था । उस कुर्सी के दोनों तरफ कोई दर्जन भर प्लास्टिक की कुर्सियाँ अन्य सम्भ्रांत अतिथियों के लिए लगाई गई थीं ।
मुख्यमंत्री जी की कुर्सी के आगे सफेद टेबुल क्लॉथ सें ढंकी एक चौकोर मेज थी जिस पर बिसलेरी और कोका कोला की बोतलें तरतीब से सजा कर रखी हुई थीं ।
मंच चारों ओर से फूल मालाओं से सजाया गया था । सबसे अधिक पीले गेंदे के फूल थे, बीच बीच में गुलाब, गुलदाउदी, सूरजमुखी, अड़हुल भी अपनी छटा बिखेर रहे थे ।
मंच पर आगे बाएँ कोने में एक पोडियम बना था जहां से मुख्यमंत्री जी का उद्‌बबोधन होना था । मंच के सामने बाँस की बल्लियों पर बड़ा सा शामियाना बनाया गया था जिसमें सामने गणमान्य लोग कुर्सियों पर और पीछे सामान्य लोग दरियों पर बैठे थे । इस्कुलिया लड़के और लौंडे लपाड़ी शामियाने के बाहर खड़े थे ।
मुख्यमंत्री जी की गाड़ी हरहराती हुई बिल्कुल मंच के पास पहुँची और वातावरण माननीय मुख्यमंत्री जी जिंदाबाद की तुमुल ध्वनि से गूँज उठा । मंत्री जी के पहुँचने के पहले ही एक युवा महिला पोडियम पर खड़ी हो कर पहले कोई लोकगीत और फिर जॉनी मेरा नाम फिल्म के मशहूर और लोकप्रिय गीत गा रही थीं । मुख्यमंत्री जी की गाड़ी पहुँचते ही उन्होंने जॉनी मेरा नाम के गीत को बीच में रोका । उन्होंने कोकिल कंठ से मुख्यमंत्री जी के काफिले के पहुँचने का समाचार जनता को दिया और तत्काल जोर जोर से तालियाँ बजा बजा कर अतिथि का स्वागत करने का निर्देश दिया । लोगों ने तालियाँ बजाने में कोताही न की । फिर मैडम ने "हलो हलो, टेस्टिंग टेस्टिंग" के साथ माइक्रोफ़ोन की जाँच की और संतुष्ट होने के बाद पीछे हटीं और मंच पर अभी अभी चढ़े मुख्यमंत्री जी के गले में गुलाब के नन्हें नन्हें गुलाबी फूलों का जतन से बनाया गया हार पहनाया । वातावरण फिर तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा ।
मुख्यमंत्री जी की दाईं ओर संसद सदस्या बैठी थीं और उनकी बगल की कुर्सियों पर कस्बे के दूसरे संभ्रांत नागरिक । सबसे किनारे एक वृद्ध दुबले पतले सज्जन बैठे थे जिन्होंने सफेद धोती कुर्ता और गांधी टोपी

पहन रखी थी । उनके पहले एक युवा स्त्री बैठी थीं जो पीले परिधान और गले में सफेद मोतियों की माला से सजी सिने तारिका लग रही थीं । बाद में पता चला कि वे जब वे दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रा थीं तो उन्होंने एकाध फ़िल्मों में काम किया पर वहाँ उनका मन न रमा और वे मंत्री जी के संग समाजसेवा में लग गईं । लोग तो यह भी कह रहे थे कि अगले विधान सभा चुनाव में उनका टिकट पक्का है और यदि वे जीतीं तो मुख्यमंत्री जी बिना उन्हें कैबिनेट मंत्री बनाए शपथ ग्रहण न करेंगे ।
मंत्री जी के आसन की दाईं ओर अधिकांशत: अधिकारीगण थे । सबसे बगल में कमिश्नर साहब, फिर मैं, फिर एस पी साहब, फिर दूसरे लोग । मंत्री जी के मंच पर विराजमान होने के बाद पहले राष्ट्रगान हुआ और सबलोग राष्ट्रगान के सम्मान में उठ कर खड़े हुए । राष्ट्रगान की समाप्ति के पश्चात सिने तारिका जैसी सुंदर और स्मार्ट राजनेत्री ने खड़े होकर मुख्यमंत्री जी के स्वागत में दो शब्द कहे । अभी वे बोल ही रही थीं कि मुख्यमंत्री जी पीछे मुड़कर देखने लगे । उनका मुँह फूला और होंठ लाल थे । उन्होंने थूकने की तलब के बाबत इशारा किया । उनकी नजरें अपने सहायक को खोज रही थीं और उसका कहीं अता पता न था । पर पीकदान कोने में अपनी जगह पर रखा था । बाद में हमने अनुमान लगाया कि शायद लघुशंका के लिए मंच से नीचे उतरा हो, मंच के पीछे ही गन्ने के खेत थे । सहायक को न पा कर मुख्यमंत्री जी के चेहरे पर असंतोष, तनाव और क्रोध की हल्की सी रेखाएँ उभरीं । ऐसा देखते ही एक साथ कई लोग पीकदान की ओर लपके । सबसे आगे मैं था, मेरे पीछे कमिश्नर साहब और कमिश्नर साहब के पीछे एस पी साहब । एस पी साहब के ठीक पीछे एक मुच्छैल गुंडा टाइप का अधेड़ भी लपका था । अफरातफरी में पीकदान उलटते उलटते बचा ।
कमिश्नर साहब ने मुझे, एस पी साहब और मुच्छैल को आंखें तरेर कर गुस्से से घूरा और पीकदान जो तकरीबन मेरे कब्जे में था, लपक कर मुझसे ले लिया ।
कमिश्नर साहब के हाथों में पीकदान देख कर माननीय मुख्यमंत्री के मुखमंडल पर संतोष की रेखा उभरी । मुख्यमंत्री महोदय ने पीकदान का सलीके से प्रयोग कर वापस कमिश्नर साहब को थमाया । वे कमिश्नर साहब से बहुत प्रभावित दिखे । बाद में जब सब लोग अपने अपने आसन पर विराजमान हो गए तो कमिश्नर साहब मेरी तरफ झुके और मेरे कान में फुसफुसाए : इतना हहुआना अच्छा नहीं, धैर्य से काम लो, ऐसे बहुत से मौके मिलेंगे । इस बात से मेरे कुलीन संस्कारों को ठेस लगी, मैंने अपमान का नाजुक और मुलायम स्पर्श महसूस किया ।
कुछ दिनों के बाद शाम के झुटपुटे में मैं जब अकेला ब्लू लेबल थामे हुए बगान में बरगद के पेड़ के नीचे बैठा इस घटना को याद कर रहा था, मुझे अचानक रायबहादुर भल्ला की कही हुई बात याद आई । भल्ला साहब ने कीमती क्यूबाई सिगार के छल्ले हवा में सलीके से छोड़ते हुए मुझसे कहा था : ये नीच जात वाले कितने ही ऊंचे पद पर पहुंच जाएं, अपना नीच संस्कार नहीं छोड़ सकते ।

पर ठंढे दिमाग से सोचा जाए तो कमिश्नर साहब ने कोई गलत बात नहीं कही थी । संयोग देखिए कि उसी दिन मुझे भी अवसर मिल गया ।

सभा समाप्त हुई और लोग मंच से उतरे । भीड़ भड़क्के में माननीय मुख्यमंत्री के जूते गायब हो गए । अफरातफरी मच गई । जूते कहीं गए न थे, भीड़भसान में मंच के नीचे छुप गए थे । मंत्री जी ने उन्हें पहचान लिया । इसके पहले कि कोई और दावा ठोंकता, मैंने फुर्ती से मंच के नीचे से जूते निकाले । उनपर धूल जम गई थी । मैंने अपनी कमीज का एक छोर पतलून से बाहर खींचा और जूतों को साफ किया । वे तुरंत चमचमाने लग गए । मैंने झुक कर उन्हें मुख्यमंत्री जी के पावों में डाला । लोग मेरी तरफ ईर्ष्या से देखने लगे ।

२३१

***

यह अच्छी बात न हुई कि मैंने मुख्यमंत्री जी के भाषण की बाबत कुछ न कहा । दुनिया भर की फालतू की बातें करना और मुख्य बात भूल जाना - यह खब्तीपन है, गैरजिम्मेदार हरकत है । पर अब चूँकि बात सामने आ गई है तो इसका निदान अवश्य करूँगा ।

मुख्यमंत्री जी के उस कस्बे में पधारने का घोषित प्रयोजन था - कस्बे के विख्यात कुष्ठाश्रम की स्थापना की दसवीं वर्षगाँठ के अवसर पर आयोजित समारोह । कुष्ठाश्रम की स्थापना प्रख्यात गांधीवादी समाजसेवी चन्दूलाल चौरसिया ने की थी । चन्दूलाल जी स्वतंत्रता सेनानी रहे । गांधीवाद में उनकी घोर निष्ठा रही । उन्होंने जगह जगह स्वतंत्रता संग्राम के चक्कर में कारावास प्रवास किया । गांधी जी का उनके जीवन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा । वे गांधी जी की   तरह ही आधे देह की खद्दर की सफेद धोती पहनते थे । शरीर के ऊपरी भाग में वे कुछ नहीं पहनते थे । जाड़ों में एक शॉल जरूर ओढ़ते थे । गांधी जी की तरह ही दुबले पतले थे पर चन्दूलाल जी ने गांधीवाद के दूसरे संत विनोबा भावे की तरह दाढ़ी और बाल बढ़ा रखे थे । चन्दूलाल जी भी छोटे मोटे संत ही थे भले ही विनोबा की तरह प्रसिद्ध वे न रहे हों । गांधी जी की तरह ही वे एलोपैथिक दवाओं के विरुद्ध थे और जहां तक संभव हो नैचुरोपैथी वगैरह के लिए उत्साहित रहते थे । काली गीली मिट्टी के लेप को वे शरीर के किसी भी रोग के लिए बहुत प्रभावकारी मानते थे । बीमारी जब अधिक गम्भीर हो तो गीली मिट्टी में सारी देह को ढंक कर लेटने के चमत्कारिक प्रभाव का वर्णन करते वे न थकते । उनका सारा जीवन जनकल्याण के लिए समर्पित था । कुष्ठ रोगियों की सेवा ही उनके जीवन का उद्देश्य रहा । इस कार्य के लिए जहां से भी आर्थिक सहायता मिलने की आशा होती, वहाँ वे जाते, मेहनत करते । अपना पुराना परिवार उन्होंने छोड़ दिया था । अब कोढ़ी ही उनके परिवार जन थे ।

मंच पर मुख्यमंत्री जी के स्वागत में बोलने वालों का ताँता लगा रहा । सबसे अंत में चन्दूलाल जी का नम्बर आया था । कोई सत्तर वर्ष की अवस्था । कृशकाय पर मुखमंडल पर शांत और गरिमामयी आभा । साँवला रंग, लम्बा कद, झूलते हुए सफेद केश और दाढ़ी । पर बाल पूरी तरह सफेद न थे । कुछ काले बाल छूट गए थे । पाँवों में टायर को काट कर बनाई हुई चप्पल । कुल मिला कर सादा जीवन उच्च विचार की जीती जागती मूरत ।

उन्होंने माननीय मुख्यमंत्री जी की भूरि भूरि प्रशंसा की और अपनी बहुमूल्य और व्यस्त डायरी के बावजूद कस्बे के कुष्ठाश्रम के लिए समय निकालने के लिए कुष्ठ रोगियों और शेष जनता की ओर से हार्दिक आभार व्यक्त किया । यह भी कहा कि जबतक माननीय मुख्यमंत्री जैसे राजनेता हैं, इस देश की जनता का भविष्य सुरक्षित है । जनता ने तालियों की गड़गड़ाहट से मुख्यमंत्री जी के प्रति व्यक्त किए गए उनके उद्‌गार से सहमति प्रकट की ।

२३२

***

माननीय मुख्यमंत्री जी के अपनी कुर्सी से उठते ही मैदान फिर तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा । जो लोग पांडाल में सबसे पीछे खड़े थे, आगे आने के लिए धक्कामुक्की करने लगे, पुलिस वालों ने उन्हें पीछे धकेला और कायदे से रहने की हिदायत दी । मुख्यमंत्री जी अपनी कुर्सी से उठ कर पोडियम तक आए । सभागार में हर्षोल्लास भरी उत्सुकता का माहौल फैल गया । मुख्यमंत्री जी के चेहरे पर धीर गम्भीर गाम्भीर्य की स्थायी छवि छाई थी पर बहुत गौर से देखने पर कभी मंद स्मिति, कभी हल्की सी नाराजगी और कभी शायद हिकारत का भाव भी शायद क्षण भर के लिए आता और जाता था । अब यह मेरा अनुमान भर है, मैं इसकी पक्की सादीक मैं कैसे कर सकता हूँ !

मुख्यमंत्री जी ने ललाट पर चमकती स्वेद की बूँदों को खादी के उस सफेद रूमाल से पोंछा जो उन्होंने कुर्ते की दायीं जेब में रखा था । फिर उन्होंने खंखार कर गला साफ किया और पीछे मुड़ कर देखा और इशारों इशारों में थूकने की इच्छा जाहिर की । तब तक उनका व्यक्तिगत सेवक और मातहत लल्लू लाल गन्ने के खेत में लघुशंका से निवृत्त होकर लौट आया था और दोनों हाथ जेब में डाले मुख्यमंत्री जी की कुर्सी के पीछे खड़ा था । मुख्यमंत्री जी का इशारा देखते ही उसने बगल में ही रखा थूकदान लपक कर उठाया और बरसों से सीखी हुई कुशलता और सेवाभाव से उनकी बाईं तरफ उनकी कमर से थोड़ा नीचे स्थापित किया । मुख्यमंत्री जी ने अपना सिर पीकदान की तरफ झुकाया और धीरे से एक बार थूका । फिर सावधानी के तहत उन्होंने खखार कर गला फिर साफ किया और ढेर सारा थूक पीकदान में विसर्जित किया ।

मुख्यमंत्री जी के चेहरे पर अब बारीक संतोष और हल्के से हर्ष की चमक थी । मुख्यमंत्री जी अपने चाहने वालों के बीच में थे, उन्हें पता था कि उनकी लोकप्रियता का डंका बज रहा है, अभी हाल में हहुआए हुए सत्तालोलुप नौसिखिया और जरूरत से ज्यादा महत्वाकांक्षी एक युवा नेता को जो हाई कमान के कुछ गिरे हुए लोगों के साथ मिल कर उनके नेतृत्व के खिलाफ साजिश रच रहा था, उन्होंने अंदरूनी सत्तासंघर्ष में पटकनी दी थी । पुलिस की मदद से उसके फोन टेप कर लिए गए थे और विरोधी दल से उसकी मिलीभगत की बात खुल कर बाहर आ गई थी । कुछ लालची विधायक जो उसके संग जा रहे थे, फिर से मुख्यमंत्री जी के गुट में शामिल होने के लिए गिड़गिड़ा रहे थे । मुख्यमंत्री जी की अपनी जात का कोई खास वोट प्रांत में नहीं था पर तमाम दूसरी जातियों के महासम्मेलनों में भागीदारी से, उनके जातिगत महापुरुषों के जन्मदिनों और पुण्यतिथियों के अवसर पर राजकीय अवकाश आदि की घोषणा कर उन्होंने

समाजवादी सामाजिक समरसता का आंदोलन छेड़ दिया था और अगले चुनाव में आने वाली समस्त बाधाओं को दरकिनार कर दिया था । मुख्यमंत्री जी सेकुलर बहुत थे और उनकी हज करने की बड़ी इच्छा थी पर जब उन्हें पता चला कि गैर मुसलमानों को मक्का जाने की अनुमति नहीं मिलती तो दिल पर पत्थर रख कर अजमेर ख्वाजा मोईउद्दीन चिश्ती की मज़ार पर सिल्क की हरी चद्दर भेंट कर उन्होंने अपनी मनोकामना पूरी की ।

२३३

***

"भाइयों और बहनों", मुख्यमंत्री जी ने अपना भाषण आरंभ किया ।

"इस ऐतिहासिक नगरी के दर्शन करने का सौभाग्य किसी किसी को ही प्राप्त होता है । आपकी कृपा से मैं उन्हीं भाग्यवानों में से एक हूँ । इस नगरी का इतिहास कितना पुराना है - कोई न बता पाएगा । इस नगरी की मिट्टी ने एक से एक विभूतियों को जन्म दिया, यहाँ की नदी में एक से एक कमल खिले । इस नगरी की प्रशंसा ठीक से कर पाना मानुस के वश की बात नहीं है । इस नगरी से मेरा कितना लगाव है - यह बता पाने में मेरे शब्द बिल्कुल दीन हीन, असमर्थ हैं । यहाँ की सड़कें, नदियाँ, नाले - मेरी आत्मा की कोठरी में करीने से सजा कर लटकाई गई तस्वीरों की तरह हैं जिन पर मैं नित फूलमाला चढ़ाने का काम करता हूं । कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इस नगरी के प्रति समर्पण का यह भाव आपके इस अदने सेवक तक सीमित न होकर उसके समस्त परिवार, उसके दल तक फैला हुआ है । जब भी इस नगरी में कोई समस्या आई है, हमारा दल भागा भागा आपकी सेवा में प्रस्तुत हुआ है । आपको पता होगा कि मेरा जीवन सदा जनता की सेवा के लिए समर्पित रहा । यही समर्पण का संस्कार मैंने अपने बेटे को दिया जो अब हमारे दल की युवा शाखा का प्रदेश अध्यक्ष है । स्वाभाविक है कि आपको जिज्ञासा होगी कि मेरे अंदर जनता की सेवा के लिए यह असीम समर्पण का भाव कैसे जागा । मैंने इसके बारे में बहुत सोचा तो मुझे प्रतीत हुआ कि मुझे शायद पूज्य बापू से प्रेरणा प्राप्त हुई होगी । बाद में बढ़ती युवावस्था के दिनों में पंडित नेहरू और बाबासाहब अम्बेडकर ने भी अपनी अमिट छाप छोड़ी । मैंने युवावस्था में ही निर्णय ले लिया कि मेरा जीवन दबे कुचलों, दलितों, पिछड़ों को उनका हक दिलाने के लिए संघर्ष में बीतेगा । जहां भी अन्याय होगा वहाँ आपका सेवक आपके संग खड़ा होगा चाहे इसके लिए कोई भी कीमत चुकानी पड़े । मैंने अपनी और अपने परिवार की नहीं, जनता की परवाह की । मेरा पुत्र भी उसी मार्ग पर है । और मुझे पता है आपका स्नेह उसको सहज ही प्राप्त है ।

भाइयों और बहनों, समता का स्वर्गीय राज्य स्थापित करने के यज्ञ में हममें से हर एक को आहुति देनी होगी । पैसे से रुपए से, श्रम से, बलिदान से । हमें समाज के दुश्मनों पर विशेष कर पूँजीपतियों पर निगाह रखनी होगी । यह देश सर्वहारा का है, पूँजीपति का नहीं । हम शोषण के बिरवे को इस मिट्टी में पनपने नहीं देंगे, उसे कुचल देंगे । इसके लिए मैं, मेरा परिवार और मेरा दल प्रतिबद्ध है ।

आज कुष्ठाश्रम की स्थापना की दसवीं वर्षगाँठ का पवित्र अवसर है । आप अनुमान नहीं लगा सकते कि इस आयोजन को देख कर स्वर्गीय बापू की आत्मा कितनी तृप्त हुई होगी । हम बापू का सपना पूरा करके

रहेंगे । मैं चाहता हूँ कि इस प्रदेश के हर कस्बे में ऐसा ही कुष्ठाश्रम स्थापित हो, दुखी जनों का उपचार हो । आपको मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मेरा व्यक्तिगत जीवन पूरी तरह सेवा के लिए समर्पित है । सुबह उठो तो सेवा, रात सोओ तो सेवा । हर वक्त सेवा का ध्यान रहे । जहां भी सेवा का अवसर मिले उसे हम पकड़ लें, हाथ से जाने न दें । इसी सेवा के लिए और उसी सेवा की बदौलत आज मैं मुख्यमंत्री हूँ और आपने चाहा तो आगे भी रहूंगा । चन्दूलाल जी महान व्यक्ति हैं, उन्होंने कुष्ठ पीड़ितों की सेवा का बीड़ा उठाया है । हम प्रयास कर रहे हैं कि हम उन्हें अपने दल के टिकट पर विधायक का चुनाव लड़ने के लिए राजी कर सकें । यदि ऐसा हुआ तो उनके लिए और भी बड़े स्तर पर सेवा के अवसर वैसे ही खुलेंगे जैसे मेरे लिए खुले ।

दुर्भाग्य से समय का दबाव इतना है कि न चाहते हुए भी मुझे आज शाम आपकी यह स्वर्णिम नगरी छोड़ कर राजधानी लौटना पड़ेगा । आपको तो पता है मेरा दिल गाँवों और छोटे कस्बों में बसता है । मैं गरीब गुरबा का बेटा हूँ, धूल और मिट्टी में पला हूं, धूल और मिट्टी ही मेरी पहचान है । पर कर्तव्य के दबाव की विवशता है । आज रात राजधानी के अशोका होटल में कवि सम्मेलन है जिसमें आपके इस अदने सेवक को मुख्य अतिथि के तौर पर आमंत्रित किया गया है । मेरा मन तो न था पर उनका आग्रह अस्वीकार करने की धृष्टता मैं न कर सका । मैं स्वयं तो बहुत पढ़ा लिखा नहीं हूं पर मेरी आत्मा में बुद्धिजीवियों के लिए, विशेष कर प्रगतिधर्मा बुद्धिजीवियों के लिए, सदा विशेष स्थान रहा । सुनने में आता है कि महान जननायक लेनिन स्वयं बुद्धिजीवी थे । महान क्रांतिकारी चे ग्वेवारा के बारे में भी लोग ऐसा ही कहते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि बुद्धिजीवियों ने सदा समाज की अगुवाई की है, समाज को रोशनी दिखाई है ।

इसलिए आप से प्रार्थना है कि आप अपने इस सेवक के प्रवास की संक्षिप्तता के लिए उसे क्षमा करें और उसे सदा सेवा का अवसर देते रहें ।

जय बापू, जय बाबासाहब, जय पंडितजी, जय लेनिन ।"

पांडाल एकबार फिर तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजा । कई स्त्रियाँ पल्लू से अपनी आँखों के आँसू पोंछती देखी गईं । पांडाल में आगे की कतार में बैठी पीली साड़ी पहने हुए एक युवती एक ब एक अपने स्थान से उठी और जैसे ही मुख्यमंत्री जी मंच से उतरे, उनके चरणों में आ गिरी । मुख्यमंत्री जी घबड़ा गए । पुलिस वालों ने किसी तरह उसे वहाँ से उठाया । बाद में अफवाह फैली कि वह उस इलाके में आगामी विधानसभा चुनाव में मुख्यमंत्री जी के दल से प्रत्याशी का टिकट पाने की इच्छुक अभ्यर्थिनी थी ।

२३४

****

मुख्यमंत्री जी अपना भाषण समाप्त कर अपने काफिले के संग हवाई अड्डे की ओर बढ़े । हम उनके पीछे पीछे चले । थोड़ी देर बाद ही मुख्यमंत्री जी का विमान ऊँचे गगन में था और हम धरती पर अपने दफ्तरों की तरफ़ बढ़ रहे थे । घर, जो मेरा दफ्तर भी था, पहुँचते पहुँचते मुझे सात बज गए थे । मैं उस रात

अकेला ही था । मेरे ससुर जी की तबीयत खराब होने की खबर आई थी और मेरी पत्नी थोड़ी देर पहले ही एक विश्वस्त क्लर्क के संग मुंबई निकल गई थी ।

चपरासी महंगू ने मेरे जूते उतारे और गुसलखाने में गरम पानी का इन्तज़ाम किया । फिर रात खाने की बाबत पूछा । पर मेरा ध्यान उस दिन कहीं और था, मैं उहापोह में डूबा था । मेरी स्थिति - मैं इधर जाऊं या उधर जाऊँ - वाली थी । मैं नहा धो कर निकला और बाहर बाग में खुले आसमान के नीचे बैठा । मैंने महंगू से ब्लू लेबल वाली बोतल मँगवाई । मुझे लगा कि ब्लू लेबल सलाद के साथ लूँगा तो शायद दिमाग की खिड़की खुलेगी । यह मेरी पुरानी तकनीक थी । जब भी मैं किसी उहापोह के जाल में उलझता, इसी रास्ते से बाहर निकलने की उम्मीद रखता । एकाध बार मेरी उम्मीद सही भी उतरी थी ।

महंगू को मेरी पसंद पता थी । डिनर के बारे में पूछना बस एक औपचारिकता थी । उसे पता था कि जब भी साहब किसी उहापोह में उलझते हैं, मुर्ग़ मुसल्लम ही ऑर्डर करते हैं । फिर भी उसने पूछा : मुर्गमुसल्लम बनेगा साब, बहुत अच्छा मुर्गा आया है । मैंने सर हिला कर सहमति जताई । मैं सफेद टी शर्ट और चारखाने की लुंगी पहने बाहर आराम कुर्सी पर लेटा । मेरे सामने ब्लू लेबल थी, टेबुल पर काँच की गिलास में बर्फ के चंद गोले थे और एक प्लेट में प्याज के टुकड़े थे । ब्लू लेबल के साथ मैं हमेशा सिर्फ प्याज ही लेता रहा, हो सके तो लाल प्याज ।

ऊपर आकाश में चौदहवीं का चाँद खिला था । चाँदनी धरती पर कतरा कतरा बरसती थी । कुछ नन्हें नन्हें तारे इधर उधर बिखरे थे और एकाध सफेद आवारा चितकबरा बादल कभी चाँद को छोपता, कभी किनारे हट जाता । जरा सी गर्मी थी । जब हल्की सी बयार चलती और पेड़ों से होते हुए सरसराती आती तो हर ओर रातरानी की कोमल खुशबू तैर जाती । धीरे धीरे मैं सुरूर में डूबा । जागने और सोने के बीच का सुरूर । जागता तो उहापोह का मसला दिमाग में घूमता और जब चेतना पर धुँआ छाता तो रक्तिमा और नताशा के खूबसूरत मुखड़े, दिल्ली और मॉस्को की हसीन रातों के सपने तैरने लगते । मैं कहाँ आ गया था ? मैं यहाँ क्या कर रहा था ? मैं क्या अब जिंदगी भर खैनी बनाऊंगा, पीकदान उठाऊँगा ? क्या मेरा जीवन ऐसी ओछी और हास्यास्पद हरकतों के रास्ते चलते चलते गुजर जाएगा ?

महंगू ने टेप रिकार्डर पर तलत महमूद का संगीत लगा दिया । महंगू को पता था कि साहब जब उदास होते हैं तलत महमूद के गीत सुनते हैं । वीराने में तलत महमूद का नाज़ुक लरजता स्वर हौले हौले उठा - सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या किया ।

अचानक मुझे रायबहादुर भल्ला की याद आई । इस मनहूस कस्बे में एक भी आदमी ऐसा नहीं जिससे कोई बात कर सके । या तो चापलूस अफसर और व्यापारी हैं या गुंडे बदमाश या किसी न किसी काम के चक्कर में चिपके हुए क्षुद्र लोग । मैं कायदे के आदमी की संगत के बिना अकेलापन और उदासी के घेरे में घिरा था । आज रात रायबहादुर भल्ला ने डिनर के लिए बुलाया था । वहाँ शायद दर्शनशास्त्र, साहित्य और कला के विषयों पर बात होती और कहाँ मैं अब खैनी बनाने और पीकदान उठाने के बाद यहाँ अकेला बैठा ब्लू लेबल पीता हुआ गम गलत कर रहा हूँ ।

मुर्गमुसल्लम बहुत अच्छा बना था । रूमाली रोटी, प्याज और मुर्गमुसल्लम । खाने में ढेर सारे आइटम्स परोसने वालों से मुझे नफरत है । मुर्गमुसल्लम के साथ आलू गोभी की सब्जी, खीर और चाऊ मिन ! गधे ऐसा क्यों करते हैं ? फिर किसी व्यंजन का मजा नहीं आता । अरे बस कोई एक चीज़ बनाओ, कायदे से बनाओ । मुर्गमुसल्लम ने मेरी आत्मा तृप्त की । मैं देर रात तक वहीं बैठा रहा । महंगू को कह दिया था कि कोई फोन आए तो कहना साहब बाथरूम में हैं ।

जैसे जैसे रात गहरी हुई तापमान गिरा । मैं अपने बिस्तर पर मसहरी के अंदर लेटा और सुहावने सपनों में डूबा । सुबह उठते ही मैंने चपरासी के हाथों रायबहादुर मोहन भल्ला के घर पुरजा भेजा । उन दिनों मोबाइल और एसएमएस न थे ।

२३५

***

अगले दिन शाम का समय तय हुआ था । उस दिन गर्मी बढ़ गई थी और शहर में हर तरफ धूल उड़ रही थी । लोगों ने दिन भर दफ्तर में मेरा दिमाग चाटा था । सुबह ठेकेदारों की मीटिंग तो दोपहर में डॉक्टरों की बैठक, फिर चाय पर विधायक महोदय से वार्तालाप । किसी की जमीन पर कब्जे का मामला तो किसी पर घूस लेने का आरोप । स्थानीय अस्पताल में दवाइयों की चोरी का मसला तो नदी में से अनधिकृत बालू निकासी का आरोप । किसी गली में सड़क पर गंदा पानी जमा हो रहा है तो किसी दूसरी गली में पानी का नल बंद हो गया है । दारोगा पर दुखियारी जनता के साथ दुर्व्यवहार का आरोप तो मंत्री जी का अपने दूर के किसी रिश्तेदार को बिजली के खंभे गाड़ने का ठेका दिलाने की सिफारिश । मैं चट गया था । किसी तरह शाम हुई तो मैंने राहत की साँस ली । गनीमत यह थी कि पत्नी वहाँ नहीं थी वरना शाम को पत्नी और पत्नी के रिश्तेदारों के मामले भी उठते । मैंने तौलिया लिया और - ये जिन्दगी उसी की की है - गुनगुनाता हुआ गुसलखाने में घुसा । असल में यह गीत दोपहर में कहीं रेडियो पर बज रहा था ।

नहा धो कर मैं तरोताजा हुआ । महँगू को बाहर भेज कर गुलदाउदी के पीले फूलों का गुलदस्ता पहले ही मँगवा लिया था । बात यह है कि खाली हाथ किसी के यहाँ जाना मुझे सदा अशोभन प्रतीत हुआ ।

सूरज कब का डूब चुका था और अचानक हल्की सी गर्म हवा चली थी जो खुशगवार मालूम होती थी । मौसम और मिज़ाज के हिसाब से मैंने महीन खादी का सफेद कुर्ता पायजामा पहना, पाँवों में कोल्हापुरी चप्पल डाले और महंगू के साथ चल पड़ा । महंगू आगे बैठा गाड़ी चला रहा था और मैंने पीछे बैठ कर गोल्ड फ्लेक की एक सिगरेट सुलगाई ।

रायबहादुर मोहन भल्ला का घर मेरे बंगले से बहुत दूर न था । पहले कचहरी पड़ती थी जो अब खाली थी सिवा एक दो काले लबादों में लिपटे वकीलों के जो कचहरी के बाहर बरगद के नीचे बैठे अपने मुवक्किलों से शायद रुपए पैसे की बातों में उलझे थे । थोड़ा आगे बढ़ने पर बाईं ओर कस्बे का इकलौता हाई स्कूल था और दाईं ओर थाना । स्कूल की चहारदीवारी के बगल से ही वह पतली सी सड़क गुज़रती थी जिस पर आगे जाकर रायबहादुर का मकान था । सड़क खाली थी पर अचानक सिर पर पानी की

बाल्टी लिए एक युवती सड़क की एक तरफ से रास्ते में आई और हादसा होते होते बचा । मैंने अपने आपको, इस मनहूस कस्बे को और उस औरत को मन ही मन गालियाँ दीं ।
आगे जा कर बाईं ओर एक छोटा सा तालाब था और तालाब की उस तरफ थोड़ी सी खाली जगह थी जहां सूवर जमीन पर लोटे पड़े थे । पास ही कई मुर्गियां इधर उधर भाग रही थीं । तालाब के बगल से ही सड़क फिर मुड़ती थी । थोड़ी दूर आगे ही बाईं ओर एक अहाता दिखा जो कँटीले तार की मेंड़ से घिरा था । अहाते के अंदर कुछ सब्जियाँ लगाई गई थीं । एक ट्यूब वेल भी सिंचाई के लिए था । अहाते के बगल में ही एक गैरेज था और गैरेज से लगी खुली हुई जगह थी जिससे लगा वह दुमंजिला मकान था । खुली हुई जगह में क्यारियों में पौधे लगे थे । बरामदे की दीवार पर एक तरफ एक लतर फैल गई थी । बरामदे में करीने से गुलदाउदी और गुलाब के पौधे गमलों में लगे थे ।
हम गाड़ी से उतरे और बरामदे में लगी घंटी बजाई ।
२३६
***
इधर हमने घंटी बजाई उधर अंदर से दो कुत्तों की जोर जोर से भौंकने की आवाज आई । फिर दरवाजा खुला और रायबहादुर ने गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया । दोनों कुत्ते - एक झबरा और दूसरा सफेद - मेरे ऊपर चढ़े आ रहे थे । मैं घबराया, कुत्तों से मैं हमेशा घबराता रहा हूं । भल्ला साहब ने प्यार से उन्हें झिड़का और उनका नौकर उन्हें अंदर ले गया । भल्ला साहब ने तब बोलर हैट नहीं पहन रखा था और उनकी चिकनी चांद कमरे में फैली पीली रोशनी में चमक रही थी । भल्ला साहब ने भी मेरी तरह ही सफेद कुर्ता पायजामा पहन रखा था । उनका चेहरा ठीक से शेव हो कर चिकना था और रोशनी में चमक रहा था । उनकी पतली मूँछें हमेशा की तरह करीने से कटी, पतली और नुकीली थीं ।
थोड़ी देर बाद ही अंदर से एक महिला आईं । मैंने अनुमान लगाया कि वे शायद मिसेज़ भल्ला होंगी । मेरा अनुमान सही था । भल्ला साहब ने हम दोनों का आपस में परिचय कराया । मिसेज़ भल्ला दुबली पतली औसत कद की कोई सत्तर के आस पास की महिला थीं । उम्र के बावजूद उनके चेहरे पर एक चमक थी जो खुशमिजाज और संतुष्ट लोगों के चेहरों पर अमूमन होती है । बाल उनके बिल्कुल काले थे सिवा जरा सा कनपटी के पास जहाँ वे सफेद थे । बॉब हेयर कट था जो शायद इस दकियानूस कस्बे के लिए उस जमाने में एक अजूबा रहा होगा । आँखों पर महीन गोल्डेन फ्रेम का चश्मा था । उन्होंने हल्के क्रीम रंग की कलफदार साड़ी और मिलते हुए रंग का ब्लाउज़ पहन रखा था । आँखों में काजल की बारीक सी रेखा थी और भौंहें करीने से सजाई, हल्की पेंसिल से रंगी थीं । मुझे लगा कि गालों पर उन्होंने बहुत महीन रूज भी शायद लगाया हो । गले में सफेद मोतियों की माला चमक रही थी । उनके पास से महँगे परफ्यूम की महीन खुशबू निकल कर कमरे में तैर रही थी । उनके पूरे व्यक्तित्व में अभिजात्य की छाप थी जो ऐसे मनहूस कस्बे में अप्रत्याशित थी । उन्होंने हाथ जोड़ कर मेरा अभिवादन किया और मुझसे मिलने पर प्रसन्नता व्यक्त की ।

हम उनके ड्राइंग रूम में खड़े थे । फर्श तो शायद सीमेंट का ही था पर उस पर बीच में बहुत सुंदर डिज़ाइन वाली ईरानी कालीन बिछी थी । कमरे के एक कोने में एक बड़ा सा सोफा था और अगल बगल में कुर्सियाँ लगी थीं । सोफे के सामने एक सफेद पत्थर के टॉप वाला टेबुल लगा था जिस पर कोई टेबुल क्लॉथ न था । सोफे के सामने वाली दीवार पर ऊपर एकदम छत के पास से शेर और बाघ के सिरों मे चमकती गोल आंखें हमें घूर रही थीं । उसी दीवार पर कई पुरानी तस्वीरें लगी थीं, श्वेत श्याम, जिनमें हाल में मारा गया शेर या बाघ या चीता था और उसके पीछे बंदूकें कंधों पर लिए कुछ हिन्दुस्तानी, एकाध अंग्रेज और कुछ खानसामा पुराने जमाने की वर्दियाँ पहने खड़े थे । शिकारियों ने शिकार के लिए प्रयुक्त होने वाली पोशाकें और वैसे ही बूट पहन रखे थे । उनके चेहरों पर उपलब्धि और रोमांच की छवि थी । रायबहादुर ने बताया कि उनके पिता जी जो ब्रिटिश फौज में ऊँचे पद पर थे जब लौट कर भारत आए तो उन्होंने शिकार का शौक पाल लिया । विशेष कर रणथम्भोर और सरिस्का में बहुत सारे बाघों और चीतों का उन्होंने शिकार किया । वे खाने पीने और पार्टियों के भी बड़े शौकीन रहे । शिकार के लिए वे अक्सर कुछ अंग्रेज अफसरों और भारतीय ज़मींदारों के साथ जंगलों में निकल जाते । हफ्तों व्यस्त रहते । एक बार तो बाघ का शिकार करते हुए वे मचान से गिर कर घायल हुए थे और उनका एक पैर टूट गया था । बाद के दिनों में मोहन भल्ला भी अपने पिता के साथ जंगलों में जाते ।
रायबहादुर का खिताब अंग्रेजों ने मोहन भल्ला के पिता को दिया था - फौज में उनकी बहादुरी और उनकी शानो शौकत के लिए । वैसे शायद रायबहादुर खानदानी खिताब नहीं है पर पिता के गुजरने के बाद नौजवान मोहन भल्ला को स्थानीय लोगों ने रायबहादुर मोहन भल्ला कहना शुरु कर दिया और मोहन लोगों को मना न कर पाए ।
सोफे के पीछे शीशे के फ्रेम वाली बड़ी सी आलमारी थी जिसमें करीने से किताबें सजी थीं । जेम्स हेडली चेज़ से लेकर थॉमस हार्डी तक । एक कोने में जवाहरलाल नेहरू की डिस्कवरी ऑफ इंडिया भी रखी थी ।
२३७
***
सोफे की बाईं ओर की दीवार पर दरवाजे के ऊपर तीन तस्वीरें लगी थीं । एक में एक नवविवाहित जोड़ा था और दूसरी दो तस्वीरों में उनके संग दो छोटे बच्चे और एक बच्ची थी । दूसरी दोनों तस्वीरें किसी समुद्र तट की थीं । मैंने अनुमान लगाया ये भल्ला दम्पति और उनके बच्चों की तस्वीरें होंगी । किसी से सीधे ऐसी तस्वीरों के बारे में पूछना शायद पूरी तरह सभ्य हरकत न हो, इसलिए मैं चुप रहा पर मेरी आँखें उन तस्वीरों पर बार बार जा रही थीं । हसीन युवा जोड़ा और जोड़े के तीन बच्चे । नौजवान शख्स की शक्ल फिल्म अभिनेता राजकुमार से मिलती थी । वैसे ही बाल, वही तेवर और वैसी ही नुकीली मूँछें । और युवती तो बला की खूबसूरत थी । साधना और नूतन का मिश्रण । साधना की कमनीयता, माथे पर वैसी ही लटें । और नूतन की तीक्ष्ण कुशाग्र आँखें । रायबहादुर भल्ला मेरी उत्सुकता भाँप गए । वाइन की गिलासों में उन्होंने चिली की लाल वाइन खुद अपने हाथों से तैयार की और एक गिलास मेरी तरफ

बढ़ाई, संग संग एक प्लेट में हरे जैतून और मूंगफली के टुकड़े । मुझे लगा कि रायबहादुर की आँखों में नमी उतर आई है । मिसेज़ भल्ला भी गंभीर हो गई थीं और अपने पति को गौर से देख रही थीं ।
रायबहादुर ने वाइन का एक घूँट लिया और बहुत धीमे स्वर में धीरे धीरे बोले - कुछ यूँ कि जैसे आवाज किसी गहरे कुएँ से निकल रही हो ।
“वह हमारे विवाह के तुरंत बाद की तस्वीर है, तब हम मसूरी में थे । दूसरी तस्वीरें हमारे बच्चों की हैं ।” उनका स्वर रुआँसा हो आया । उन्होंने सॉरी कहते हुए जेब से रूमाल निकाल कर आँखें पोंछीं । अचानक मिसेज़ भल्ला बोलीं :
"मैं मोहन को हमेशा कहती हूँ - लाल वाइन इन्हें सूट नहीं करती, सेंटिमेंटल हो जाते हैं, अच्छा नहीं लगता ।"
२३८
***
रायबहादुर चुप हो गए थे । बल्कि हम तीनों चुप थे । हम बस धीरे धीरे लाल वाइन की चुस्कियां लेते या सीलिंग फैन को देखते रहते । भल्ला युगल और उनके तीनों बच्चों की तस्वीरें कोई पच्चीस वर्ष पूर्व गोवा के समुद्र तट की थीं जहाँ वे छुट्टियाँ मनाने गए थे और जहाँ उनकी तीन बरस की नन्हीं बच्ची नेहा समुद्र में डूब गई थी । लहरों ने उसे गोद में ले लिया था ।
तब मोहन भल्ला एक बड़ी विदेशी शिपिंग कम्पनी में काम करते थे । बम्बई में दफ्तर था । ऊँची तनख्वाह, खूबसूरत बंगला, कीमती कार, हाई सोसायटी वाले दोस्त और कभी पहाड़ तो कभी समुद्र तट पर छुट्टियाँ । पर दिल उचट गया तो उचट गया ।
इस कस्बे में मोहन भल्ला का ननिहाल था । उनके नाना बड़े जमींदार थे । उनकी हजार एकड़ की खेती थी । खानदानी लोग थे । समाज में रुतबा था । मोहन की माँ उनके नाना की अकेली संतान थीं । उनके पिता जी को सारी जायदाद नवासे में मिल गई थी । जब नौजवान मोहन का दिल बड़े शहर की भागमभाग से उचट गया तो शांति की तलाश में वे इस कस्बे में आकर बस गए । पास में ही खेती थी । वहाँ कभी कभार जाते, देखभाल करते, काम तो सारा कारिंदे ही करते थे । बाकी समय मोहन कभी लाल वाइन पीते, कभी सफेद । बीथोवन और मैजार्ट के वाद्यसंगीत सुनते, अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते ।
मिसेज़ भल्ला को कस्बाई जीवन कभी रास नहीं आया । रास आने को तो मोहन भल्ला को भी पूरी तरह नहीं आया था, बम्बई की चमकती रोशनी की याद आती थी, चौड़ी सड़कों, कहवा घरों, थिएटरों की याद आती थी । पर यहाँ बड़ी जायदाद थी, किसके भरोसे छोड़ते ? कभी दिल बहुत ऊबता तो अपने साढ़ू के यहाँ कलकत्ता हो आते ।
दोनों लड़कों को नैनीताल में सेंट कोलम्बस बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया था, छुट्टियों में बच्चे यहाँ आते पर यहाँ के देसी गँवार बच्चों में वे आउट ऑफ प्लेस महसूस करते, बोर होते । एकाध लोगों ने उनसे कहा कि वे बच्चों को कस्बे के हाई स्कूल में डाल दें, अपने पास रखें । पर भल्ला दंपति नहीं माने । वे

नहीं चाहते थे कि उनके दुलारे बेटे इस सड़ियल कस्बे में, जिसमें एक आदमी कायदे से हिंदी तक नहीं बोलता, पढ़ कर गँवार बनें, अपनी जिंदगी, अपना भविष्य रसातल में डालें ।

उनका यह निर्णय सही साबित हुआ था । बड़ा बेटा अब न्यूयार्क में एक तेल कम्पनी में काम करने लग गया था, उसने वहीं एक अमेरिकन लड़की से विवाह कर लिया था, उनके दो नन्हें नन्हें बच्चे थे । छोटा बेटा इटली के मिलान शहर में फैशन डिज़ाइनर था, वह अब वहीं एक फ्रांसीसी बैले डांसर से विवाह कर बस गया था ।

दोनों बेटे उनसे बार बार कहते कि इस सड़े हुए कस्बे को छोड़ कर उन्हें मिलान या न्यूयॉर्क में बस जाना चाहिए, उन्हें बुढ़ापे में यहाँ कौन देखेगा और फिर इस मनहूस कस्बे में रखा क्या है । मिसेज़ भल्ला को बेटों की बात जँचती थी पर रायबहादुर से यह न हो सका । बेटों की बात वह समझते थे, उनकी बात से काफी हद तक इत्तिफाक भी रखते थे पर कुछ था इस कस्बे में जिसे छोड़ना मुश्किल लगता था । गालियाँ देते पर छोड़ नहीं पाते । वे कई बार मिलान और न्यूयार्क गए पर वहाँ उनका दिल न लगा, भाग भाग कर इस मनहूस और गंदे कस्बे में गालियाँ निकालते लौटे चले आते ।

२३९

***

मोहन भल्ला के कोई भाई बहन न थे । होते तो पता नहीं उनसे उनकी पटती या नहीं । दो लड़के थे जिनका कभी कभार फोन आ जाता, कोई पत्र चला आता । मिसेज़ भल्ला की तरफ उनकी सिर्फ एक जुड़वाँ बहन थीं जो कलकत्ते में रहती थीं । उनके बहनोई एक विदेशी बैंक में ऊँचे पद पर रह कर रिटायर हो गए थे । रायबहादुर की अपने साढ़ू से तो थोड़ी बहुत पटती थी पर अपनी पत्नी की बहन को सहन करना उनके लिए तकरीबन असहनीय था । मोहन भल्ला सुसंस्कृत विचारवान व्यक्ति थे । साहित्य, राजनीति और संगीत में रुचि रखते थे, उनके अंदर सौंदर्यबोध भी प्रचुर मात्रा में था । पर उनकी पत्नी की बहन, जो उनकी एकमात्र रिश्तेदार थीं, उनकी नजर में पैसे होने के बावजूद फूहड़ और गँवार थीं, उनकी रुचि फिल्मी सितारों और पड़ोसियों के अफेयरों और उनके बारे में फैलती अफवाहों में अधिक थी । किस शादी में किसको क्या मिला, किसकी साड़ी कितनी फूहड़ रही, जेवरात के दाम बढ़ते चले जा रहे हैं, किसकी लड़की किसके संग भागने के चक्कर में है - इन बातों में उनका मन रमता था । वे धार्मिक भी बहुत थीं, धर्मगुरुओं के सत्संग में जाना, गीता रामायण का पाठ सुनना - ये उनके शुगल थे । दूसरी तरफ रायबहादुर तार्किक किस्म के आदमी थे, फालतू की बातों में उनकी दिलचस्पी न थी । जहां तक धर्म की बात थी, वे करीब करीब नास्तिक थे हालाँकि लोगों ने उन्हें कभी कभी मंदिरों में जाते देखा था, एकाध बार वे कस्बे में किसी कलक्टर के यहाँ हुई सत्यनारायण व्रत कथा में सम्मिलित होते हुए भी देखे गये थे । कहने का मतलब यह कि भल्ला साहब दुनिया में अपनी पत्नी के अतिरिक्त करीब करीब अकेले थे । साढ़ू के यहाँ जाते पर टिक न पाते । छिछोरापन उन्हें कभी सहन न हुआ ।

रायबहादुर को अकेलेपन का अभ्यास सा हो गया था पर कभी जब मौसम बिगड़ता खास तौर बारिश के दिनों में तो अकेलापन सालता । इस मनहूस कस्बे में ऐसे लोग न थे जिनसे भल्ला साहब जैसे व्यक्ति

की दोस्ती तो दूर कोई सतही सम्बंध भी हो सकता । इस कस्बे में बस धूल उड़ती थी, नालियां बजबजाती थीं, लोग सड़ी हुई पिक्चरें देखते थे, केले और करेले के दामों पर बहस करते थे, ठर्रा पीते थे । कोई सुरुचि न थी, कोई सलीका न था । कभी कभी दम घुटता था । जब किसी शाम तन्हाई में दम घुटता तो वे अपने साढ़ू साहब के यहाँ से लाई गई वाइन की बोतल खोल कर बरामदे में बैठते, कभी प्याज़ या गाजर के टुकड़े ले लेते, आराम कुर्सी में पसरते और बाख या बीथोवन का पियानो कन्चर्टो लगा देते । एकाध बार लोगों ने उन्हें तलत महमूद के उदास गीत सुनते हुए भी देखा था । जब वे ऐसे मूड में होते तो उनकी पत्नी और नौकर उन्हें अकेला छोड़ देते । जब बहुत रात बीत जाती तो पत्नी हल्के से खाँस कर उन्हें डिनर की याद दिलातीं ।
उनके अकेलेपन की बात पूरी तरह सही नहीं है । उनके पास दो झबरैले कुत्ते थे जो उनके संगी थे । कुत्ते सदा से उनके संगी रहे । वे सदा ऊँची ब्रीड के मंहगे कुत्ते लाते और उन्हें बहुत जतन से पालते, प्यार करते थे, उनकी देखभाल करते । कुत्ते भी उन्हें बहुत चाहते थे । कुत्तों को सुबह शाम टहलाने का काम नौकर के जिम्मे था पर कभी कभी भल्ला साहब एक पैर में कमजोरी होने और इस कस्बे के इतने फूहड़ और गंदे होने के बावजूद कुत्तों को बाहर टहलाने ले जाते । कुत्ते उनके आसपास कूदते रहते थे पर भल्ला साहब ने कभी उन्हें अपने बिस्तरे या गोद तक आने की इजाजत न दी ।
कस्बे के मामूली लोगों से सम्बंध रखने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था पर संगत के बिना तो आदमी का काम नहीं चलता न । तथागत को इसीलिये तो संघ बनाने पड़ गए, वे भी अकेले न रह पाए । इसलिए भल्ला साहब ऊँचे अफसरों से थोड़ा बहुत सम्बंध रखते थे - विशेष कर आईएएस अफसरों से । उनका ख्याल था कि आईएएस अफसर होगा तो पढ़ा लिखा होगा, अंग्रेजी कायदे से जानता होगा, उसके अंदर सलीका होगा, हो सकता है अंग्रेजी साहित्य में रुचि हो, पश्चिमी संगीत की समझ हो । इसीलिए जब भी कोई नया कलक्टर कस्बे में आता वे एक बार उसके यहाँ जरूर जाते । भल्ला साहब इस गंदे कस्बे में सबसे अलग दिखते थे । उनके परिधान, कदकाठी, बोलचाल - हर बात में सुरुचि और अभिजात्य की झलक थी । भल्ला साहब को किसी ने बिना बोलर हैट लगाए घर के बाहर निकलते न देखा । किसी ऊँचे अफसर से दोस्ती हो जाती तो उसके संग वे अफसरों के क्लब में कभी बिलियर्ड तो कभी ब्रिज खेलते । भल्ला साहब का अनुभव था कि अधिकांश ऊँचे अफसर तो सलीकेदार होते थे पर उनकी पत्नियाँ उनकी साली की तरह होती थीं - फूहड़ और असभ्य । स्त्री जाति के बारे में भल्ला साहब का मत बहुत ऊँचा न हो सका, पर वे उन्हें सहन कर लेते थे ।
२४०
***
रायबहादुर भल्ला जहाँ तक हो सके अंग्रेजी में ही बोलना पसंद करते थे । बदकिस्मती यह थी कि इस मनहूस कस्बे में अंग्रेजी तो क्या कायदे से हिन्दी बोलने वाले भी कम ही थे । इस बात से उन्हें बहुत कोफ्त होती थी । उन्हें इस बात का मलाल सालता था कि इस उजड़े और उखड़े हुए कस्बे में अंग्रेजी बोलने का सलीका लोगों के पास नहीं था । रायबहादुर को मजबूरन कभी हिन्दी बोलना पड़ जाता तो

उनके मुँह का जायका बिगड़ जाता । इसी कारण वे बोलते बहुत कम थे । अफसरों की स्थिति भी बहुत बेहतर न थी - उनमें से शायद ही कोई कायदे की अंग्रेजी बोलता या समझता । रायबहादुर ने ऐसे लोगों के मुँह लगने को हमेशा अपनी तौहीन समझा ।
पर आईएएस की बात कुछ और थी । वे आईएएस को अंग्रेजों के जमाने के आईसीएस का ही वर्तमान संस्करण मानते थे । कभी कभी कोई कोई आईपीएस भी संयोग से आईएएस जैसा ही सलीके का निकल आता था । आईएएस भले ही भूरे रंग का हो पर उसकी वंशावली तो गोरी थी - इस बात से रायबहादुर भल्ला को अपने पिता के दिनों की याद आती और सांत्वना मिलती थी ।
रायबहादुर के घर में एक प्रोजेक्टर था जिस पर वे कभी टॉम और जेरी, कभी चार्ली चैपलिन या लॉरेल और हार्डी की चलती फिरती तस्वीरें बड़े शौक से देखते और अतिथियों को दिखाते । जेम्स बॉड की फिल्मों को उन्होंने सदा तौहीन की नजर से देखा । हालाँकि रायबहादुर ने थॉमस हार्डी का कोई उपन्यास पूरा पढ़ा या नहीं - यह तो पता नहीं पर हार्डी के मेयर ऑफ कासलब्रिज की प्रशंसा करने का कोई भी अवसर वे नहीं चूकते थे ।
सस्ती शराब से उन्हें नफ़रत थी । वे जब भी पीते तो या तो फ्रांसीसी या चिलियन वाइन या शिवाज रीगल व्हिस्की । या फिर कभी कभार ब्लू लेबल । वैसे शरारती लोगों ने कस्बे में अफवाह फैलाई थी कि तंगी के दिनों में उनके घर के बाहर देसी ठर्रे की खाली बोतलें देखी गई थीं । पर यह छोटे दिल वाले ईर्ष्यालु लोगों की मनगढ़ंत कहानी ही रही होगी ।
जेम्स बॉड को वे अंग्रेजों की संस्कृति में आई गिरावट और अमेरिकी दुष्प्रभाव का परिणाम मानते थे । चर्चिल के बाद अकेले पंडित नेहरू को ही उन्होंने स्टेट्समैन माना । इंदिरा गांधी को नेहरू के कारण वे आदर देने को तैयार थे पर बाकी राजनेताओं को उन्होंने वैसी नज़रों से देखा जैसे वे राजस्थानी गँवार उजड्डों को देखते थे । कहीं कोई क्लास नहीं, कहीं कोई सलीका नहीं । उनका मानना था कि नेहरू में क्लास था - हैरो कैम्ब्रिज का - जिसकी हल्की सी छाया शायद इंदिरा में थी । वे कहते थे कि -
इन टुंटपुंजिया नेताओं में क्लास नहीं है, ये गँवार हैं, अनपढ़ हैं, अधिकांश न अंग्रेजी पढ़ सकते हैं न बोल सकते हैं । इंदिरा में पिता की हल्की सी छाया है पर उसका लड़का बेहूदा और आवारा है ।
उनका मानना रहा कि लोकतंत्र भारत जैसे उजड्ड देशों के लिए नहीं है, जबतक लोग सभ्य नहीं हो जाते, यहाँ सैनिक शासन की आवश्यकता है ।

२४१

***

रायबहादुर को हँसते हुए किसी ने देखा न था । वे धीर गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे । हँसी मजाक, चुहलबाजी को उन्होंने सदा फूहड़पन का लक्षण माना । उनका मानना था कि देश में अपसंस्कृति बढ़ रही है और उसमें बम्बइया सिनेमा का बड़ा योगदान है । उन्हें लगता था कि यह देश गर्त में जा रहा है ।

मिसेज़ भल्ला उतनी गम्भीर न थीं । उनके चेहरे पर अक्सर हल्की मुस्कान की छाया दिख जाती । हम बहुत देर तक चुप रहे थे । वातावरण भारी हो चला था । हममें से कोई यह तय न कर पा रहा था कि क्या बोले जो फूहड़ न हो । अंत में मिसेज़ भल्ला ने ही चुप्पी तोड़ी और मेरी पिछली छुट्टियों की बाबत पूछा । मेरी छुट्टियाँ तो भभुआ में बीती थीं जो पिछड़ा हुआ उजड्ड कस्बा था, कोई सुंदर पर्यटन स्थल न था । मेरे पास बताने के लिए कुछ खास न था । मैंने थोड़ी और वाइन लेकर स्वयं के अंदर आत्मविश्वास भरा और मॉस्को में गुजारे अपने दिनों की बाबत बताने लगा । मिसेज़ भल्ला के चेहरे पर उत्सुकता की झलक दिखाई दी और रायबहादुर के चेहरे पर कुढ़न की हल्की छाया । मिसेज भल्ला रूस के मेरे अनुभवों के बारे में खोद खोद कर पूछने लगीं और रायबहादुर अपनी ऊब छुपाने के लिए छोटे टॉमी को पकड़ लाए और उसके झबरे बाल सहलाने लगे । टॉमी चुपचाप उनकी बगल में बैठ कर प्यार से पूँछ हिलाने लगा । अचानक मिसेज भल्ला चहकते हुए बोलीं :

"अजीब बात है । मेरे जीजाजी भी युवावस्था में आपकी तरह ही मार्क्सवादी रहे । परिवार के चक्कर में नौकरी न करनी पड़ती तो कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत ऊँचे पद पर होते । रिटायर होने के बाद उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी फिर से ज्वाइन की है और वे कलकत्ते में प्रगतिशील बुद्धिजीवी मंच के अध्यक्ष हैं, पत्र पत्रिकाओं में लेख लिखते हैं, कॉमरेड ज्योति बसु के घर उनका आना जाना है । एक बार तो कॉमरेड बसु के परिवार के साथ दीदी और जीजाजी ने गर्मियाँ लंदन में बिताईं । आपको पता होगा कॉमरेड बसु गर्मियों में लंदन जाना कभी नहीं भूलते, कलकत्ते में गर्मी बहुत पड़ती है ।

अरे, आप इतना शरमा क्यों रहे हैं ? लीजिए, थोड़ी और रेड वाइन लीजिए । मैंने जानबूझ कर वाइन के संग सिर्फ थोड़े से ऑलिव और प्याज के टुकड़े रखे ताकि आप बाद में खाना ठीक से खाएँ । आपके लिए मुर्गमुसल्लम बनवाया है । आप कहीं शाकाहारी तो नहीं हैं न ? अब ऑलिव तो यहाँ मिलता नहीं । पिछली बार जीजाजी लंदन से लाए थे ।

अच्छा हुआ, आप शाकाहारी नहीं हैं । शाकाहारी लोग कितने बोरिंग होते हैं । "

हम बात करते जा रहे थे और उधर तेज बारिश शुरु हो गई थी । अचानक बादल गड़गड़ाए और बिजली चली गई । धुप्प अंधेरा छा गया । फिर अचानक आसमान में बिजली चमकी और एक क्षण के लिए कमरे में रोशनी चमक उठी । पीठिका में बज रहा बीथोवन का पियानो कंचर्टो बंद हो गया था ।

मिसेज भल्ला उठ कर टटोलते हुए अंदर गईं और एक मोमबत्ती ले आईं । कमरे में महीन झिलमिलाती रोशनी फैल गई । रायबहादुर अब भी चुप बैठे धीरे धीरे वाइन पीते किसी सोच में डूबे थे । तभी अंदर से उनका नौकर लालू आया । लालू कोई तीस चालीस की उम्र का स्थानीय आदमी था । दुबला पतला, लम्बी बेतरतीब मूँछें और चंडुल सर वाला । लालू ने झुक कर रायबहादुर से पूछा : खाना लगा दूँ, साब ? रायबहादुर ने सिर हिला कर सहमति जाहिर की और हम उठ कर साथ ही लगे डाइनिंग रूम में चले गए । अचानक बिजली लौट आई और सारा घर बिजली की पीली रोशनी में नहा उठा ।

डाइनिंग रूम में बीच में एक चौकोर टेबुल लगा था जिस पर चमकता हुआ और कलफ़ किया हुआ टेबुल क्लॉथ बिछा था और दोनों तरफ करीने से तीन कुर्सियाँ लगी थीं । टेबुल पर तरह तरह के व्यंजन सजे

थे । रायबहादुर ने मेरी तरफ बैठने का इशारा किया । हम अपनी अपनी रेड वाइन की गिलासें लिए कुर्सियों पर बैठ गए । मैं टेबुल के एक तरफ और रायबहादुर और मिसेज भल्ला मेरे सामने । मैंने कनखी से रायबहादुर के चेहरे पर नजर डाली । मुझे लगा कि वाइन के समुचित उपयोग से उनके चेहरे का तनाव ढीला हो गया था । बल्कि एक क्षण के लिए मुझे लगा कि कहीं उनके चेहरे पर मुस्कुराहट की छाया तो नहीं उभर रही है - मैं तय नहीं कर पाया । टॉमी और जेरी - दोनों उनके पाँवों के पास दुम हिलाते बैठ गए । बीच बीच में उठ कर इधर उधर भागते और फिर लौट कर ऊं ऊं करते, दुलार जताते उनके पास बैठ जाते । रायबहादुर ने लालू को टॉमी और जेरी को बिस्किट लाकर देने के लिए कहा । मुझे लगा कि रायबहादुर कुछ बोलने वाले हैं ।

२४२

***

रायबहादुर मुँह खोलते उसके पहले ही मिसेज भल्ला बोलीं :

आप दीदी को कम कर आँकने की भूल न करिए । उस जमाने में मिरांडा हाउस से उन्होंने अंग्रेज़ी में एम ए किया । उनकी रंगमंच में बहुत पैठ रही । कलकत्ता में अब भी वे प्रगतिशील महिला रंगकर्मी संगठन की सचिव हैं । मैंने तो कई बार रायबहादुर से कहा कि हम कलकत्ता चले जाते हैं - वहाँ दीदी जीजाजी का संगसाथ है, बड़ा शहर है, तमाम तरह की गतिविधियाँ हैं । बंगदेश है, कला और संस्कृति की राजधानी है । इस मनहूस कस्बे में धूल के अलावा रखा क्या है ? मैंने कितनी बार कहा यहाँ कि जमीन जायदाद बेंच बूंच कर छुट्टी करो, कलकत्ते चले जाओ । अभी तो किसी तरह खिंच रहा है, पर बुढ़ापे में हमारी जिंदगी यहाँ कैसे गुजरेगी ? यहाँ तो कायदे का एक डॉक्टर तक नहीं है । आप तो आईएएस हैं, आप ही समझाइए न, शायद आपकी बात सुनें, और किसी की सुनते नहीं हैं, जिद्दी आदमी हैं ।

मैं पशोपेश में पड़ गया । मैं पहली बार उनके घर गया था, शुरु शुरु की जान पहचान और मिसेज भल्ला अपने पारिवारिक मसले में मुझे खींच रही हैं !

मिसेज भल्ला ने लालू को पानी लाने के लिए कहा । मुर्गमुसल्लम के साथ वाइन कम पानी ही अधिक चलता है । पानी का एक घूँट पीने के बाद बोलीं :

देखिए, अब कम्युनिज्म का जमाना तो रहा नहीं । जीजा जी खुद कम्युनिस्ट होते हुए भी जनसंघ या कांग्रेस ज्वाइन करने की सोच रहे हैं । अभी यह बात गुप्त है, परिवार के बाहर नहीं गई है, आपको तो पता ही है ऐसी बातें कितनी संवेदनशील होती हैं । कठिनाई यह है कि मार्क्सवाद से युवावस्था से पुराना सम्बंध है, मार्क्सवाद खून में घुल गया है, उससे छुट्टी पाना इतना आसान भी तो नहीं है ।

आप कभी मेरे जीजाजी से मिलिए । आपकी तरह ही बुद्धिजीवी हैं । वैसे तो बहुत अधिक बोलते नहीं, सुनते ही रहते हैं पर कभी आप जैसे बुद्धिजीवियों की संगत में बैठे हों और थोड़ी सी लाल वाइन का सेवन कर लिया हो तो फिर आप जीजाजी को सुनिए - ऐसी गूढ़ और विद्वत्तापूर्ण बातें आपको और किससे सुनने को मिलेंगी ! एक बार तो उनके घर एक अंग्रेज अतिथि आए थे । और लोग भी बैठे थे । पता नहीं जीजाजी को क्या हुआ - लगे शेक्सपियर की बखिया उधेड़ने । बेचारे गोरे अंग्रेज का चेहरा काला पड़

गया । हम उन्हें पीछे से इशारा करते रहे पर जीजाजी जब अपनी रौ में बहते हैं तो किसकी सुनते हैं ? कहने लगे - कहाँ शेक्सपियर और कहाँ हमारे गुरुदेव ! गुरुदेव के सामने सैकड़ों शेक्सपियर पानी भरेंगे । २४३

***

मुझे लगा कि रायबहादुर के चेहरे पर तिक्तता का लेप चढ़ रहा है, भृकुटियाँ तनना चाहतीं हैं, होंठ बोलना चाहते हैं । पर रायबहादुर मोहन भल्ला सभ्य समाज के अंगीभूत सदस्य थे, वे ऐसी कोई बात नहीं कहना चाहते थे जिससे एक नए अतिथि के सामने कड़वाहट फैले, दाम्पत्य की पवित्र धारा में अवरोध खड़ा हो जाय । वे बहुत देर से वाइन पी पी कर जज़्ब कर रहे थे ।

पर धैर्य की भी तो सीमा होती है, हो सकता है तथागत ने भी कभी वह सीमा लांघी हो, हमें क्या पता ? अंत में रायबहादुर से रहा न गया । बोले :

यह समाजवाद फमाजवाद फालतू ढंकोसला है । ज्योति बाबू मार्क्सवादी थे, सर्वहारा रहनुमा थे पर उनसे कलकत्ता की गर्मी बर्दाश्त नहीं होती थी, पूँजीवादी साम्राज्यवादी लंदन में गर्मियाँ गुजारते थे । उन्हें किसी ने किसी खेत, किसी फैक्टरी में कभी मेहनत करते न देखा । वे सिर्फ लकलक सफेद अद्धी का धोती कुर्ता पहन कर, गंभीर मुँह बनाकर मार्क्सवाद पर प्रवचन देते ।

ये सब ढोंगी हैं । अब मेरे साढ़ू साहब को ही देख लीजिए । मार्क्सवादी हैं पर कार एयरकंडीशन्ड न हो तो चढ़ने से इन्कार कर देते हैं - मेरे सामने किया है । व्हिस्की पीते हैं तो सिर्फ शिवाज रीगल या फिर ब्लू लेबल । एक बार उनका कोई शिष्य दुबाई से लौटते हुए ड्यूटी फ्री से टीचर्स ले आया उनको भेंट करने के लिए, आग बबूला हो गए, उसके सामने ही व्हिस्की की बोतल खोली और सारी व्हिस्की वाश बेसिन में बहाई । लोग अरे, अरे करते रह गए, मुँह देखते रह गए ।

और इनकी दीदी ! मैं क्या कहूँ । कहने को प्रगतिशील हैं और कोई रात ऐसी न होगी जब वे किसी न किसी बुर्जुवा पार्टी में शरीक न होती हों । घर में तो रात को शायद ही वे कभी भोजन करती होंगी । कभी लॉयन्स क्लब की मीटिंग तो कभी रोटरी क्लब की गोष्ठी ! हद है ।

और ऊपर से साहित्य और कला का जाली दावा । बंगाल में जाकर बस क्या गए, बंगाली हो गए । लगे बंगालियों की तरह डींग हाँकने । जब देखो तब टैगोर, जब देखो तब सत्यजित राय । हमारे बंगाल में ये, हमारे बंगाल में वो, जैसे कि बंगाल न होता तो धरती सूनी हो गई होती । दुनिया में संगीत है, कला है, साहित्य है तो बंगाल में है । फालतू की बात । ठीक है, सत्यजित राय इतने बुरे भी नहीं हैं, पर गरीबी का व्यापार इतना क्यों किया ? और टैगोर ! टैगोर के गीत गाओ और रोओ । बंगालियों ने रोने के अलावा कुछ किया ? एक काम कायदे से नहीं करना, दिनरात रोना । महा आलसी कामचोर कौम है । मैं तो इस घर में कलकत्ता कलकत्ता सुन सुन कर आजिज आ गया हूँ ।

आप ही बताइए, आप तो आईएएस हैं, इस जिले के मालिक हैं, क्या रखा है कलकत्ते में ? सिवा गंदगी और होहल्ले और टैगोर टैगोर के शोर के ? ठीक है - यह सड़ा हुआ कस्बा है, अभी पानी बरस रहा है, थोड़ी देर में सड़क पर निकलना मुश्किल हो जाएगा । नालियों का बदबूदार पानी सड़क पर होगा और

आप उसमें पांयचे उठा कर किसी तरह नाक बंद कर चलेंगे । पर कुछ भी हो यहाँ झूठे और पाखंडी आभिजात्य का घमंड नहीं है । आप क्या कहते हैं ?
ऐसा कहते हुए रायबहादुर ने मुर्गे की टाँग को प्लेट में एक तरफ किया और वाइन की एक और घूँट ली । मैंने कनखी से मिसेज भल्ला की ओर देखा - उनके गोरे मुख पर थोड़ी सी और सफेदी उतर आई थी, ललाट पर पसीने की दो नन्हीं नन्हीं बूँदें चमकने लगी थीं ।
डिनर अब पूरा हो चुका था । रायबहादुर ने पोर्ट के लिए मुझसे पूछा, केक के साथ । मेरे मना करने का कोई प्रश्न ही नहीं था । बाहर धुआंधार बारिश हो रही थी और पेड़ तूफान में शोर मचा रहे थे ।
२४४

***

हम देर तक खरामा खरामा पोर्ट पीते, केक का स्वाद लेते रहे । पिछले हफ्ते ही रायबहादुर का जन्मदिन था जब यह केक कटा था । मिसेज भल्ला ने इतने दुलार से अपने हाथों से धीरे धीरे यह केक बनाया था । केक के ऊपर आइसिंग थी और उसके ऊपर चेरी । आधा केक बचा था जो हम खा रहे थे । बर्थडे तो बीत गया था पर मुझे लगा कि देर से ही सही हमें हैपी बर्थ डे गीत गाना चाहिए । लालू, मिसेज भल्ला और मैं गाने के लिए खड़े हुए । दोनों कुत्ते भी अपनी जगह से उठ कर आ गए, रायबहादुर के पैरों से लिपट गए । रायबहादुर उनके दुलार से अभिभूत उठ खड़े हुए । हम सब ने पहले "हैपी बर्थ डे टू यू" उस तरह गाया जैसे गाने की परम्परा है । मोमबत्तियाँ न होने का मलाल जरूर रहा । फिर हमने दूसरा गीत गाया जो हिंगलिश में लिखा गया है : बार बार ये दिन आए, बार बार ये दिन जाए, तुम जियो हजारों साल, साल के दिन हों पचास हजार, हैप्पी बर्थ डे टू यू रायबहादुर, हैप्पी बर्थ डे टू यू ।
बाहर बारिश रुक गई थी । खिड़कियों के रस्ते रूह को ताजा करने वाली मद्धम मद्धम ताजी   बयार हौले हौले आई और हाल में ही आई कलकतिया कटुता के बादल छितर बितर हो उठे । मिसेज भल्ला के चेहरे पर पहले जैसी ही मुस्कान उतर आई और रायबहादुर के मुखड़े पर कोमलता का रंग उतर आया । दोनों पिल्ले शायद माहौल की नज़ाकत, उसके मासूम सौंदर्य को आदमियों से बेहतर पहचानते थे, वे खुशी के मारे इधर उधर भागते कूदते, कभी रायबहादुर को चाटते, कभी मिसेज भल्ला को । एक बार तो मेरी गोद में आने के लिए मचले पर मेरी प्यार भरी झिड़की से रायबहादुर के पास लौट गए । देखिए, प्रेम चीज ही ऐसी है । प्रेम इत्र की खुशबू की तरह है, प्रेम दिखता नहीं है, आपके नथुनों के रास्ते आपके दिल तक पहुँच जाता है चाहे आप आदमी हों या कुत्ता ।
रायबहादुर और मैं आसपास सोफे पर बैठे थे । रायबहादुर बहुत देर से चुप थे । सोच में डूबे थे । शायद किसी पुरानी मुहब्बत की याद ने उन्हें छोपा होगा । मुझे क्या पता, बस यह मेरा अनुमान है । मुझे अचानक रक्तिमा की याद ने छोपा ।
रायबहादुर ने थोड़ी पोर्ट आहिस्ता आहिस्ता होठों के रस्ते मुँह में उंड़ेली, फिर प्यार से उसे मुँह में वैसे चुभलाते रहे जैसे बच्चे लेमनचूस चुभलाते हैं । फिर मिसेज भल्ला की ओर स्नेहसिक्त नजरों से देखते हुए बारीक और मुलायम स्वर में बोले :

आप सोचते होंगे - मुझे समाजवाद से घृणा है । पर ऐसा नहीं है, मैं खुद खाँटी समाजवादी हूँ ।
२४५

***

रायबहादुर और मैं बातें करने लग गए और मिसेज भल्ला "एक्स्क्यूज मी" कहकर शायद बाथरूम चली गईं । तभी बगल के कमरे में फोन की घंटी बजी । थोड़ी देर बाद अंदर से लालू की आवाज आई :

कलकत्ता से बड़ी दीदी का फोन है ।

मिसेज भल्ला जल्दी से बाथरूम से निकल कर लालू से फोन लेने अंदर के कमरे में चली गईं । पता नहीं क्यों मुझे लगा कि रायबहादुर का चेहरा थोड़ी देर के लिए जरा सा विषण्ण हुआ, ताजगी कुछ कम सी हो गई । फोन की घंटी की आवाज सुन कर टॉमी और जेरी - दोनों भागते हुए अंदर चले गए थे । मिसेज भल्ला अपनी दीदी से बात करने लगीं और टॉमी और जेरी रायबहादुर के पास लौट आए । दोनों प्यार से टकटकी लगाकर रायबहादुर को देखते हुए पूंछ हिला रहे थे और रायबहादुर उनके बालों में उंगलियां फेर रहे थे । फिर टॉम और जेरी वैसी धीमी हाई पिच्ड ध्वनि में कूं कूं करने लगे जैसी कुत्ते तब करते हैं जब वे दुलार के अतिरेक में प्रवेश करते हैं ।

मुझे लगा कि रायबहादुर भावुक हो रहे हैं । कहने लगे :

आपसे पहली मुलाकात है पर एक ही मुलाकात में अंतरंगता सी महसूस हो रही है । आप दूसरे आईएएस वालों की तरह नहीं हैं, भले आदमी की तरह हैं । और इस ऊबाऊ फूहड़ शहर में कितने भले आदमी होंगे ?

फिर अचानक उन्होंने मेरे बाएं कंधे पर हाथ रख कर कहा :

मैं आपको बोर तो नहीं कर रहा हूँ ? मुझे पता है मैं बहुत बोलता हूं ।

मैंने बोर होने से इन्कार किया और कहा कि ऐसी दिलचस्प बातों से भला कोई कैसे बोर हो सकेगा ?

रायबहादुर अचानक अंग्रेजी बोलने लग गए :

यू नो आई रेट डॉग्स हायर दैन ह्यूमन्स । आई ऐम नॉट सेइंग दिस लाइटली । आई ऐम ऐन ओल्ड मैन, आई हैव सीन लाइफ ।

यू नो टॉम ऐंड जेरी कम फ्रॉम मसूरी । ए ब्रीडर फ्रेंड गेव देम टू मी व्हेन दे वेयर लिट्ल बेबीज़ । यू नो दे आर कजिन्स । दे आर ऐक्चुअली ऑफ जर्मन एन्सेस्ट्री । पुवर बेबीज़ हैव नो कम्पनी इन दिस गॉडफॉरसेकेन फिल्थी प्लेस ।

उन्होंने रूमाल से आंखें पोंछीं, फिर उन्होंने गहरी सांस ली, थोड़ी सी पोर्ट टॉम और जेरी के गलों में भी डाली । मुझे लगा वे दोनों मदिरा के शौकीन हैं, उचक उचक कर बोतल के पास जाने लगे । रायबहादुर ने उन्हें थोड़ी सी और मदिरा पिलाई और फिर बोले :

बींग ए सोशलिस्ट आई ऐम नॉट एलाउड टू बिलीव इन गॉड । बट बिलीव मी गॉड मेड डॉग्स टू बि विद ह्यूमन्स ऐंड ही मेड ह्यूमन्स टू बी विद डॉग्स ।

२४६

***

रायबहादुर ने लालू से अंदर से हवाना सिगारें मंगवाईं और एक मेरी तरफ बढ़ाई । मैंने पहले कभी सिगार न पी थी, सिगरेट भी बहुत न पी थी । पर वे इतने प्रेम से दे रहे थे कि मैं इन्कार न कर सका । उन्होंने ऊपर आलमारी में से एक लाइटर निकाला, मेरी और फिर अपनी सिगार जलाई । वे रौ में थे । बोले :
देखिए, मैं अमूमन सिगार नहीं पीता । पर आज समाजवाद की बात चली तो बीते दिनों की याद पुराने बाई के दर्द की तरह उभर आई, जब हम समाजवाद की धुन में रमे थे, पागलों की तरह । वे जवानी के जुनूनी दिन थे । हम समाज को बदल देना चाहते थे । हमसे यह दकियानूसी प्रतिक्रियावादी जर्जर समाज देखा न जा रहा था । हम इसको जला कर राख कर देना चाहते थे ताकि हम एक नया समतावादी, शोषणमुक्त समाज बना सकें । जब इमारत ढहने लगे तो उसपर लीपापोती करना, रंग रोगन लगाना न सिर्फ बेवकूफी है, बल्कि खतरनाक हरकत भी है । लीपापोती से इमारत के स्वास्थ्य के बारे में धोखा हो सकता है और जब इमारत अचानक एक दिन गिरे तो उसके मलबे के नीचे लोग दब सकते हैं । ऐसी इमारत को समय रहते ढाह देना,जमीन को समतल करना ही बुद्धिमत्ता है, जर्जर इमारत को कंधे पर ढोना आत्मघाती मूर्खता है । जब हम इस जद्दोजहद में लगे थे, दुनिया के दूसरे गरीब देशों में भी मेहनतकश लोग ऐसी ही हरकतों में जी जान लगा रहे थे । रूस तो उतना गरीब तब न था, भुखमरी कम हो गई थी पर चीन में माओ, क्यूबा में फिडेल, बोलीविया में चे - ये हमारे नायक थे । इन सब में चे तब हमें बहुत मोहित करते थे । हम सब चे बनना चाहते थे । चे की तरह ही दाढ़ी, वैसे ही बिखरे बाल, वही बेपरवाह आलम और फिर चे की तस्वीर वाली टी शर्ट । हम चे के दीवाने वैसे ही थे जैसे आजकल लड़के डिम्पल के और लड़कियाँ राजेश खन्ना की दीवानी हैं ।
आप मुझे देख कर विश्वास न करेंगे - तब मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उभरता हुआ छात्र नेता था । छात्रसंघ के चुनाव में मैं स्टूडेंट्स फेडरेशन के टिकट पर उपाध्यक्ष पद के लिए लड़ा और जीत गया । यह स्टूडेंट्स फेडरेशन के उम्मीदवार की उस विश्वविद्यालय के छात्रसंघ के चुनावों में पहली और अंतिम विजय थी । चुनावों के कुछ दिन बाद ही सांस्कृतिक आदान प्रदान की योजना के तहत देश भर से चुनिंदा छात्र नेताओं का सरकारी खर्चे पर क्यूबा यात्रा का कार्यक्रम बना । आपको तो पता होगा पंडित नेहरू कांग्रेसी होते हुए भी क्रांतिधर्मा समाजवादी थे, समाजवादी युवाओं से उन्हें बेपनाह मुहब्बत थी, उनके रहते समाजवादी सांस्कृतिक गतिविधियों में किसी गतिरोध का कोई प्रश्न न था । उन्हीं दिनों हवाना में एक सभा में चे को फिडेल के संग देख कर मैं रोमांचित हुआ । यह क्यूबाई सिगार उसी समाजवादी जज़्बे का प्रतीक है । आइए, हम समाजवाद की भावुक याद में सिगार पीएं ।
ऐसा कहते हुए रायबहादुर ने सिगार का एक कश लिया और भावुक उठे । कमरे में कीमती लैम्प की बहुत नर्म पीली रोशनी फैली थी । रायबहादुर के मुंह से सलीके से धुएं के छल्ले निकले और मेरे मुंह से बेतरतीब । देखते देखते हमारे मुँहों से निकलते सिगार का भीना खुशबूदार बारीक धुआँ हौले हौले कमरे में फैला ।

२४७

***

हम दोनों बहुत देर तक चुप बैठे सिगार से धुएँ के छल्ले निकालते रहे । रायबहादुर प्रोफेशनल थे, मैं नौसिखुआ था । उनके धुएं के छल्ले कलापूर्ण थे, मेरे फूहड़ और बेतरतीब । बगल के कमरे से टेलिफोन पर बातचीत की आवाज़ आ रही थी । मिसेज़ भल्ला अपनी दीदी जीजाजी से लम्बे वार्तालाप में व्यस्त थीं । टॉमी और जेरी भी मदिरापान के बाद थके से दिखते थे । ड्राइंग रूम के एक कोने में चुपचाप लेटे थे । मैंने कनखी से अपनी कलाई घड़ी में समय देखा । मैं नहीं चाहता था कि रायबहादुर मुझे घड़ी में समय देखता हुआ देखें । ऐसा होता तो यह अशिष्टता होती । रात के दस बज चुके थे, बाहर घना अंधेरा छाया था और रायबहादुर की बात समाप्त नहीं हुई थी । मेरा अनुभव रहा है कि अच्छी मदिरा का सेवन हो और कायदे का साथ हो तो बात की रस्सी खिंचती ही चली जाती है । अचानक तेज तेज बारिश फिर शुरु हो गई, बादल गड़गड़ाए और बिजुरी चमक उठी । रायबहादुर जो थोड़ी देर से मौन थे, संभवत: हवाना की मधुर स्मृति में डूबे थे, अचानक जैसे गहरी नींद से जगे ।

देखिए, आप आईएएस हैं, यह मैं कैसे मानूँ कि यह आपके दिल में यह बात न आई हो कि यह कैसा खब्ती शख्स है जो खुद को मार्क्सवादी कहता है और मार्क्सवाद को गालियाँ भी निकाल रहा है !

ऊपर से दोनों बातों में विरोधाभास दिखता है पर वास्तव में है नहीं । मैं अभी भी समाजवादी हूँ - खाँटी समाजवादी । मैं जिन्हें गालियाँ निकाल रहा हूँ वे समाजवादी नहीं हैं, समाजवाद के व्यापारी हैं । समाजवाद के नाम पर लूटपाट ठीक नहीं है । चेयरमैन और चे ग्वेवारा की बात अलग है, वे बड़े लोग थे, महान थे, महान लोगों पर सामान्य नियम लागू नहीं किए जा सकते । उनपर लोग जनसंहार का आरोप लगाते हैं, पर यह ठीक नहीं है, जब कोई बड़ी क्रांति होती है तो कुछ कोलैटरल डैमेज होता ही है, इसके लिए क्रांतिकारियों को दोष देना न सिर्फ नासमझी है, बल्कि अनैतिक भी है ।

पर ये भारतीय समाजवादी ! ये ससुरे समाजवादी हैं ! मैं इनकी नस नस पहचानता हूँ । और ये हिन्दी वाले महान प्रगतिशील साहित्यकार ! आपात्काल में ये सब इंदिरा गांधी के सामने टॉमी और जेरी की तरह पूँछ हिलाते कूं कूं करते थे । देख कर मेरा तो जी गिनगिना गया, वितृष्णा हो गई, मैंने हिन्दी साहित्य को लात मार कर अपनी जिंदगी से बेदखल किया । उनसे बेहतर तो जेम्स हेडली चेज है । ये सारे तथाकथित भारतीय समाजवादी दोमुहें साँप हैं । आजादी के बाद भारत में एक ही कायदे का समाजवादी हुआ - पंडित नेहरू । फिर बाद में कुछ हद तक जयप्रकाश नारायण । लोहिया भी थोड़ा बहुत ।

मैं अभी एक और बात कहूँ तो आप विश्वास नहीं करेंगे । सोचेंगे - मैं मजाक कर रहा हूँ । पर सर, मैं मजाक बहुत कम करता हूँ । हाल में मैं संघ के सम्पर्क में आया तो मुझे लगा कि संघ वालों में तो समाजवाद कूट कूट कर भरा है । दीनदयाल का अंत्योदय क्या है ? एक बार मैं इस बात पर गम्भीरता से सोचने बैठा तो मुझे लगा कि समाजवाद की जड़ें तो भारतीय संस्कृति में बहुत पुरानी, बहुत गहरी हैं । मुझे तो शिव आदि समाजवादी लगते हैं । देखा आपने उनके गण कैसे हैं ? सब दबे कुचले वंचित समाज से हैं, शिव के यहाँ भेदभाव नहीं है । शिव से बड़े मार्क्सवादी तो स्वयं बाबा मार्क्स भी नहीं हैं ।

तभी से संघ के प्रति मेरे हृदय में सहानुभूति का भाव जगा । एक तरफ तो संघी और दूसरी तरफ मेरे साढ़ू जैसे अवसरवादी तथाकथित मार्क्सवादी ।
रायबहादुर बोले ही जा रहे थे कि कमरे के दरवाज़े का पर्दा खींचकर मिसेज़ भल्ला आईं और रायबहादुर की तरफ़ मुखातिब हो कर बोलीं :
सुनिए, अगले हफ्ते दीदी जीजा जी यहाँ आ रहे हैं ।
रायबहादुर चुप अपनी पत्नी का मुख देखने लगे, चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उतर आईं । मैंने सोचा अब मुझे विदा लेनी चाहिए ।
मैंने फिर मिलेंगे कभी का वादा करते हुए उनसे विदा ली । बाहर ठहाठह पानी बरस रहा था । महंगू बरामदे में से उठा और उसने सामने ही खड़ी गाड़ी का दरवाजा खोला । मिसेज़ भल्ला ने बार बार मना करने पर भी मुझे एक छाता और मिठाई का डब्बा पकड़ाया ।
२४८
***
छाता खोलते खोलते भी मैं थोड़ा भींग गया । पर सच कहूँ तो मुझे आज तक यह बात समझ में न आई कि लोग बारिश में भींगने से डरते क्यों हैं ? आखिर बारिश होती ही क्यों है ? जो धूप में न नहाया, बारिश में न भींगा, हवाओं के संग न झूला, वोदका में न डूबा - उसके आदमी होने के बारे में मुझे शक है ।
महंगू बेचारा बड़ा भोला आदमी । सात्विक, शाकाहारी । रायबहादुर के यहाँ बरामदे में अकेले बैठ कर ही महंगू ने भात दाल खाया । किसी ने उसे लाल वाइन न दी, केक न दिया । मैं इस बात को लेकर दुविधा में डूबा । मुझे लगा कि समानता के सिद्धांत के हिसाब से तो मैं, महंगू, रायबहादुर, मिसेज भल्ला - सब बराबर हैं, फिर महंगू को केक क्यों नहीं मिला ? क्या इसलिए कि केक में अंडा था और भगत महंगू शाकाहारी था ? अजीब बात है न कि आदमी के दिमाग में से क्या क्या रेलगाड़ी की तरह खड़खड़ाता गुजरता रहता है । रेलगाड़ी कभी एक स्टेशन पर बहुत देर नहीं रुकती ।
हम कार में बैठ गए थे । महंगू बीड़ी सुलगाने ही जा रहा था कि पता नहीं क्या सोच कर बीड़ी का डब्बा उसने वापस कमीज की ऊपरी जेब में रख लिया । बाहर बारिश अपनी रवानी पर थी - पूरे जोश में । बारिश को किसी समाजवाद की परवाह न रही । सड़क पर पानी इकट्ठा हो गया था । पेड़ पागलों की तरह हवा में झूमते थे, उनकी शाखें जगह बेजगह टूट टूट गिरी थीं । बदहवासी का मंज़र था । प्रकृति समाजवाद पूँजीवाद के नियमों से बेखबर सी मालूम होती थी ।
जैसा कि रिवाज है, मैं महंगू के बगल की सीट में बैठा था । मैं ख़्यालों में खो गया । कभी अचानक कानों में - जिंदगी भर नहीं भूलेगी वो बरसात की रात - का गीत बजता (हालाँकि इस गँवार कस्बे में किसी हसीना का कोई नामोनिशान न रहा) तो कभी मॉस्को में मेरे संग कैंटीन में उस सुबह चाय पीती नताशा का भोला मुखड़ा मेरी आँखों के सामने तैर जाता तो कभी रक्ताभ वस्त्रों में रक्तिमा का नारीवाद

पर जोशीला भाषण याद आता । पता नहीं यह मैं था कि लाल वाइन थी ? ऐसे प्रश्नों के उत्तर ढूँढना फालतू है, बाबा मार्क्स भी ऐसी गुत्थियां न सुलझा सके ।
बंगले पर पहुँचते पहुँचते बारिश का शोर धीमा पड़ गया था, पेड़ नाचते नाचते थक से गए थे, सुस्ताने लगे थे । मैंने कपड़े बदले, हाथ मुँह धो कर मच्छरदानी के अंदर सो गया । ऐसी गहरी नींद आई जैसी जमाने से न आई थी । सुबह फोन की घंटी बजी तो नींद खुली । मैं अलसाया सा उठा । बाहर अब बारिश का नामोनिशान न था । शिशु सूर्य के प्रकाश में धरती का मुख सद्य:स्नाता षोडषी सुंदरी की भाँति चमक उठा था । रातरानी के फूलों की मीठी गंध थिर हवा में घुली थी ।
मैं अलसाता हुआ मच्छरदानी से बाहर निकला, दो तीन अंगड़ाइयां लीं, दरवाजे के बाहर का नजारा आँखों में भरने की बेकार कोशिश की । महंगू ने कहा - साब, दिल्ली सरकार से फोन आया है ।
२४९

***

फोन भारत सरकार के गृह मंत्रालय से था । मुझे बात कुछ समझ में न आई । उधर से आता कोकिला कंठ सदृश मधु सा मधुर स्त्री स्वर मेरे बाएँ कान में भरा :
आप ....जी हैं न । भारत सरकार के माननीय गृह राज्य मंत्री सर आपसे बात करना चाहते हैं ।
मुझे समझ में नहीं आया । अखबार जो रोज ठीक से न पढ़े उसे समझ में भी क्या आएगा ? फोन पर चंदन था । मुझे उसकी आवाज पहचानने में थोड़ा समय लगा । अब चूँकि मैं बाबू था और चंदन माननीय मंत्री, इसलिए मैंने गुड मॉर्निंग चंदन सर कह कर सम्बोधित किया । चंदन इस बात से उखड़ गया । गाली देता हुआ बोला :
अबे, मैं मंत्री वंत्री दफ्तर में हूँ, दोस्तों के संग नहीं ।
उसके ऐसा कहने से हमारे बीच की असहजता कुछ कम हुई, तनाव ढीला पड़ा । हमने एक दूसरे के हाल चाल लिए । ज ला ने विश्वविद्यालय की उस दिन की मुलाकात के बाद हम मिले न थे । हमारे रास्ते जुदा जुदा थे । वह संघी था, मैं वामपंथी ।
चंदन ने बताया कि वह आपात्काल में मीसा में बंद रहने के बाद छूटा था । थोड़े दिनों तक वामपंथ से ब्रीफ अफेयर के बाद वह फिर संघ में लौट आया था । नई सरकार बनी तो संघ के कोटे से उसे राज्यमंत्री का पद मिला । उसे उम्मीद थी कि मंत्रिमंडल के अगले फेरबदल में प्रधानमंत्री उसे कैबिनेट रैंक देंगे । इस बाबत वह अक्सर नागपुर जाता, संघ की गोष्ठियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेता । वामपंथ से थोड़े दिनों के अफेयर से उसके बारे में संघ समाज में जो असहजता थी, वह उसके अथक प्रयास से धुल गई थी ।
चंदन ने मेरे बारे में पूछा तो मैंने बताया कि यद्यपि मार्क्सवादी के प्रति मेरी निष्ठा अटूट और अक्षुण्ण है पर जीवन की गति विचित्र है - किसे पता जीवन की दरिया की धारा कब कौन सा मोड़ ले ले । मैंने अपने प्रोफेशनिलज्म के बारे में उसे आश्वस्त किया ।

वास्तव में चंदन को एक विश्वस्त सेक्रेटरी की तलाश थी । उसके पास जो इस समय मदरासी सेक्रेटरी था उसके साथ कई सारी दिक्कतें थीं । पहली बात तो यह कि उसे हिन्दी नहीं आती थी और चंदन की अंग्रेजी बस ऐवें थी । इससे कई बार कन्फ्यूजन फैलता था । इसके अलावा चंदन को संदेह था कि उसका सेक्रेटरी उसके ऊपर जासूसी करता था और वह किससे मिलता है, जुलता है, क्या बोलता है आदि की बातें वह प्रधानमंत्री कार्यालय में एक दूसरे मदरासी सेक्रेटरी को बताता था । विभाग में अविश्वास का माहौल फैल रहा था ।
चंदन का इशारा साफ था । मैं अचम्भे में था कि एक संघी मंत्री वामपंथी सेक्रेटरी क्यों कर चाहता है !
२५०

***

चंदन ने एक और बात कही जो मेरे कानों में बम की तरह फूटी :
एक और बात तुम्हें बताऊं, तुम्हारी मुंहबोली बहन रक्तिमा अब तुम्हारी भाभी बन गई है । क्या बताऊं यार, हमें बहुत हड़बड़ी में शादी करनी पड़ी, सबको बताने का मौका न मिला, मेरे माता पिता को भी बाद में पता चला ।
२५१

***

मेरे प्रिय चतुर सुजान मित्रों, ऐसा नहीं कि सिर्फ आप ही अचम्भे में हैं कि रक्तिमा का विवाह चंदन से कैसे हुआ । मेरा अचम्भा आप से कम न था । मित्रों, मेरे अचम्भे का आपको अनुमान नहीं है ।
मेरे हाथ से टेलिफ़ोन गिरते गिरते बचा था, महंगू ने जल्दी से मुझे थामा न होता, एक गिलास फ्रिज का बर्फीला ठंढा पानी पीने को न दिया होता तो मैं वहीं फर्श पर धड़ाम से गिरा होता । क्या पता मेरे कूल्हे की हड्डी ही टूट गई होती ।
पर जब मेरी उम्र बढ़ी है, बालों पर सफेदी चढ़ी है, जिन्दगानी के विविध रंगों से मुलाकात हुई है तो अब जब ठंढे दिमाग से सोचता हूं तो किसी बात पर अचम्भा नहीं होता । दुनिया के रंग ऐसे हैं, ढंग ऐसे हैं । जरा सोचिए नेहरू जी के जमाने में कोई कल्पना कर सकता था कि उनका परनाती या परनाती का जीजा या जीजा का बेटा एक दिन भारत के प्रधानमंत्री पद का दावेदार बनेगा ? हे सुधी पाठकों, मेरी बात मान लीजिए, अचम्भा होने की आदत छोड़ दीजिए । यह दुनिया है, यहां कभी भी कुछ भी हो सकता है, रीछ हवाई जहाज उड़ा सकता है, चूहा शास्त्रीय संगीत गा सकता है, भैंस डिस्को डांस कर सकती है ।
बहरहाल आपको बताने की जरूरत नहीं कि रक्तिमा की सगाई उस सजीले नौजवान से हुई थी जो ज ला ने छात्रसंघ के अध्यक्ष का चुनाव तब जीता था जब रक्तिमा जेंडर स्टडीज में उच्च शिक्षा के लिए हार्वर्ड चली गई थी । वहीं हार्वर्ड में ही इस प्रेमगाथा ने करवट बदली थी ।
उस दिन तो मैं इस विषय पर चंदन से बात करने की स्थिति में न था । मेरे माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगी थीं, बल्कि मेरे बाल पसीने से भींग कर गीले हो गए थे, मेरा हलक सूख गया था और जैसी कि पुरानी परम्परा है मेरा हृदय धौंकनी की तरह धड़क रहा था । मैं उस दिन बहुत बात न कर पाया ।

वह तो मैंने दो दिन वैलियम की गोलियां खाई हैं तो मुझे चैन आया है, सावधानी से हौले हौले चंदन से सारी बात सुनने का हौसला इकट्ठा हुआ है । मैं दिन में वैलियम लेता और रात में वोदका । बेचारे भोले भाले मंहगू ने मेरी देखभाल न की होती तो पता नहीं मेरा क्या होता ? ईश्वर हर आईएएस अफसर को महंगू जैसा चपरासी दे ।
चंदन से जो पता चला वह लम्बा किस्सा है । सारा किस्सा बताने में आपके बोर होने का खतरा है । यह खतरा मैं मोल लेने को तैयार नहीं हूं । आजकल फालतू के लम्बे किस्से सुनने के लिए किसके पास धैर्य है ? इसलिए आपके लिए संक्षेप में खुलासा करता चलूंगा ।
२५२
***
एकाएक मुझे ख्याल आया कि मैंने अपनी पत्नी के बारे में आपको ठीक से बताया नहीं । हो सकता है सुधी पाठकों ने अनुमान लगाया हो कि ऐसा मेरे अवचेतन में गहरे दबी पितृसत्तावादी कुंठा के कारण हुआ हो । कुछ विद्वान सम्भवत: यह सोचते हों कि मैंने पुराने स्टाइल के शर्मो लिहाज के कारण बात छोड़ दी हो । पर मैं सच बताता हूँ - यह दोनों कारण सच नहीं हैं । यह सच है कि मैंने जब भी आत्मनिरीक्षण किया, मुझे अपनी कुंठाओं का बोध हुआ - तमाम कुंठाएँ, तरह तरह की कुंठाएँ । मैं शर्मीला भी बहुत हूँ, झेंप जाता हूं । पर आईएएस बनने के बाद मुझमें अब आत्मविश्वास बहुत आ गया है । और फिर रक्तिमा, नताशा और वल्लरी के बारे में बताने में तो मैं नहीं शर्माया, फिर अपनी सगी पत्नी के बारे में बताने में क्या लजाना ! लब्बोलुबाब यह कि पत्नी के बारे में ठीक से न बताने के पीछे कोई जटिल मनोवैज्ञानिक कारण न थे, मेरा आलस्य, मेरा भुलक्कड़पन था ।
आपको तो पता ही है कि मेरी पत्नी ललिता पुलिस के बहुत बड़े अफसर की बेटी थीं, बल्कि अभी भी हैं । हमारे विवाह के समय मेरे ससुर जी बंबई महानगर के पुलिस कमिश्नर रहे । पिता की छोटे बड़े शहरों में नियुक्ति और बार बार ट्रांसफ़र के चलते पहले बालिका और बाद में युवा स्त्री ललिता का व्यक्तित्व लगातार निखरता गया । जहां जाती वहीं की भाषा सीख लेती । पर बम्बई में अधिक समय बिताने के कारण और वहाँ के उच्च वर्ग, विशेष कर सिने जगत के लोगों के संग साथ के कारण उनका अंग्रेजी पर विशेष अधिकार था । अंग्रेजी बोलने के उनके लहजे में हल्का सा अमेरिकी पुट था जिसे वे जब कभी किसी छोटे शहर में जातीं या मामूली लोगों के साथ होतीं तो थोड़ा क्षीण करने का प्रयास करतीं । ऐसा शायद इसलिए कि कभी कभार अमेरिकी पुट के कारण मामूली लोगों को उनका कहा समझ में नहीं आता । मेरे साथ स्वयं एक दो बार ऐसा हुआ ।
हमारा विवाह गोवा समुद्र तट पर एक महँगे होटल में हुआ था जिसे मेरे ससुर जी ने किराए पर लिया था और जो उनके सामाजिक स्टेटस के अनुकूल था । जैसा कि गवंई गवांर मांओं का स्वभाव होता है, मेरी माँ का कहना था कि विवाह भभुआ में हो । ऐसा माँ क्यों कहती थी - यह समझते हुए भी हम यह नहीं कर सकते थे । प्रश्न ही नहीं उठता था । भद्द मचती, अशोभनीय हो जाता । मेरे पिताजी बीच में डोल रहे थे । उनके पुराने संस्कार माँ से सहमत होने के लिए खींच रहे थे, पर पिताजी बुद्धिमान थे,

उन्होंने जमाने की बदलती हवा का रुख पहचान लिया था और माँ को मना कर गोवा के लिए हामी भर दी थी । उनका यह भी कहना था कि उन्होंने और माँ ने कभी समुद्र तट न देखा था, इस बहाने यह मनोरथ भी पूरा होगा ।
मेरे पिताजी और माँ तो गोवा को अकचका कर ऐसे देखने लगे जैसे कोई अफ्रीकी शरणार्थी पहली बार इंगलैंड को देखता है । वह विशाल होटल, वे सुसज्जित कमरे, वे मोटे मोटे गद्देदार बिस्तरे, फर्श पर बिछी वे महंगी कालीनें, वे मोटे सफेद तौलिए, वे चकचकाते स्नानगृह, छतों से झूलते रंगबिरंगी झिलमिल रोशनी बिखेरते वे हाथी से भारी झाड़फानूस । मैं बहुत डरा हुआ था कि मेरे गवंई गँवार माता पिता अनजाने में कोई ऐसी हरकत न कर दें जिससे बेइज्जती हो जाए । उन्होंने तो पहले कमोड तक का इस्तेमाल न किया था । अब गोवा के इस पंचतारा होटल में देसी शौचालय कहाँ मिलता ?
पर मैंने इसके बारे में यथासंभव तैयारी की थी । अंग्रेजी पत्रिकाओं के जरिए पंचतारा होटलों के स्विमिंग पूलों, स्नानागारों, शौचालयों, गरम और ठंढा पानी मिलाने की तकनीकों से मैंने उनका परिचय करवा दिया था । मेरे पिताजी तो बेचारे यह भी मान गए थे कि वहाँ उन्हें यदि शैम्पेन दी गई तो वे ना नुकुर न करेंगे, मुस्कुराते हुए किसी तरह एक दो घूँट पी लेंगे । माँ इस बात पर राजी न हो सकी थे । उसके संस्कार अधिक रूढ़ थे ।
२५३
***
उस जमाने के लिहाज से भी ललिता नाम थोड़ा बोरिंग था - बहन जी टाइप में । दादा की जिद थी, कोई उपाय न था । पर वास्तव में तो लोग उन्हें डेज़ी के नाम से ही जानते रहे । ललिता बस स्कूल का औपचारिक नाम था, कागज पत्तर तक सीमित था । नौकर चाकर डेज़ी मैडम कह कर बुलाते और मम्मी डैडी और दूसरे घर वाले डेज़ी बेबी ।
डेज़ी नाम उन पर फबता था । डेज़ी की तरह ही चपल मुस्कान होठों पर अक्सर खेलती रहती । बड़े होने पर डेज़ी की सुन्दरता के चर्चे बहुत हुए । लोग तो कहते हैं कि एक फिल्म निर्माता उन्हें नायिका की भूमिका देने के लिए जिद पकड़ कर बैठ गया था, पर डेज़ी न मानीं तो बस न मानीं । उनके हृदय में तो समाजसेवा की ललक घर कर गई थी । बचपन से ही दरिद्रों के प्रति सहानुभूति उनके हृदय में हिलोरें लेती रहती । वह कहावत है न - होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।
डेज़ी के पात चीकने थे - इससे भला कौन इन्कार कर सकता था ? छरहरे बदन की किसी कविता की नायिका सी देहयष्टि, सांवला सलोना मुखड़ा जो फेयर ऐंड लवली के निरंतर प्रयोग से गोरेपन की तरफ बढ़ चला था । बड़ी भावपूर्ण आर्द्र आंखें जिन्हें देख कर लगता इनसे आंसू किसी भी क्षण छलक सकते हैं । भावुक लोगों की, विशेष कर स्त्रियों की, आंखों में एक विशेष किस्म की आर्द्रता रहती है और यदि आप गौर से देखें तो उस आर्द्रता में नन्हें और नाजुक सपनों के प्रतिबिंब झलकते हैं । डेज़ी की आंखों पर चश्मा लग जाने के कारण आंखों की भावप्रवणता और भी निखर आई थी, स्पष्ट हो गई थी । डेज़ी का स्वर अक्सर मधुर रहता । बोलती तो मुख से जैसे मालती के फूल झड़ते और धवल दंतपंक्ति भादों के

काले घने बादलों से ढंके आकाश से अचानक बरसी बिजुरी की तरह चमकती । डेंटिस्ट के यहां कायदे से सदा दांत साफ करवाने के कारण उनकी छटा और भी निखर आई थी ।
डेज़ी कभी कभार गले में सफेद मोतियों का नौलखा हार पहन लेती तो लगता जैसे आपके सामने अप्सरा उतर आई है ।
इस सौंदर्य की पुतली में एक नन्हां सा दाग था । बचपन में चोट लगने के कारण उसके एक पैर का ऑपरेशन करना पड़ा था जिसके कारण एक टांग छोटी और दूसरी बड़ी हो गई थी जिसके कारण डेज़ी जरा सा भचक कर चलती, पर यह तभी मालूम होता जब आप उसकी चाल को जासूसी नजर से देखते ।
२५४

***

यह सत्य है कि डेज़ी की फिल्मों में रुचि थी पर सतही और छिछली बम्बइया फिल्मों में नहीं । अमिताभ बच्चन और रेखा को देखते ही वह बिदकती थी । एकाध बार नसीरुद्दीन शाह और अमोल पालेकर की प्रशंसा करते हुए उसे देखा गया था । डेज़ी अपना जीवन फालतू के चोंचलों में बर्बाद करने को तैयार न थी । जनकल्याण में उसकी रुचि स्वत:स्फूर्त रही । एक पुलिस अफसर के परिवार में ऐसी बालिका का जन्म कैसे हुआ - यह मेरे लिए जिज्ञासा का विषय रहा ।
मैं पहले ही बता चुका हूँ कि डेज़ी का दिल गरीबों की सेवा में लगता था । दरिद्र और नारी - उसके जीवन के यही दो स्तम्भ थे । उसने यह तय कर लिया था कि दरिद्र उत्थान और नारी स्वतंत्रता के लिए सतत् संघर्ष - यही उसके जीवन के ध्येय रहेंगे । अपने मित्रों के संग मिल कर उसने दो नई स्वयंसेवी संस्थाएँ खोलीं - दरिद्र विमोचन सभा तथा नारी मुक्ति मोर्चा । ये दोनों संगठन तब नए पौधे में खिली ताजी कली की तरह रहे । बाद में सतत् प्रयास से फूले फले ।
विवाह के पश्चात भी डेज़ी का अधिकांश समय अपने पिता के यहाँ बम्बई में ही बीतता । वह भभुआ भी गई, राजस्थान में जिस कस्बे में मैं जिलाधीश नियुक्त हुआ, वहाँ भी रही । पर वहाँ कुछ करने के लिए न था । भभुआ में सीधे पल्ले की साड़ी पहन कर उसने मेरी माँ का दिल जीता ।
मेरी माँ कहती कि डेज़ी ही मेरी संतान है, मेरा बेटा तो ऐवें ही है । बम्बई में लिखी पढ़ी, पली बढ़ी, इतने बड़े बाप की बेटी और सीधा पल्ला ! सिर पर आँचल, कभी कभी घूँघट ।
मेरी माँ तो डेज़ी का बखान करती फूली न समाती । मेरे पिता जी भी मंत्रमुग्ध हो गए । वह भभुआ में पूरे दो दिन रही । पैतृक गांव भी गई छ घंटों के लिए । वहां मुंहदिखाई और गोइंछा मे मिली सारी राशि गांव के भिखमंगों में बांटी, भिखमंगों ने मंगलगीत गाए ।
उन दो दिनों के गीत गाँव जवार में गाए गए । इसे कहते हैं संस्कार । देखो इसको, इतने बड़े बाप की बेटी, कहीं कोई घमंड है ? घूँघट निकाल कर चल रही है । और हमारे यहाँ की अनपढ़ बदतमीज लड़कियाँ ! उनके रंग ढंग तो देखो, फटी जीन्स पहन कर घूम रही हैं । न शर्म है न लिहाज है । कस्बे की महिलाएँ डेज़ी को देखतीं और दाँतों तले उँगली दबातीं, कोई कोई तो मुँह बा कर आश्चर्य से “आ” करतीं ।

पर भभुआ हमारा पुश्तैनी क़स्बा था । वहाँ वह जिलाधीश की पत्नी न थी, ठाकुर सिंह की बहू थी । यहाँ राजस्थान की बात दूसरी थी । यहाँ वह बड़े साहब की पत्नी और बहुत बड़े साहब की बेटी थी । डेज़ी आदर्शवादी बहुत थी पर इसका अर्थ यह न निकाला जाय कि वह प्रैक्टिकल नहीं थी । अपने स्टेटस के हिसाब से थोड़े समय में ही उसने राजस्थान के इस कस्बे में अपना समाज बना लिया था । स्त्रियों में बहुत लोकप्रिय होती चली जा रही थी । स्वभाव ही ऐसा था । उसने अपनी दोनों स्वयंसेवी संस्थाओं की शाखाएँ वहाँ खोल दीं और अनुदान के लिए राजस्थान सरकार, भारत सरकार और फोर्ड फाउंडेशन को आवेदन भेज दिया ।

रायबहादुर भल्ला डेज़ी से बहुत प्रभावित थे । उनकी पत्नी तो डेज़ी पर जान छिड़कने लगीं । यही नहीं उन्होंने अपने दीदी जीजाजी से डेज़ी की इतनी प्रशंसा की कि डेज़ी के पास उनके फोन आने लग गए । रायबहादुर भल्ला की तरह डेज़ी की भी अंग्रेजी उपन्यासों में बहुत रुचि थी - खास तौर पर जासूसी उपन्यासों में । वे साथ बैठते तो उपन्यासों के प्लाटों के बारे में बातें करते घंटों बिता देते और हम उनका मुँह ताकते रहते ।

यह बात सही है कि यहाँ इस कस्बे में भी एकाध बार डेज़ी ने साड़ी पहनी थी - अफसरों की पार्टी में, पर अमूमन वह अब बेल बॉटम और शर्ट ही पहनती । कभी कभी तो दूर से किनारे से उसे देखने पर परवीन बॉबी का भ्रम हो जाता और मेरा दिल खुशी से फूला न समाता ।

पर इस कस्बे में भी करने को कुछ खास नहीं था । डेज़ी बड़े फलक पर काम करना चाहती थी और छोटे मोटे कस्बे उसके लिए उपयुक्त न थे । महानगर में महान कार्यों की संभावना बनती थी ।

२५५

***

मैंने आपको डेज़ी की रायबहादुर भल्ला से पहली मुलाकात की कहानी नहीं सुनाई । हुआ यह था कि तब मैं कस्बे में नया नया आया था । उस समय अकेला ही था । इच्छा थी कि डेज़ी के वहां आने के पहले घर को थोड़ा ठीक ठाक कर लूँ, बड़े घर की लड़की है, कहीं बिदक गई तो अच्छा न होगा । मैं नहीं चाहता था कि हमारे वैवाहिक जीवन में प्रवेश करते ही कोई बाधा पड़े, खटास आए, कोई अनावश्यक अप्रियता जन्म ले ।

वैसे जिलाधीश होने के नाते मुझे बड़ा बंगला तो मिला था पर उसके अंदर का हाल वैसा ही था जैसा सरकारी बंगलों का होता है । डाइनिंग टेबुल पर प्लास्टिक का टेबुल क्लॉथ था जिसके कोने फटे हुए थे । पीले रंग का टेबुल क्लॉथ जिसे देखते ही आदमी की अच्छी खासी भूख मर जाए । फिर ऊपर जो हड़हड़ करके चलते सीलिंग फैन थे उन पर धूल की मोटी काली परत जमी हुई थी । पता नहीं कैसा फूहड़ आदमी मेरे पहले इस बंगले में रहता था । खिड़कियों पर लगे पर्दों पर धूल जमने के कारण उनके रंग बदरंग थे । कई कुर्सियों के हत्थे उखड़े हुए थे । आलमारियां मकड़ जाल से पटी थीं । सारे बंगले में एक मुसैली सी गंध फैली हुई थी - शायद सीलन के कारण । फर्श का मोजायक जगह जगह टूट गया था । सोफे हरे

और नीले रंग के फूहड़, धंसे हुए और बेकार थे । आदमी बैठे तो धंस जाए, स्प्रिंग के चर्रमर्र की भुतहा आवाज निकले ।
एक ही बात अच्छी थी और वह थी बंगले के बाहर का बाग । पीपल और नीम के ऊँचे पेड़ों के बीच में गुलमोहर और अशोक के वृक्ष भी थे । गुलाब, सूरजमुखी और गेंदे के फूलों की क्यारियाँ थीं । रंग बिरंगे गुलाब - गुलाबी, सफेद और काले । काले गुलाब मुझे सबसे मनमोहक लगते थे । सूरजमुखी के फूल भी कई रंगों के थे - सफेद, पीले और नीले । एक क्यारी में गुलदाउदी के फूल खिले थे । मैं बंगले की मुसैली गंध से बचने के लिए कभी बाग में और कभी बरामदे में बैठता । कभी किसी शाम हवा चलती तो मालती की मदमाती गंध मेरे नथुनों में बस जाती ।
पर आदमी हर वक्त बाग में या बरामदे में तो नहीं बैठ सकता न ! अब आप ही बताइए, ऐसे घर में मैं डेज़ी जैसी नई नवेली नाजुक और नाजों पली, बड़े बाप की बेटी को जिसका नाता सिने जगत से रहा था, जिसे सौंदर्य और सुरुचि का अभ्यास था, कैसे ला सकता था ! ठीक है मैं आईएएस भले ही था पर मेरी पृष्ठभूमि गवईं गँवार की थी, मैं किसी तरह एडजस्ट कर लेता पर बेचारी डेज़ी ! उसका तो हार्ट ही फेल हो जाता ।
उन्हीं दिनों अचानक रायबहादुर भल्ला से मेरी मुलाकात हुई थी । पता नहीं क्या बात हुई कि रायबहादुर मुझे बेटे या छोटे भाई की तरह मानने लगे । मेरे हृदय में आईएएस होते हुए भी उनके लिए सम्मान का भाव उमड़ा था । इसके बारे में मैंने गम्भीरता से सोचा तो मुझे लगा कि मेरे अचेतन में इस फूहड़ कस्बे के अंधेरे में मुझे रायबहादुर में अभिजात्य और सुरुचि की रोशनी की लौ दिखाई दी होगी ।
और रायबहादुर वाकई मेरे लिए तारणहार बन कर आए । एक सप्ताह के अंदर ही रायबहादुर और उनकी पत्नी ने बंगले का कायाकल्प करवा दिया । नया डाइनिंग टेबुल, उस पर चमकता हुआ कलफदार सफेद टेबुल क्लॉथ । नई कुर्सियाँ, नए खूबसूरत सोफे, खिड़कियों पर झिलमिल करते सुहावने पर्दे - उन पर्दों से छन कर रोशनी जब आती तो कमरे स्वप्नलोक जैसे चमकते । आलमारियों में पत्रिकाएँ और पुस्तकें सज गईं । फर्श पर कीमती ईरानी कालीन बिछ गई । फूहड़पन का नामोनिशान न रहा, हर तरफ अभिजात्य की आभा जगमगा उठी । महीन और बारीक अभिजात्य की आभा ।
डेज़ी जब एक सप्ताह बाद आई तो उसे देख कर विश्वास न हुआ । उसने सोचा कि यह सब मेरा किया हुआ था । उसकी पारदर्शी आंखों में मेरे लिए दुलार, अभिमान और चोन्हां के भाव की चमक उतर आई । हमारे इस घर में अब हर तरफ प्रेम और सौंदर्य की बयार बहने लगी । मैंने जानबूझ कर डेज़ी के इस नाज़ुक विश्वास का धागा न तोड़ा ।
उसी दौरान इतवार की एक सुबह कोई आठ बजे हम बरामदे में बैठ कर चाय पी रहे थे । यह शुरु गर्मियों का महीना था । हल्की सी बयार बही थी और हमारे रोएँ जुड़ाए थे, गुलाब और गुलदाउदी के रंगबिरंगे फूल हमें देखते और शायद हमारे भाग्य पर ईर्ष्या करते थे । गई रात की रातरानी की खुशबू अभी भी हवा में तैर रही थी । मैं उठ कर बाथरूम चला गया । डेज़ी अकेली बैठी इस मनोरम दृश्य को चाय के संग पी रही थी कि तभी रायबहादुर अचानक आ गए । आम आदमी तो मेरे बंगले में यूँ नहीं आ सकता

था पर मेरे चपरासियों, नौकरों को रायबहादुर भल्ला के बारे में पता था कि ये साहब के बहुत नजदीकी हैं, उनसे वे रोकटोक न करते थे । भल्ला साहब ने बरामदे में आकर डेज़ी को नमस्कार किया । डेज़ी तब उन्हें जानती न थी । रायबहादुर जब मजाकिया मूड में होते तो मुझे जिलाधिकारी कह कर बुलाते । क्यों जिलाधिकारी, आज वोदका चलेगी - टाइप बात ।
डेज़ी भले ही उन्हें नहीं पहचानती या जानती थी पर रायबहादुर ने अनुमान लगा लिया था कि स्वप्निल नयनों की स्वामिनी यह युवा सुंदरी जो उस वक्त वहाँ फूलदार सफेद गाउन पहने, अपने घने काले बालों का जूड़ा बनाए, एक क्षण पहले विचार में डूबी चाय की चुस्कियाँ ले रही थी, मेरी पत्नी डेज़ी थी ।
डेज़ी ने उन्हें बैठने के लिए न कहा । बड़े अफसर की पत्नी थी, कैसे कहती ? पर रायबहादुर को देखिए, बिना परिचय दिए, बिना अनुमति लिए उन्होंने न सिर्फ एक कुर्सी खींची और डेजी के सामने बैठ गए बल्कि एक प्याले में चाय ढार कर सुड़कने लगे । डेज़ी इस अभद्रता पर तिलमिला उठी, भृकुटियां तनीं, चेहरे का रंग लाल हुआ पर वह कुछ न बोली, मुश्किल से जब्त किया । रायबहादुर ने चाय की एक चुस्की लेकर प्याला टेबुल पर रखा और मुस्कुराते हुए डेज़ी की तरफ देखते हुए ऊँची आवाज में पूछा :
आज जिलाधिकारी कहाँ है ?
इतना सुनना था कि डेज़ी आपे से बाहर हो गई । गुस्से से बोली :
आप बुजुर्ग आदमी हैं, पढ़े लिखे मालूम होते हैं, आपको इतना भी नहीं पता कि मेरे पति जिलाधीश हैं, जिलाधिकारी नहीं !
२५६

***

मुझे आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि मेरे सुधी पाठकों को जिलाधीश और जिलाधिकारी के बीच का भेद बताना न सिर्फ अनावश्यक है बल्कि करीब करीब उनकी शिक्षा दीक्षा का, उनके भाषाज्ञान का अपमान भी है ।
हे विद्वान पाठकों, हे विद्वत्गण, अपने हृदय पर हाथ रख कर बताइए - क्या डेज़ी के लिए रायबहादुर द्वारा उसके पति का जिलाधिकारी कह कर सम्बोधित किया जाना उनके पद, उनके स्टेटस का अपमान न था ? डेज़ी का इस अपमान पर, भले ही वह रायबहादुर मोहन भल्ला ने अनजाने में किया हो, क्रोधित होना स्वाभाविक न था ? क्या डेज़ी को अवमानना की यह कड़वी घूंट किसी तरह से पी कर अपनी सहिष्णुता का प्रमाण देना चाहिए था ?
२५७

***

जिलाधीश और जिलाधिकारी में मौलिक भेद है । जिलाधीश में जो राजसी ठाट है, उसका पासंग भी जिलाधिकारी में नहीं है । जिलाधीश से भाव जगता है राजसत्ता का, बादशाहत का, मालकियत का । जिलाधीश यानी कि जिले का मालिक या जिले का सम्राट । और दूसरी तरफ जिलाधिकारी एक रूटीन नौकरी हो गई - जैसे कि पुलिस अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी, राशन वितरण अधिकारी आदि ।

इसलिए यदि अपने पति के लिए जिलाधिकारी सम्बोधन सुन कर डेज़ी के आत्मसम्मान को ठेस लगी तो इसमें अचम्भे की कोई बात न थी । डेज़ी जिलाधीश की पत्नी थी, किसी मामूली अधिकारी की नहीं । बिला वजह सुबह सुबह बेचारी डेज़ी का मूड ऑफ हुआ । वह कुछ न बोली, बस उसका चेहरा लटक गया । उसे लगा पता नहीं कहाँ से यह असभ्य जाहिल आदमी आ बैठा है, बिना पूछे इतने ऊँचे अफसर के घर के बरामदे में चाय पिए जा रहा है । डेज़ी ने अपना मुँह बाईं तरफ उधर घुमाया जिधर सूरजमुखी के फूल खिलने जा रहे थे । खिलते फूलों को देख उसके चेहरे का तनाव कम हुआ, उसने अपना दायाँ हाथ अधखुले जूड़े से माथे पर फैल गई काली जुल्फों पर फेरा, दोनों हाथों से जूड़ा करीने से फिर बांधा और चाय की एक चुस्की ली ।

तभी मैं गुसलखाने से बाहर आया । रायबहादुर को देखते ही मेरा चेहरा खिला । इस मनहूस कस्बे में कौन था रायबहादुर के अलावा जो बात करने लायक था ! रायबहादुर मुझे देख उठ खड़े हुए । चाय का प्याला टेबुल पर रखा और गर्मजोशी से मुझसे हाथ मिलाया । उनके चेहरे पर उनकी वही संयमित चिर-परिचित मुस्कुराहट थी । बोले :

जिलाधिकारी, तुमने बताया नहीं कि ललिता जी आईं हैं । मुझसे किसी ने परिचय नहीं कराया, बताया भी नहीं, बस मैंने अनुमान लगा लिया ।

फिर डेज़ी की तरफ मुड़ कर बोले :

तुम डेज़ी यानी कि ललिता हो न ? मैंने तुम्हारी तस्वीर देखी थी । तुम तो बिल्कुल वैसी ही हो जैसा मैंने सोचा था । जिलाधिकारी की च्वाॅएस में संदेह की गुंजाइश कहाँ थी !

पहली ही मुलाक़ात में तुम - डेज़ी को कुछ समझ में न आया । चेहरे पर फैली नाराज़गी की छाया को उसने दूर करने का अर्धसफल प्रयास किया और एक कृत्रिम सी मुस्कुराहट ले आई । डेज़ी पहले नाटकों में काम कर चुकी थी, उसे चेहरे पर कृत्रिम मुस्कुराहट लाने का अभ्यास था । उसने रायबहादुर को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और मुझे झिड़कती हुई सी बोली :

यह इन्हीं की गलती है । मैं यहाँ चौबीस घंटों से हूँ । इन्होंने यहाँ के बारे में कुछ बताया ही नहीं । क्षमा करिएगा, पुरुषों में लापरवाही स्वाभाविक गुण है, वे कायदे से रहना नहीं जानते । देखिए, आपके सामने खड़े हैं और अतिथि का परिचय भी नहीं करवा रहे हैं । मुझे समझ में नहीं आता ऐसे लोग आईएएस का काम कैसे करते होंगे ?

आदतन गम्भीर रहने वाले रायबहादुर जोर से हंस उठे । बोले :

तुम सच कहती हो डेज़ी । आईएएस वालों के बारे में तुम्हारा ऑब्जर्वेशन बिल्कुल सही है । पुरुषों के बारे में भी तुम्हारी बात सही है । मेरी पत्नी भी यही कहती है । स्त्री न हो तो पुरुष जंगली जानवर की तरह रहें । अब देखो न, तुम आ गई हो तो यह घर जो पहले कबाड़ख़ाना था, कैसे सज सँवर गया है । स्त्री चाहे कुछ न करे, दिन भर बैठ कर चाय पीती रहे या फिल्मी कलियाँ पढ़ती रहे, उसके सिर्फ होने से उजाड़ से उजाड़ मकान घर बन जाता है, हर तरफ जिंदगी के खूबसूरत रंग बिखर जाते हैं । तुम्हारा

राजस्थान के इस कस्बे में स्वागत है डेज़ी । मुझे लोग मोहन भल्ला के नाम से जानते हैं । तुम चाहो तो मुझे भल्ला कह कर बुलाओ ।
अपनी प्रशंसा किसे नहीं अच्छी लगती ? कोई मेरी प्रशंसा करे तो मुझ पर दो बोतल वोदका का नशा छा जाता है । डेज़ी भी इसी संसार की वासी थी । उसके चेहरे का तनाव छूमंतर हुआ और प्यारी सी असली मुस्कुराहट होंठों पर फैल गई । आपको तो पता ही है कि स्त्रियाँ जब मुस्कुराती हैं, उनके चेहरे पर चार चाँद लग जाते हैं । ऐसा ही डेज़ी के चेहरे के साथ हुआ । डेज़ी ने नजाकत से "एक्सक्यूज मी" कहा और बंगले के अंदर चली गई । जब आई तो उसके हाथों में एक प्लेट में हमारी शादी के केक के तीन टुकड़े थे ।
२५८
***
रायबहादुर को इस तरह खुल कर हँसते पहले देखा न गया था । वे संजीदा आदमी थे । जोर जोर से हँसने को फूहड़पन मानते थे । कई बार तो उन्होंने जोर जोर से हँसने के लिए अपनी पत्नी को सबके सामने झिड़क दिया था । पर पता नहीं उस दिन क्या बात हुई कि उनकी हँसी रोके न रुकी । जब बाद में रायबहादुर ने इसके बारे में विचार किया तो उन्हें यह बात बड़ी अजीब लगी और वे असहज हो गए । पर लब्बोलुबाब यह कि डेज़ी के लिए वे अब रायबहादुर भल्ला नहीं, भल्ला भइया हो गए और उनकी पत्नी भल्ला भाभी । डेज़ी सारा दिन या तो उनके संग उनके घर रहती या वे हमारे यहाँ रहते । कभी सुबह का नाश्ता तो कभी शाम का डिनर । जैसा मैंने पहले ही कहा है, परिचय का दायरा बढ़ कर रायबहादुर के कलकत्ता वाले साढ़ू और साली तक फैला । डेज़ी के पास उनके भी फोन आते । कुछ ही दिनों में ऐसा लगा कि जैसे इन दोनों परिवारों का जमाने पुराना नजदीकी रिश्ता हो । जिंदगी कितनी हैरत अंगेज़ है कि जिसे आप कल तक जानते भी नहीं थे, उससे ऐसा आपका संबंध बनता है कि जैसे आप साथ साथ ही इस धरती पर उतरे हों । और दूसरी तरफ किसी के संग चाहे सारी जिंदगी गुजार दो, जान पहचान तक नहीं हो पाती ।
एक बात यह भी अच्छी हुई कि डेज़ी इस मनहूस कस्बे में बोर न हुई । उसका वहाँ दिल लग गया हालाँकि कभी कभार बम्बई की याद आती थी । और ऊपर से बोनस यह कि रायबहादुर जो वैसे भी काफी खाली खाली ही थे, डेज़ी की स्वयंसेवी संस्थाओं में रुचि लेने लगे । उनके कारण कस्बे के कुछ अफसर और व्यापारी इन संगठनों से जुड़े, कई गोष्ठियां और विशेष कर महिलाओं के लिए कॉफी मॉर्निंग्स अफसरों के स्थानीय क्लब में आयोजित हुईं ।
डेज़ी ने राजस्थान सरकार, भारत सरकार और फोर्ड फाउंडेशन को अनुदान के लिए जो आवेदन दिए थे, वे असफल रहे । बेचारी डेज़ी बहुत निराश हुई और कुछ दिनों के लिए बम्बई जाने की जिद करने लगी । पर भल्ला भइया, भल्ला भाभी और फोन पर उनके साढ़ू और साली ने ढाढ़स बँधाया, दिल न छोटा करने की सलाह दी और उसकी प्रशंसा करते हुए प्यार भरे कार्ड और गुलदस्ते भेजे । तब जाकर बेचारी डेज़ी को सुकून मिला । रायबहादुर को आवेदनपत्र वगैरह ड्राफ्ट करने का अनुभव था । उन्हें पता था कि

काम निकालने के लिए किस तरह की भाषा का प्रयोग करना चाहिए । उनकी मदद रंग लाई । पहला अनुदान केन्द्रीय सरकार से मिला, दूसरा राजस्थान सरकार से और कुछ और प्रश्नों के संतोषपूर्वक उत्तर देने के बाद फोर्ड फाउंडेशन से भी । फोर्ड फाउंडेशन का अनुदान अनुमान से कहीं अधिक था, इतना कि हम सबकी आँखें चौंधिया गईं । फोर्ड फाउंडेशन वाले उदार लोग थे । दरिद्र विमोचन सभा के लिए मिला अनुदान छोटा था पर नारी मुक्ति मोर्चे के लिए तो भारी अनुदान मिला ।